ARCHITECTURE AND SCULPTURE OF LOWER GANGA YAMUNA-DOAB

(C.600B.C. To C. 600 A.D.)

[In Hindi]

THESIS

Submitted for the D. Phil Degree

of

UNIVERSITY OF ALLAHABAD

By

Anshu Goel

Under the Supervision of

Dr. Jai Narain Pandey

Department of Ancient History

Culture and Archaeology
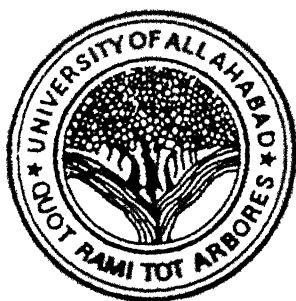
UNIVERSITY OF ALLAHABAD

ALLAHABAD

2003

विषय सूची

प्रमाण पत्र

गगा यमुना के निचले दोआब में स्थापत्य एवं मूर्तिकला का अध्ययन सुश्री अंशु गोयल ने मेरे निर्देशन मे किया है। यह अशु गोयल की स्वय की रचना है। यह मौलिक तथा स्वतंत्र लेखन उन्होने स्वय किया है। इसकी भाषा–शैली प्राञ्जल है। इसको किसी अन्य उपाधि के लिए कहीं प्रस्तुत नहीं किया गया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के कला संकाय के अतर्गत डी०फिल० उपाधि हेतु मैं इसको अग्रसारित करता हूँ।

(जय नारायण पाण्डेय)
परीक्षक

प्राक्कथन

कला मनुष्य की चिर स्थायी कीर्ति और संस्कृति की शाश्वत धरोहर ही नहीं, अपितु उसकी प्रधान प्रेरणा भी है। वास्तु, शिल्प, मूर्ति, चित्र, कांस्य-प्रतिमा, मृण्मयी प्रतिमा, मृद्भाजन, दन्तकर्म, काष्ठकर्म, मणिकर्म, स्वर्ण–रजत कर्म, वस्त्र आदि के रूप में भारतीय कला की विशद् सामग्री उपलब्ध हुई है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' तथा 'शुक्रनीति' आदि ग्रंथों में चौसठ (64) प्रकार की कलाओं का वर्णन मिलता है। जैन ग्रंथ 'प्रबन्धकोष' मे बहत्तर (72) तथा बौद्ध ग्रंथ ललित विस्तर में छियासी (86) कलाओं का उल्लेख है। कला क्षेत्र की व्यापकता के फलस्वरूप उसे दो वर्गों में रखा गया है–

(1) **उपयोगी कलाऐं**:–जिसके अन्तर्गत वस्त्र निर्माण, लकड़ी की दैनिकोपयोगी वस्तुओं, आभूषण निर्माण आदि की गणना की जाती है।

(2) **ललित कलाऐं**:–जिसके अन्तर्गत स्थापत्य या वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीतकला तथा काव्यकला है। काव्यकला में अर्थ की प्रधानता है। संगीतकला में ध्वनि की प्रधानता होती है और शेष तीनों कलाओं (वास्तुकला, मूर्तिकला एवं चित्रकला) में रूप की प्रधानता देखी जा सकती है। इन कलाओं द्वारा मानव मन में विद्यमान सौन्दर्य, आनन्द तथा स्फूर्ति जैसे उदात्त भावों का संवर्द्धन होता है, जिससे चित्त की शुद्धि होती है तथा मस्तिष्क मनोविकारों से मुक्त होता है।

गंगा-यमुना के निचले दोआब के स्थापत्य एवं मूर्ति-शिल्प (ARCHITECTURE AND SCULPTURE OF LOWER GANGA YAMUNA DOAB) से सम्बन्धित उत्खनित पुरास्थलों से वास्तु तथा मूर्तिकला के सुन्दर उदाहरण

प्राप्त हुए हैं, जो हमारे ज्ञान के अपूर्व भण्डार हैं। इस क्षेत्र से प्राप्त स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प की समस्त कलात्मक सामग्रियों का अध्ययन, शोध–प्रबन्ध के सीमित आकार के कारण अत्यन्त कठिन था। अतः अधीत क्षेत्र के चार प्रमुख उत्खनित स्थलों का प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में चयन किया गया, जो इस क्षेत्र का पूर्णतया प्रतिनिधित्व करते हैं, **ये स्थलः-कौशाम्बी, शृंग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी हैं।** इनके साथ ही भीतरगाँव तथा रेह भी ऐतिहासिक महत्व के हैं।

शोध-प्रबन्ध को सात अध्यायों में बॉटा गया है। जिसमें **प्रथम अध्याय** परिचयात्मक है। **द्वितीय अध्याय** में गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों की भौगोलिक रूपरेखा प्रस्तुत की गई हैं। **तृतीय अध्याय** में छठीं शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठीं शताब्दी ई0 तक के प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। **चतुर्थ अध्याय** में स्थापत्य का अर्थ, वर्गीकरण एवं निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से ज्ञात स्थापत्य सम्बन्धी पुरावशेषों एवं सामग्री का क्रमवार वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में मुख्यरूप से इलाहाबाद, कौशाम्बी तथा कानपुर जिले से ज्ञात मन्दिर, विहार, आवासीय भवन, स्तम्भों तथा शिलालेखों इत्यादि स्थापत्य सम्बन्धी सामग्री को सम्मिलित किया गया है। **पंचम अध्याय** में गंगा–यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त विभिन्न सम्प्रदाय यथा–बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म के देवी–देवताओं की प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों का विवरण है। **षष्ठ अध्याय** प्रतिमाओं के सौन्दर्यात्मक पक्ष से सम्बन्धित है, जिसके अन्तर्गत प्रतिमाओं के आसन तथा मुद्रायें, प्रतिमा का वाहन, आयुध एवं प्रतीक, प्रतिमाओं का वस्त्राभूषण एवं अलंकार इत्यादि के विषय में विस्तार से वर्णन किया गया है। सप्तम अध्याय में निष्कर्ष तथा उपसंहार का उल्लेख है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में मुझे विभिन्न व्यक्तियों एवं संस्थाओं का सहयोग समय–समय पर प्राप्त हुआ है, जिसके फलस्वरूप यह

शोध-कार्य सम्भव हो सका, उनके प्रति आभार प्रकट करना मेरा परम कर्त्तव्य है।

सर्वप्रथम मैं अपने **शोध-निदेशक डा० जय नारायण पाण्डेय** की विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने अपने योग्य निर्देशन में मुझे कार्य करने की सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। मुझे प्रतिक्षण उनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं अध्ययन सम्बन्धी महत्वपूर्ण मार्गदर्शन तथा सहयोग प्राप्त होता रहा। उनके अमूल्य सुझावों एवं उत्साहवर्द्धन के फलस्वरूप ही प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सम्पन्न हो सका। मैं अपनी समस्त श्रद्धा एवं हार्दिक कृतज्ञता उनके श्रीचरणों में निम्न पंक्तियों के द्वारा अर्पित करती हूँ।

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं येषां केषां न ते वन्द्याः।

अर्थात् जिनका मुख प्रसाद (प्रसन्नता) का स्थान है, जिनके हृदय में दया है, जिनकी वाणी मानों अमृत की वर्षा करती है, जो परोपकार में रत हैं, ऐसे पुरुष (गुरु) किसके वन्दनीय नहीं हैं। अतः वह सभी के लिए वन्दनीय है। इस प्रकार उनके इस स्वरूप को मैं कोटि-कोटि प्रणाम करती हूँ। मैं **गुरुमाता श्रीमती सुभद्रा पाण्डेय** की भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर मेरा मनोबल बढ़ाया।

मैं प्राचीन इतिहास विभाग के वरिष्ठ गुरुजनों प्रो० जसवन्त सिंह नेगी, प्रो० बृजनाथ सिंह यादव, प्रो० उदय नारायण राय, प्रो० सिद्धेश्वरी नारायण राय, प्रो० शिवेश चन्द्र भट्टाचार्या, प्रो० विद्याधर मिश्र, एवं प्रो० ओम प्रकाश को शत्-शत् नमन करती हूँ। मैं वर्तमान विभागाध्यक्ष डा० आर०पी० त्रिपाठी की हृदय से आभारी हूँ। डा० पुष्पा तिवारी की मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने समय-समय पर शोध सम्बन्धी सुझावों के द्वारा मेरा मार्गदर्शन किया। डा० उमेश चन्द्र चट्टोपाध्याय, डा० जे०एन० पाल, डा० देवी प्रसाद दूबे, श्री ओम

प्रकाश श्रीवास्तव, डा0 हरिनारायण दूबे, डा0 अनामिका राय, डा0 सुधा कुमार, डा0 सुनीति पाण्डेय, डा0 ए0पी0 ओझा, डा0 प्रकाश सिन्हा, डा0 हर्ष कुमार एवं डा0 माणिक चन्द्र गुप्ता के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ। भूगोल विभाग के आचार्य डा0 आर0सी0 तिवारी की मैं विशेष आभारी हूँ। प्राचीन इतिहास विभाग स्थित पुस्तकालय के निर्देशक श्री सतीश चन्द्र राय एवं श्री प्रकाश मिश्रा नें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर! इस कार्य को सम्पन्न करने में मेरी सहायता की। मानचित्र तथा रेखाचित्र निर्माण के लिए मैं श्री बी0के0 खत्री आभारी हूँ। छायाचित्रों हेतु मैं श्री प्रदीप श्रीवास्तव (इलाहाबाद संग्रहालय), श्री अरविन्द मालवीय (प्राचीन इतिहास विभाग स्थित संग्रहालय) एवं श्री प्रमोद श्रीवास्तव (लखनऊ संग्रहालय के छायाचित्रों के संकलन हेतु, निवासी रायबरेली) के प्रति अपना आभार व्यक्त करती हूँ।।

इलाहाबाद संग्रहालय के वर्तमान निदेशक श्री उदय शंकर तिवारी, पुस्तकालय के सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष श्री कमलेश कुमार त्रिपाठी, श्री धीरेश जोशी तथा संग्रहालय के अन्य अधिकारियों डा0 प्रभाकर पाण्डेय, डा0 श्रीरंजन शुक्ला तथा डा0 राजेश कुमार मिश्र के प्रति आभार ज्ञापित किये बिना मेरा कार्य अधूरा ही रह जायेगा। मैं राज्य संग्रहालय लखनऊ के निदेशक श्री जितेन्द्र प्रसाद एवं अन्य पदाधिकारियों के सहयोग के लिये उन्हें धन्यवाद देती हूँ। मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं गंगानाथ झा संस्कृत विद्यापीठ के अधिकारियों के सहयोगात्मक व्यवहार हेतु हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

मैं इण्डियन काउन्सिल ऑव हिस्टॉरिकल रिसर्च (I.C.H.R.) की विशेष आभारी हूँ, जिनके द्वारा 'जूनियर रिसर्च फैलोशिप' के रूप में मुझे महत्वपूर्ण आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इस सहायता के अभाव में यह शोध-प्रबन्ध आकार नहीं ग्रहण कर सकता था।

अन्ततः मैं अपने माता तथा पिता की हृदय से ऋणी हूँ। उनका स्नेह तथा आशीर्वाद सदैव मुझे प्रेरणा देता रहा है। मैं अपने अग्रज श्री अनूप कुमार

गोयल की विशेष आभारी हूँ, जिनका सहयोग एवं सतत् उत्साहवर्द्धन मेरे लिए विषम परिस्थितियों में संजीवनी का कार्य करता है। मैं भाभी श्रीमती रचना गोयल, बहन श्रीमती मीनू गोयल, जीजाजी श्री राजीव गोयल एवं भतीजे प्रिय अर्पित गोयल को उनके सहयोग हेतु धन्यवाद देती हूँ। मैं अपने फूफा जी स्वर्गीय मदन लाल अग्रवाल की आजीवन ऋणी रहूँगी, जिनके द्वारा उपहार स्वरूप प्रदत्त पुस्तक 'प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान' वास्तव में मेरे शोध-सम्बन्धी अध्ययन की मुख्य स्रोत बनीं। मैं उनके प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करती हूँ।

मैं अपने मित्रों में श्री दिलीप जायसवाल, श्री अरविन्द कुमार राय, सुश्री लिली अग्रवाल की विशेष ऋणी हूँ, जिनकी सहायता तथा जानकारियाँ मेरे लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई। उनके सहयोग एवं सतत् उत्साहवर्द्धन हेतु मैं उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ। मैं शोध छात्रा सुश्री अमृता श्रीवास्तव, गुरुभाई श्री जय प्रकाश शुक्ला एवं श्री सुशील कुमार सिंह गौतम एवं श्री वीरेन्द्र मणि त्रिपाठी तथा अन्य सभी सहयोगियों एवं मित्रों को जिन्होंने किसी न किसी प्रकार से मुझे सहायता प्रदान की है, उनको हृदय से धन्यवाद देती हूँ।

इस शोध-प्रबंध के कम्प्यूटर टंकण हेतु मैं श्री चरन सिंह को धन्यवाद देती हूँ।

अंशु गोयल
(अंशु गोयल)

संवत् : 2060 वि०

तिथि : आश्विन शुक्ल एकादशी

दिनांक : 6 अक्टूबर, 2003

चित्र फलक सूची

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
1(A)	जलाशय A की रिटेनिंग दीवारों के साथ, उत्तरी हिस्से और इनलेट चैनल का एक अवलोकन, उत्तर-पश्चिम दृश्य।	शृंग्वेरपुर, (इलाहाबाद) लगभग पहली शताब्दी ई0पू0 का उत्तरार्द्ध	"एक्सकेवेशन ऍट शृंग्वेरपुर", वाल्यूम-I, प्रो0 बी0बी0 लाल, दिल्ली, 1993, प्लेट XIV
1(B)	अर्न्तसंयोजन चैनल 1 के द्वारा जो जल कुण्ड A से कुण्ड B में गिरता था, उत्तरकालीन मिट्टी के कुण्ड के साथ प्राप्त उच्चस्तरीय ईंटों की रचना में, कुण्ड B के उत्तरी हिस्से का एक अवलोकन।	शृंग्वेरपुर, (इलाहाबाद) लगभग पहली शताब्दी ई0पू0 का उत्तरार्द्ध	"एक्सकेवेशन ऍट शृंग्वेरपुर", वाल्यूम-I, प्रो0 बी0बी0 लाल, दिल्ली, 1993, प्लेट XVIII
2(A)	जलाशय C का बाह्य अवलोकन, बाई ओर उत्तरकालीन कुषाण रचना।	शृंग्वेरपुर, (इलाहाबाद) लगभग पहली शताब्दी ई0पू0 का उत्तरार्द्ध	"एक्सकेवेशन ऍट शृंग्वेरपुर", वाल्यूम-I, प्रो0 बी0बी0 लाल, दिल्ली, 1993, प्लेट XLVIII
2(B)	मृत्तिका वलय कूप	कौशाम्बी, लगभग 450 ई0पू0 से 50 ई0पू0 तक	"हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री" प्रो0 जी0आर0 शर्मा, इलाहाबाद 1980, पृ0 63

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों मे उपलब्ध चित्र फलक
3(A)	कौशाम्बी स्तम्भ	कौशाम्बी, मौर्य सम्राट अशोक (272-232 ई0पू0)	कौशाम्बी में स्थित
3(B)	इलाहाबाद स्तम्भ, जिसमें अशोक के 6 लेख, रानी कारुवाकी का लेख, अशोक का कौशाम्बी लेख, समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति, राजा बीरबल का लेख तथा जहाँगीर का लेख उत्कीर्ण है।	अनुमानतः कौशाम्बी, मौर्य सम्राट अशोक (272-232 ई0पू0)	इलाहाबाद किले में संस्थापित।
4(A)	ताड की पत्ती के आकार और रूप का वर्गाकार शीर्ष	मेनहाई (कौशाम्बी) लगभग द्वितीय-प्रथम शती ई0पू0	जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इला0 विश्वविद्यालय
4(B)	फलक सहित घंटा और उस पर अंकित पशु आकृतियों में बैठा हुआ दो कुबड़वाला ऊँट जो कि चार सिंहों से घिरा हुआ है।	मेनहाई (कौशाम्बी) लगभग द्वितीय शती ई0पू0	जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इला0 विश्वविद्यालय संख्या A /36

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
5(A)	दार्नेदार तीन लड़ियों वाला हार पहनें हुए खड़े घोड़े की आकृति।	मेनहाई (कौशाम्बी) लगभग द्वितीय-प्रथम शती ई0पू0	जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इला0 विश्वविद्यालय संख्या A /35
5(B)	ईटों से निर्मित गुप्तकालीन भीतरगाँव मन्दिर, पश्चिम-उत्तरापथ शैली।	भीतरगाँव (कानपुर), लगभग 425-450 ई0	एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, प्लेट 45
6(A)	ईटों से निर्मित गुप्तकालीन भीतरगाँव मन्दिर, शिखर, दक्षिणमुख	भीतरगाँव (कानपुर), लगभग 425-450 ई0	एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, प्लेट-46
6(B)	ईटों से निर्मित गुप्तकालीन भीतरगाँव मन्दिर, उत्तरमुख, शिखर पर बने हुए आले।	भीतरगाँव (कानपुर), लगभग 425-450 ई0	एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, प्लेट-50

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
7	भीतरगाँव मन्दिर, दक्षिण दीवार, छोटे खम्भे।	भीतरगाँव (कानपुर) लगभग 425–450 ई0	एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्किट्रैक्चर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, प्लेट–51
8(A)	शक सम्वत् 2 में संस्थापित अभिलेखयुक्त, स्थानक बुद्ध प्रतिमा	कौशाम्बी, प्रथम शती ई0	इलाहाबाद संग्रहालय संख्या–69
8(B)	मथुरा शैली की अभिलेखयुक्त आसनस्थ बुद्ध प्रतिमा	मानकुँवार (इलाहाबाद), गुप्त संवत् 129 अर्थात् 448 ई0	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या–0.70
9	बुद्ध मस्तक	भीटा (इलाहाबाद) लगभग पाँचवीं शती ई0	इलाहाबाद संग्रहालय सख्या–229
10	हारीति की मृण्मयी प्रतिमा	कौशाम्बी	जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या KSH 209
11(A)	हारीति की प्रस्तर प्रतिमा	कौशाम्बी	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या–79.16

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
11(B)	अष्टभुजी विष्णु प्रतिमा	कौशाम्बी, दूसरी शती ई0	राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-49 247
12(A)	स्थानक चतुर्भुज विष्णुप्रतिमा	झूँसी (इलाहाबाद) पाँचवी शती ई0	इलाहाबाद संग्रहालय संख्या-952
12(B)	षड्भुजी विश्वरूपविष्णु प्रतिमा	गढवा (कौशाम्बी) पाँचवी शती ई0	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या बी-223 सी
13(A)	द्वार-खण्ड पर भीम-जरासंध युद्ध का दृश्य	गढ़वा (कौशाम्बी) गुप्तकाल	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या एच-88
13(B)	भीम-जरासंध युद्ध का दृश्य	गढवा (कौशाम्बी) गुप्तकाल	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या एच-88
14	अभिलेखयुक्त पंचमुखी शिवलिंग	भीटा (इलाहाबाद) द्वितीय शती ई0पू0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच-4
15(A)	पंचमुखी शिवलिंग, सामनें की तरफ से दाहिना मुख	भीटा (इलाहाबाद) द्वितीय शती ई0पू0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच-4
15(B)	पंचमुखी शिवलिंग, सामनें की तरफ से बायाँ मुख	भीटा (इलाहाबाद) द्वितीय शती ई0पू0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच-4
16(A)	पंचमुखी शिवलिंग, पीछे की तरफ से दाहिना मुख	भीटा (इलाहाबाद) द्वितीय शती ई0पू0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच-4

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
16(B)	पंचमुखी शिवलिंग, पीछे की तरफ से बायाँ मुख	भीटा (इलाहाबाद) द्वितीय शती ई0पू0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच–4
17(A)	चतुर्मुखी शिवलिंग, दक्षिणी भाग की मुखाकृति	कौशाम्बी, पाँचवी शती ई0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच–3
17(B)	चतुर्मुखी शिवलिंग, उत्तर भाग का स्त्रीमुख	कौशाम्बी, पाँचवी शती ई0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच–3
18(A)	चतुर्मुखी शिवलिंग, पश्चिमी मुख	कौशाम्बी, पाँचवी शती ई0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच–3
18(B)	चतुर्मुखी शिवलिंग, पूर्वी मुख	कौशाम्बी, पाँचवी शती ई0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या एच–3
19(A)	पाषाणखंड पर उत्कीर्ण सूर्य प्रतिमा	गढवा (कौशाम्बी) छठी शताब्दी ई0	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या–बी–223ए
19(B)	मृण्मयफलक पर चतुर्भुजी गणेश का अंकन	भीतरगाँव मन्दिर (कानपुर), पाँचवी शती ई0 का उत्तरार्द्ध	राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या–एस–2026

चित्रफलक क्रम संख्या	विवरण	प्राप्ति स्थान एवं आनुमानित काल	संग्रहालयों में संग्रहीत अथवा प्रकाशित ग्रंथों में उपलब्ध चित्र फलक
20(A)	गजलक्ष्मी की मृण्मयी प्रतिमा	कौशाम्बी, प्रथम शती ई0	जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या डी/62
20(B)	चैत्य झरोखे से झांकती हुई युवा स्त्री का मृण्मय फलक	भीतरगाँव मन्दिर (कानपुर), पाँचवी–छठी शती ई0	राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या–67.595

प्रथम अध्याय

शोध का प्रारूप

प्रथम अध्याय

शोध का प्रारूप

भारत गहरी नदियों, सघन वनों, टेढ़ी-मेढ़ी पर्वन-मालाओं, मरूस्थल और स्थानीय परिस्थितियों के फलस्वरूप अनेक भौगोलिक प्रदेशों में विभक्त है। वाराणसी विश्वविद्यालय के डा0 रामलोचन सिंह ने "इंडिया; ए रीजनल ज्योग्राफी"[1] पुस्तक में भारत को चार वृहद भागों में बाँटा है-

1. हिमालय पर्वतीय प्रदेश;
2. उत्तर का बड़ा मैदान;
3. पठारी उच्च प्रदेश;
4. भारतीय तटीय प्रदेश एवं द्वीप समूह।

इन्हें 28 प्रदेशों एवं 67 मध्यम प्रदेशों (Meso-Regions) में एवं इन उप-विभागों को पुनः 192 लघु प्रदेशों में बाँटा गया है।[2] वस्तुतः इस प्रकार के भौगोलिक विभाजन के फलस्वरूप किसी विशेष भौगोलिक प्रदेश की सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं का गहन अध्ययन अधिक सरल एवं सम्भव हो जाता है। गंगा यमुना के निचले दोआब का भौगोलिक क्षेत्र गंगा और यमुना नदियों के बीच का भाग है। इस दोआब की औसत गहराई 2500 से 4000 मीटर है। इसका ढाल दक्षिण-पूर्व की ओर है। यह दोआब इलाहाबाद पर समाप्त हो जाता है।[3] इस प्रकार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के शीर्षक का चयन एक भौगोलिक इकाई के रूप में किया गया है, जिसके अन्तर्गत छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0 के मध्य गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प सम्बन्धी कलात्मक सामग्री के अध्ययन

---

1 सिंह, रामलोचन, इण्डिया, ए रीजनल ज्योग्राफी, वाराणसी, 1971
2 मामोरिया, चतुर्भुज; भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 799-802
3 वही, पृष्ठ 845-846

की योजना बनाई गई है। स्थापत्यकला के अन्तर्गत मन्दिर, स्तूप, चैत्य, विहार आदि धार्मिक भवनों के अतिरिक्त नगर, ग्राम, राजप्रासाद तथा आवासीय भवनों की भी गणना की जाती है। मूर्तिकला के अन्तर्गत प्रस्तर, धातु एवं मृण्मयी मूर्तियां आती हैं, जो धार्मिक तथा सामाजिक दोनों महत्व की हैं।

पूर्ववर्ती अनुसंधान का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित पूर्ववर्ती अनुसंधान कार्यों में प्रधानतया संग्रहालय-सूची तथा उत्खनन से प्राप्त विवरणों के द्वारा ही इस क्षेत्र के स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प सम्बन्धी अवशेषों पर प्रकाश पड़ता है। प्रो0 जी0 आर0 शर्मा का "एक्सकेवेशन एटॅ कौशाम्बी"[4], प्रो0 बी0 बी0 लाल का "एक्सकेवेशन एटॅ श्रृंग्वेरपुर"[5], सर जॉन मार्शल की 1911-12 ई0 की एनुअॅल रिपोर्ट "एक्सकेवेशन एटॅ भीटा"[6] इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा 1995 से 1998 तक किया गया "झूँसी का उत्खनन"[7] है। संग्रहालय-सूची ग्रंथों में प्रमोद चन्द्र का "स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम"[8], सतीश चन्द्र काला का "टेराकोटा फिंगयूरिनस फ्रॉम कौशाम्बी"[9] एवं "टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम"[10], नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी का "कैटलॉग ऑव दि

---

[4] शर्मा, जी0 आर0; मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी 1949-50, दिल्ली 1969, शर्मा, जी0 आर0, एक्सकेवेशन एटॅ कौशाम्बी (1957-59), इलाहाबाद, 1960

[5] लाल, बी0 बी0; एक्सकेवेशन एटॅ श्रृंग्वेरपुर, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम I (1977-86), दिल्ली, 1993

[6] मार्शल, सर जॉन; एक्सकेवेशन एटॅ भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, एनुॅअल रिपोर्ट, 1911-12 कलकत्ता, 1915

[7] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0 पी0 स्टेट आर्कियोलॉजी डिपार्टमेन्ट, लखनऊ, अंक-6, पृष्ठ 63-66, अंक-9, पृष्ठ 45-49, अंक-10, पृष्ठ 23-30

[8] चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम (ए डिस्क्रप्टिव कैटलॉग), AIIS, पब्लिकेशन नं02, पूना, 1970

[9] काला, सतीश चन्द्र; टेराकोटा फिंगयूरिनस फ्रॉम कौशाम्बी, (मेनली इन दि कलेक्शन ऑव दि इलाहाबाद म्यूजियम), इलाहाबाद, 1950

[10] काला, सतीश चन्द्र; टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, दिल्ली, 1980

ब्राहम्निकल स्कल्पचर इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ"[11], ऋषिराज त्रिपाठी का "मास्टर पीसेज इन दि इलाहाबाद म्यूजियम"[12], वासुदेव शरण अग्रवाल का "मास्टर पीसेज ऑव मथुरा स्कल्पचर्स"[13] आदि बहुगुण विशिष्ट है और आज भी इनका सम्मान है।

परन्तु इन ग्रंथों में प्राप्त पुरावशेषों की शैलीगत विशेषताओं, प्राप्तिस्थान तथा तिथिक्रम आदि का संक्षिप्त विवरण मिलता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के माध्यम से अधीत क्षेत्रों के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त कलात्मक अवशेषों की शैलीगत विशेषताओं, उनके प्राप्तिस्थान सम्बन्धी सूचनाओं तथा उत्कीर्ण लेखों के आधार पर उनके काल-निर्धारण का प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिये-स्तूप, मन्दिर, शिलापट्ट अथवा मूर्ति की चौकी पर उत्कीर्ण लेख सम्बन्धित सामग्री के काल की सूचना देते हैं।[14]

भारतीय कला में सामान्य वर्ग एवं शासक वर्ग दोनों की धार्मिक मान्यताओं का समादर बुद्ध, महावीर, शिव, विष्णु आदि देवों के कलात्मक अंकन के रूप में देखा जा सकता है। शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक के मूर्तिशिल्प में मुख्यतः इन्हीं देवताओं की प्रतिमाओं का उत्कीर्णन हुआ, जिसकी पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से भी होती है। इस प्रकार पाँच सौ वर्षो तक (लगभग पहली शती ई0 से पाँचवी शती ई0 तक) धार्मिक आचार्य और कलाकार शिल्पी इसी दृष्टि से मौलिक रचना का कार्य करते रहे, जो बहुसंख्यक कृतियों के रूप में आज भी हमें प्राप्त होती रहती हैं।[15]

शोध शीर्षक के चयन का औचित्य

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के द्वारा गंगा-यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प सम्बन्धी कलात्मक अवशेषों को एक स्थान पर समग्र रूप में प्रस्तुत करनें की योजना बनाई गई है। इस रूप में इसका

---

11 जोशी, एन0 पी0; कैटलॉग ऑव दि ब्राहमिनिकल स्कल्पचर इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, पार्ट वन, लखनऊ, 1972

12 त्रिपाठी, ऋषिराज; मास्टरपीसेज इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, इलाहाबाद, 1984

13 अग्रवाल, वासुदेवशरण; मास्टरपीसेज ऑव मथुरा स्कल्पचर्स, वाराणसी, 1985

14 अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 2-3

15 अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, भूमिका- पृष्ठ- 9

चयन करके अभी तक अनुसंधान नहीं हुआ है। पुरातात्विक उत्खनन और अन्वेषण से अनेक नये साक्ष्य और तथ्य सामनें आ चुके हैं,[16] जिनके परिप्रेक्ष्य में नये सिरे से समीक्षा करनें की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में नवीन साक्ष्यों की खोज पर उतना अधिक जोर नहीं दिया गया है, जितना कि ज्ञात साक्ष्यों की व्याख्या पर। व्याख्या स्वभावतः व्यक्तिपरक होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इतिहास में किसी भी प्रकार की व्याख्या का आधार साक्ष्य होते हैं। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार-साक्ष्य वह रेखांकन है, जो अतीत अथवा वर्तमानकालिक घटना से संबद्ध ज्ञान की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सके।[17] किन्तु साक्ष्यों का चयन, उनकी व्याख्या और उनका मूल्यांकन शोध करने वालों की दृष्टि और उनकी प्रवृत्ति पर निर्भर करता है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध से सम्बन्धित साक्ष्यों के चयन तथा प्रस्तुति में यथासंभव तटस्थता तथा वस्तुनिष्ठता का पालन करनें का हर संभव प्रयास किया गया है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के माध्यम से ज्ञात साक्ष्यों का संकलन, उनकी व्याख्या तथा विश्लेषण के द्वारा रूचिकर एवं ग्राह्य निष्कर्ष प्रस्तुत करनें का प्रयास किया गया है।

स्रोत सामग्री एवं शोध की विधि

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की स्त्रोत सामग्री के रूप में दो प्रकार के स्त्रोत हैं :-

1. प्राथमिक स्रोत;
2. सहायक स्रोत।

---

[16] इंडियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1953-54 पृष्ठ 9; 1954-55 पृष्ठ 17-18; 1955-56 पृष्ठ 20, 1977-78 पृष्ठ 54-56, 1978-79 पृष्ठ 57-59; 1979-80 पृष्ठ 74; 1980-81 पृष्ठ 67-68; 1981-82 पृष्ठ 66-67, 1982-83 पृष्ठ 91-92; 1983-84 पृष्ठ 84-85; 1984-85 पृष्ठ 85-86

[17] चौबे, झारखण्ड; इतिहास दर्शन, वारणसी, 1996, पृष्ठ 137

1. प्राथमिक स्रोत

प्राथमिक स्रोत स्पष्टतः साहित्यिक एवं पुरातात्विक हैं। प्राचीन भारतीय साहित्यिक ग्रंथ प्रमुख साहित्यिक स्रोत हैं, जिनके सम्बन्ध में केवल यही कहा जा सकता है कि इनकी तिथि निर्धारण करना बहुत कठिन है। अतएव इन साक्ष्यों के उपयोग में अपनी संभावनायें तथा सीमायें हैं।

प्राचीन भारतीय साहित्य अधिकांशतः धार्मिक रहा है। धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत सर्वप्रथम वैदिक साहित्य का उल्लेख किया जा सकता है। वैदिक साहित्य में वर्णित देवालय तथा देव-प्रतिमा प्रतिकृति या बिम्ब शब्दों से मन्दिर तथा उसमें स्थापित मूर्तियों के अस्तित्व की कल्पना की जा सकती है।[18] प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में भारतीय वास्तु और मूर्तिकलाशैली की रूपरेखा प्रस्तुत करनें हेतु वैदिक साहित्य का अध्ययन किया गया है।

साहित्यिक ग्रंथों के एक अंग के रूप में पुराणों का अध्ययन आवश्यक है। पुराणों में वर्णित देवों के साकार रूप को कलाकारों ने विभिन्न कलाओं के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया।[19] प्राचीन मत्स्य पुराण[20] के अन्तर्गत विभिन्न देवों के प्रतिमा लक्षणों का विस्तृत रूप से विवेचन किया गया है। मत्स्य पुराण के अध्याय 252 वें में वास्तु विद्या के प्रसिद्ध अट्ठारह आचार्यो पर प्रकाश डाला गया है। स्तंभमान विनिर्णय नामक 255 वें अध्याय में स्तम्भों का विवेचन किया गया है। मत्स्य के अनुसार भवन निर्माण का प्रारम्भ स्तंभ रचना से होना चाहिए। स्तम्भ भवन की सम्पूर्ण योजना एवं रचना का आधार है। स्तम्भों को पाँच वर्गो में रखा

---

18 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्तिकला, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ 252

19 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान; भोपाल, 1972, पृष्ठ- 47

20 मत्स्यपुराणम; (अनु0) रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री (समा0) पं0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988 मत्स्यपुराण, क्षेमराज श्रीकृष्णदास, 'श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस,' बम्बई, सं0 1990

गया है- रुचक, वज्र, द्विवज्र प्रालीनक तथा वृत्त।[21] इस वर्गीकरण का आधार वास्तु सौन्दर्य एवं उपयोगिता है। प्रासाद-वर्णन नामक 269 वें अध्याय तथा मण्डप-लक्षण नामक 270 वें अध्याय में प्रासाद-वास्तु के विवरण मिलते हैं। इसी प्रकार अग्निपुराण[22] का विवरण भी पठनीय है। अग्निपुराण के 43, 44, 45, 46,49, 50, 51, 52, 53, 54, 55, 60 तथा 62वें अध्यायो में मूर्तिकला की प्रधानता है, जबकि अध्याय 42, अध्याय 104 (प्रासादलक्षणम्), अध्याय 105 (गृहादिवास्तुर्नाम) तथा अध्याय 106 (नगरादिवास्तुर्नाम) वास्तुकला से सम्बन्धित हैं। प्रतिमाशास्त्र की जानकारी में विष्णुधर्मोत्तरपुराण[23] का अध्ययन विशेषतया उल्लेखनीय है। यह ग्रंथ त्रिखण्डात्मक है। इसके तृतीय खण्ड में अध्याय चौवालीस से पच्चासी के अन्तर्गत सभी देवों, उनके आयुध और उनके वाहनों सहित प्रतिमा-संरचना का सविस्तार वर्णन समाहित है। वास्तुकला के अध्ययन में भी यह ग्रंथ उपयोगी है। इस पुराण के तृतीय खण्ड का अध्याय 86-101 'प्रासादलक्षणम्' नामित किया गया है। इसके अन्तर्गत अध्याय 86 से 88 पर्यन्त, प्रासादों के लक्षण, विशिष्ट प्रासाद 'सर्वतोभद्र' के स्वरूप का विवेचन किया गया है। अध्याय 89 से 92 प्रासादोपकरणों- काष्ठ, पाषाणशिला, इष्टिका के रूप-स्वरूप-अभिज्ञान का कथन, उनकी पहचान, उनके शुभाशुभ लक्षण, अन्वेषण, आनयन, शोधन तथा परीक्षण आदि की प्रक्रियाओं का विवेचन है। प्रासाद निर्माण हेतु स्थान, उसकी उपर्युक्तता-अनुपर्युक्तता, ग्राह्यता-अग्राह्यता का कथन अध्याय 93-94 में संयोजित

---

[21] रुचकश्चतुरः स्यातु अष्टास्त्रो वज्र उच्यते।।
द्विवज्रः षोडशास्त्रस्तु द्वात्रिंशास्त्रः प्रलीनक.।
मध्यप्रदेशे यः स्तम्भो वृत्तो वृत्त इति स्मृतः।।
एते पञ्चमहास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु।

मत्स्यपुराण अध्याय 255 श्लोक $1^1/_2$-$3^1/_2$

[22] अग्निपुराणम्; (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976 अग्निपुराण, आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि, पूना, 1957

[23] विष्णु धर्मोत्तर पुराण, (तीनों खण्ड) क्षेमराज श्री कृष्णदासेन सम्पादित; नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, विष्णु धर्मोत्तर पुराण, ए टेक्स्ट ऑन एन्श्यन्ट इण्डियन आर्ट, प्रियबालाशाह, अहमदाबाद, 1990 ई0.

है। इस प्रकार विष्णुधर्मोत्तर पुराण द्वारा विश्लेषणात्मक एवं विस्तारपूर्वक ढंग से वास्तुकला एवं मूर्तिनिर्माणकला का अध्ययन किया गया है।

अन्य साहित्यिक ग्रंथों में वराहमिहिर की बृहत्संहिता[24] के 'वास्तुविद्या' नामक 53वें अध्याय में प्रारम्भिक प्रवचनों वास्तु-चयन, भूमिपरीक्षा, वृक्षारोपण, दारु-आहरण, पद-विन्यास आदि का विवेचन मिलता है। 'प्रासाद लक्षण' नामक 56 वें अध्याय में बीस प्रकार के प्रासादों का वर्णन है, जो मत्स्यपुराण से मिलता जुलता है, साथ ही वास्तुकला सम्बन्धी इसके वैज्ञानिक विवरण विशेष उल्लेख्य हैं। मन्दिर की भूमि, द्वार, गर्भ-द्वार, चित्रण प्रतिमा-माप, पीठ-माप, भूमिका-उच्छ्य आदि पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। 'वज्रलेप-लक्षण' नामक 57 वें अध्याय में भवन-द्रव्यों पर विवेचन है। इसी प्रकार 'शयनासन-लक्षण' नामक 79 वें अध्याय में भवन-उपस्कर (फर्नीचर), आसन, शय्या, पर्यंक आदि का विवेचन किया गया है। बृहत्संहिता की एक विशेषता यह है कि इस ग्रंथ में वास्तुविद्या के सात आचार्यो-गर्ग, मनु, वशिष्ठ, पराशर, विश्वकर्मा, नग्नजित तथा मय के मतों का उल्लेख मिलता है। अध्याय 58 प्रतिमा लक्षण से सम्बन्धित है। अमरकोश[25] तथा अपराजितपृच्छा[26] का विवरण भी विभिन्न देवी-देवताओं की प्रतिमा-लक्षण के संदर्भ में उपयोगी है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र[27] में मूर्तिकला के विषय में अन्तःपुर के ऐसे स्थान का वर्णन है जो विभिन्न देवसमूह के निमित्त सुरक्षित था।[28] इसी प्रकार अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के भवन-द्वारों की देव-नामावली, जैसे-ऐन्द्र, वारुण,

---

[24] बृहत्संहिता (वराहमिहिरकृत); (अनु0) बलदेव प्रसाद जी मिश्र, श्री वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई, संवत् 1997

[25] अमरकोश (अमरसिंह कृत); पं0 रामस्वरूप कृत भाषा टीका सहित, श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संवत् 1962

[26] अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत); (सं0) पोपटभाई अम्बाशंकर मनकड़, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1950, अपराजितपृच्छा (ए क्रिटिकल स्टडी), लालमणि दूबे, प्रथम संस्करण, इलाहाबाद, 1987.

[27] कौटिल्य अर्थशास्त्र; (अनु0) श्री भारतीय योगी, बरेली, 1973

[28] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ 253

याम्य आदि तथा पारिभाषिक शब्द यथा कपिशीर्ष, इन्द्रकोप, हस्तिनख, कपाटयोग, सन्धि, बीज, गोपुर, तोरण, प्रतोली, विष्कम्भ, आयाम, उच्छ्राय, अस्ति आदि से तत्कालीन वास्तु विद्या की प्रचुर सामग्री की सत्ता प्राप्त होती है।[29] वास्तुशास्त्रीय ग्रंथों में भोजदेवकृत समरांगण-सूत्रधार[30] में विभिन्न शैलियों के भवनों-साधारण भवन (जनावास-शालभवन), राजभवन या राज-प्रासाद, देव-भवन (प्रासाद, मन्दिर), विशिष्ट भवन (जैसे सभा-भवन), उपभवन (जैसे गजशाला वाजिशाला) आदि का वैज्ञानिक, सामाजिक तथा धार्मिक वर्गीकरण प्राप्त होता है। भवन वास्तु विद्या पर इस ग्रंथ में लगभग तीन दर्जन (36 अध्याय) अध्याय हैं। समरांगण सूत्रधार का पुरनिवेश बड़ा ही व्यापक है। इसके प्रासाद वास्तु में दो प्रमुख शैलियों (उत्तरी अथवा नागर शैली तथा दक्षिणी अथवा द्राविड़ शैली) के अतिरिक्त उस समय तक विभिन्न जनपदों तथा वास्तु केन्द्रों में विकसित अन्य शैलियों- जैसे वावाट (वैराट), भूमिज एवं लाट (लतिन) आदि के न केवल बहुसंख्यक प्रासादों का ही प्रतिपादन है वरन् विभिन्न प्रासाद-जातियों के साथ-साथ स्मारकों (Monuments) में प्राप्त विभिन्न प्रासादों जैसे अजन्ता, एलोरा के गुहा मन्दिर (समरांगण-सूत्रधार इन्हें लयन, गुहाराज आदि नामों से पुकारता है) तथा स्तम्भ-बहुल, छाद्य-प्रासाद एवं शिखरोत्तम प्रासाद (भुवनेश्वर तथा खजुराहो), बहुभूमिक प्रासाद (तंजौर, मामल्लपुर) आदि अनेक स्मारक निदर्शन-सूचक प्रासादों का भी वर्णन मिलता है। इस प्रकार यह ग्रंथ न केवल मध्य-कालीन वास्तुकला (विशेषकर प्रासाद-वास्तु) का एक प्रामाणिक एवं अधिकृत ग्रंथ है अपितु उस काल तक की वास्तुकला की विकसित परम्पराओं का प्रकाशक दर्पण भी है।[31]

इतिहास अध्ययन के मूलभूत साक्ष्य के रूप में पुरातात्विक साक्ष्य अत्यन्त

---

29 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ; भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 33

30 समरांगणसूत्रधार (भोजकृत); (सं0) टी0 गणपतिशास्त्री;ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1966

31 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ- 39

सार्थक एवं सक्रिय भूमिका अदा करते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश के विभिन्न भागों में जो पुरातात्विक अन्वेषण एवं उत्खनन हुए हैं, उनसे नवीन सामग्री प्रकाश में आई है। पुरातात्विक साक्ष्य हमें दो रूपों में मिलते हैं....... अलिखित तथा लिखित। अलिखित साक्ष्य मानवकृत भौतिक पुरावशेषों तथा पुरानिधियों के रूप में मिलते हैं, तथा लिखित साक्ष्य अभिलेखों, मुद्राओं अथवा मुहरों तथा सिक्कों इत्यादि के रूप में प्राप्त होते हैं। ईसवी सन् के पूर्व के बेसनगर[32], घोषुंडी[33] तथा मथुरा[34] अभिलेखों से मूर्तिपूजा तथा देवालय के संदर्भ प्राप्त होते हैं।[35] प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों से प्राप्त मुद्राओं तथा मुहरों पर अंकित विभिन्न सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की आकृतियाँ तथा मुद्रालेख सम्बन्धित शासकों के काल में देवोपासना तथा प्रतिमा निर्माण सम्बन्धी अध्ययन में सहायता करते हैं।

पुरातात्विक अन्वेषण एवं उत्खनन के फलस्वरूप बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव तथा अन्य सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की प्रस्तर तथा मृण्मयी प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जो मूर्तिकला के अध्ययन में अत्यन्त सार्थक एवं सक्रिय भूमिका अदा कर रहीं हैं। ये प्रतिमायें देश के प्रमुख संग्रहालयों यथा- राष्ट्रीय संग्रहालय नई दिल्ली, राज्य संग्रहालय लखनऊ, भारत कला भवन वाराणसी, भारतीय संग्रहालय कलकत्ता, इलाहाबाद संग्रहालय, जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, मथुरा संग्रहालय आदि में प्रदर्शित हैं। कतिपय प्रतिमाओं की पीठ पर उत्कीर्ण लेखों से शासनकर्त्ता (राजा) का नाम तथा तिथि का ज्ञान होता है। इस प्रकार इनका तिथिक्रम अपेक्षाकृत अधिक निश्चय के साथ निर्धारित किया जा सकता है।

---

32 सरकार, डी0 सी0; सेलेक्ट इन्सक्रिप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 88-89.

33 वही, पृष्ठ 90-91

34 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 253

35 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ 254

2. सहायक स्रोत

सहायक स्रोत में आधुनिक विद्वानों द्वारा रचित ग्रंथ हैं, जिनमें द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल,[36] पी0 के0 आचार्य,[37] ए0 के0 कुमारस्वामी,[38] पर्सी ब्राउन,[39] स्ट्रैला क्रेमरिश,[40] एम0 ए0 ढाकी एवं कृष्णदेव[41] आदि की रचनायें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त मूर्तिकला के अध्ययन में जे0 एन0 बनर्जी कृत "दि डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी",[42] बी0 भट्टाचार्या की "दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी"[43] टी0 ए0 गोपीनाथ राव कृत "एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी"[44] "इन्दुमती मिश्र की ''प्रतिमा विज्ञान,"[45] वासुदेव उपाध्याय की "प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान"[46] तथा वासुदेव शरण अग्रवाल की "भारतीय कला"[47] आदि प्रमुख हैं।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में समकालीन राजनीतिक एवम् धार्मिक मान्यताओं का कलाकृतियों के निर्माण पर किस प्रकार प्रभाव पड़ा, इस तथ्य को उद्‌घाटित करने का विनम्र प्रयास किया गया है। छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0 के मध्य के राजनैतिक तथा धार्मिक क्रियाकलापों ने कलाकृतियों के निर्माणकार्य को

---

[36] शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ; भारतीय वास्तुशास्त्र (धाराधिय महाराज भोजदेव विरचित समरांगण-सूत्रधार के आधार पर), लखनऊ, 1955, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968.

[37] आचार्य, पी0 के0; एन एनसाइक्लोपीडिया ऑव हिन्दू आर्क्ट्रिक्चर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946

[38] कुमारस्वामी, ए0 के0; अर्ली इण्डियन आर्क्टिक्चर : सिटीज एण्डसिटी गेट्स, दिल्ली, 1991, हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965

[39] ब्राउन, पर्सी, इंडियन आर्क्टिक्चर (बुद्धिस्त एण्ड हिन्दू) बम्बई, 1942

[40] क्रेमरिश, स्ट्रैला; दि हिन्दू टैम्पल (टू पाटी), कलकत्ता 1946

[41] (सं0) ढाकी, एम0 ए0 एवम् देव कृष्ण, मिस्टर माइकल डब्लू, एनसाइक्लोपीडिया ऑव इंडियन टैम्पल आर्क्टिक्चर, (टू वाल्यूम), नई दिल्ली, 1988

[42] बनर्जी, जे0 एन0; दि डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, तृतीय संस्करण, मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली, 1974

[43] भट्टाचार्या, बी0; दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, द्वितीयसंस्करण, कलकत्ता, 1958

[44] राव, टी0 ए0 गोपीनाथ; एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, द्वितीय पुनर्मुद्रण, दिल्ली, 1985

[45] मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल 1972

[46] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026

[47] अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987

किस तरह से प्रभावित किया, इसको भी दिखानें का यथासम्भव प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के द्वारा निचले दोआब के अधीत क्षेत्रों के उत्खनित पुरास्थलों के विषय में उपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों, उनमें प्राप्त संकेतों तथा संदर्भो के आधार पर स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प सम्बन्धी अवशेषों का सघन पुरातात्विक अन्वेषण प्रस्तुत किया गया है। यथासम्भव छायाचित्र एवं रेखाचित्र तैयार किये गए हैं।

शोध कार्य का वर्गीकरण

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध सात अध्यायों में बाँटा गया है। प्रथम अध्याय परिचयात्मक है, जिसमें शोध के प्रारूप की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। इसके पश्चात् पूर्ववर्ती अनुसंधान का एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया गया है। तत्पश्चात् प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के शीर्षक के चयन के औचित्य की विवेचना की गई है। इसके बाद स्रोत सामग्री, शोध की विधि एवं अध्ययन का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय अध्याय में गंगा-यमुना के निचले दोआब के प्रमुख उत्खनित स्थानों यथा-इलाहाबाद जिले में स्थित झूँसी, श्रृंग्वेरपुर तथा भीटा, कौशाम्बी जिले में स्थित कौशाम्बी, मेनहाई तथा गढ़वा, फतेहपुर जिले में स्थित रेह तथा कानपुर जिले में स्थित भीतरगाँव आदि की भौगोलिक सीमाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0 तक के प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। प्राचीन भारत के ऐतिहासिक काल की शुरूआत इसी काल में होती है। राजनैतिक दृष्टि से इस समय प्राचीन भारत का अधिकांश भाग एक सुनिश्चित भौगोलिक सीमाओं वाले महाजनपदों में बँटा हुआ था। इन सोलह महाजनपदों में वत्स महाजनपद की राजधानी कौशाम्बी थी। 324 ईसा पूर्व से 184 ईसा पूर्व तक का काल प्राचीन

भारत के राजनीतिक इतिहास में मौर्यकाल के नाम से जाना जाता है। मौर्यकाल से ही राजनीतिक एकता का सूत्रपात हुआ, जिसका प्रभाव इस युग के कलात्मक विकास पर भी दिखाई पड़ता है। मौर्यकाल से वास्तुकला तथा मूर्तिकला के लिये स्थायी सामग्री के रूप में प्रस्तर का प्रयोग पूरी सहजता और सामर्थ्य से किया गया। द्वितीय शती ईसा पूर्व से प्रथम शती ईस्वी के मध्य का काल शुंग, शक और कुषाणों का काल माना जाता है। इस काल में यद्यपि मौर्य वंश की तरह की राजनीतिक एकरूपता नहीं स्थापित हो पाई थी, परन्तु स्थापत्य एवं मूर्ति कला के विकास की दृष्टि से यह काल अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है। उत्तर भारत में 230 ई0 के लगभग कुषाणसत्ता समाप्त हुई। इसके पश्चात् कतिपय स्थानीय राजवंशों के विषय में जानकारी मिलती है। 320 ई0 के आस-पास गुप्त वंश सत्तारूढ़ हुआ जिसने छठी शताब्दी ई0 तक शासन किया। निचले दोआब के राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में गुप्तयुग का विशेष महत्व है।

चतुर्थ अध्याय में स्थापत्य का अर्थ, वर्गीकरण एवं निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से ज्ञात स्थापत्य सम्बन्धी पुरावशेषों एवं सामग्री का क्रमवार वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस अध्याय में मुख्य रूप से इलाहाबाद, कौशाम्बी तथा कानपुर जिले के उत्खनित पुरास्थलों से ज्ञात स्थापत्य सम्बन्धी निम्न सामग्री को सम्मिलित किया गया है।

1. . लाहाबाद

इलाहाबाद जिले के श्रृंग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी आदि पुरातात्विक स्थलों के उत्खननसे वास्तुकला सम्बन्धी सामग्री में निम्नलिखित उल्लेखनीय है :

(i) श्रृंग्वेरपुर का ईटों से निर्मित जलाशय;

(ii) भीटा से प्राप्त भवनों की श्रृंखला;

(iii) झूँसी का हवेलिया टीला, आवासीय भवन तथा वलय कूप।

2. कौशाम्बी

कौशाम्बी जिले के कौशाम्बी, पभोसा, मेनहाई तथा गढ़वा आदि स्थलों से वास्तुकला सम्बन्धी निम्न अवशेषों को सम्मिलित किया गया है।

(i) घोषितााराम विहार तथा आयागपट्ट।

(ii) अशोक के दो स्तम्भ; प्रथम कौशाम्बी स्तम्भ तथा द्वितीय इलाहाबाद किले में संस्थापित अशोक स्तम्भ।

(iii) कौशाम्बी के आवासीय भवन तथा रक्षाप्राचीर।

(iv) कौशाम्बी का राज प्रासाद।

(v) रानी कारुवाकी का अभिलेख।

(vi) पभोसा का बृहस्पतिमित्र के मामा आषाढ़सेन का गुहा-निर्माण से सम्बन्धित लेख।

(vii) मेनहाई से प्राप्त वास्तुस्तम्भ।

(viii) गढ़वा का चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य", कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त कालीन शिलालेख।

3. कानपुर

कानपुर जिले के अन्तर्गत भीतरगाँव मन्दिर स्थापत्य को सम्मिलित किया गया है।

पंचम अध्याय में विभिन्न सम्प्रदाय यथा-बौद्ध, जैन, ब्राह्मण तथा अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियों के प्रतिमा शास्त्र सम्बन्धी विवरण को प्रस्तुत करते हुए गंगा-यमुना के निचले दोआब के अधीत क्षेत्रों के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त प्रस्तर प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है, तथा यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि निचले दोआब के इन क्षेत्रों से प्राप्त विभिन्न सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की

प्रतिमाओं के निर्माण में प्रतिमाशास्त्रीय निर्देशों का किस सीमा तक अनुपालन किया गया है तथा उसमें शिल्पकारों ने अपनी मौलिकता का कितना परिचय दिया है। इसी अध्याय में निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त मृण्मूर्तियों का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है।

षष्ठ अध्याय प्रतिमाओं के सौन्दर्यात्मक पक्ष से सम्बिन्धित है, जिसके अन्तर्गत प्रतिमाओं के आसन तथा मुद्रायें, प्रतिमा का वाहन, आयुध एवं प्रतीक, प्रतिमाओं का वस्त्राभूषण एवं अलंकार इत्यादि का सांस्कृतिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सप्तम् अध्याय में शोध के परिणामस्वरूप प्राप्त निष्कर्षो तथा उपसंहार का उल्लेख है।

द्वितीय अध्याय

भौगोलिक परिचय

द्वितीय अध्याय

भौगोलिक परिचय

प्रत्येक देश के इतिहास पर उसके भूगोल का प्रभाव पड़ता है। प्रसिद्ध अंग्रेज विद्वान वर्कले ने लिखा है कि 'मानव के क्रियाकलापों पर जितनी गहरी छाप उस देश की भौगोलिक दशा की पड़ती है, उतनी गहरी छाप स्वयं उसके अपने चिन्तन एवं विचार की भी नहीं पड़ती'।[1] भौगोलिक दृष्टि से भारत एक पृथक् देश है, परन्तु इसके महान विस्तार के कारण इसे देश की अपेक्षा उपमहाद्वीप कहना उचित होगा।[2] भारत का कुल क्षेत्रफल 32,87,263 वर्ग किलोमीटर है, जो कि ब्रिटेन से 12 गुना एवं जापान से 8 गुना बड़ा है तथा यह कनाडा का एक-तिहाई और चीन का भी एक-तिहाई है। इसी प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत की विशालता कम नहीं है। 1991 में यहाँ की जनसंख्या 84.63 करोड़ थी जो 2001 में 102 करोड़ से अधिक हो गई है।[3] किन्तु भारतवर्ष को केवल एक भौगोलिक संज्ञा के रूप में ही नहीं व्याख्यायित किया जाता है अपितु इसका अर्थ है, 'भरत जन' का देश अथवा भारतीय आर्य-संस्कृति का क्षेत्र। इसके स्वरूप की कल्पना गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु और कावेरी इन सात नदियों के देश के रूप में की गई है, जो इस समस्त भूखंड में फैली हैं।[4] चूँकि भारत की प्राचीन सभ्यता के केन्द्र इन्हीं नदियों की घाटियों में रहे हैं, अतएव आज भी भारत के अधिकांश प्राचीन मन्दिर, धार्मिक और व्यावसायिक केन्द्र इन्हीं नदियों के तट पर पाये जाते हैं।

गंगा उत्तरी भारत की सबसे प्रमुख नदी है। गंगा नदी वास्तव में भागीरथी

---

1. श्रीवास्तव, एम0पी0; प्राचीन अद्भुद भारत की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ-16
2. मुखर्जी, राधाकुमुद; हिन्दू सभ्यता, दिल्ली, 2000, पृष्ठ-67.
3. मामोरिया, चतुर्भुज; भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ-दो.
4. मुखर्जी, राधाकुमुद; हिन्दू सभ्यता, दिल्ली, 2000, पृष्ठ-73.

और अलकनन्दा नदियों का ही सम्मिलित नाम है। अलकनन्दा नदी गढ़वाल (तिब्बत की सीमा के निकट 7,800 मीटर की ऊँचाई) से निकलती है। देवप्रयाग के निकट अलकनन्दा और भागीरथी मिलकर एक हो जाती हैं और यहीं से यह शिवालिक श्रेणी को काटती हुई गंगा नदी के नाम से ऋषिकेश और हरिद्वार पहुंचती हैं। गंगा का मूल स्रोत हिमाच्छादित गंगोत्री के निकट गोमुख नामक स्थान है। इसके अपवाह प्रदेश में भारत के सबसे घने बसे और उपजाऊ राज्य उत्तर-प्रदेश, बिहार और पश्चिमी बंगाल हैं। इस प्रकार यह उत्तर प्रदेश के मेरठ, फर्रूखाबाद, इलाहाबाद, मिर्जापुर, वाराणसी और बलिया जिलों में होती हुई बहती है। इलाहाबाद में गंगा नदी में दाहिनी ओर से यमुना नदी आकर मिलती है। जो टेहरी गढ़वाल जिले (उत्तरांचल) के यमुनोत्री नामक गरम सोते से निकलती है।[5] गंगा और यमुना नदियों के बीच का क्षेत्र दोआब कहलाता है। दोआब फारसी का शब्द है, जो दो नदियों के बीच के प्रदेश के लिए प्रयुक्त होता है।[6] गंगा यमुना के निचले दोआब का क्षेत्र, ऊपरी गंगा के मैदान के अन्तर्गत आता है। गंगा का मैदान भारत के प्राकृतिक प्रखण्डों में अति विशिष्ट प्रखण्ड है। यह भारत के अनेक ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का केन्द्र रहा है जिसके कारण इसे भारत का हृदय स्थल या मध्यदेश कहा जाता है। लगभग 3,75,000 वर्ग किलोमीटर पर विस्तृत इसका विस्तार 21°25' से 30°17' उत्तरी अक्षांश और 77°30' से 90° पूर्वी देशान्तर के मध्य है। यह प्रखण्ड उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल के अधिकांश भाग को घेरे हुए है।[7] गंगा और उसकी सहायक नदियों के जलोढ़ से रचित इस विशाल मैदान का धरातल दो भागों में बाँटा गया है-(1) बांगड़, (2) खादर। सामान्य रूप से जहाँ नदियों की बाढ़ का जल नहीं पहुँच पाता है तथा नदियों द्वारा पुरानी मिट्टी के ऊंचे मैदान बन गये हैं, उन भागों को बांगड़ (Bangar) कहते हैं, तथा जहाँ बाढ़ का जल

---

5 मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 93-95.

6. पाण्डेय रामनिहोर; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (600 ई0पू0 से 319 ई0), इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 596.

7. राव, बी0पी0; भारत एक भौगोलिक समीक्षा, गोरखपुर, 1988, पृष्ठ, 332.

प्रतिवर्ष पहुंचकर नयी मिट्टी की पर्त जमा कर देता है, खादर के नाम से जाने जाते हैं। बांगड़ के मैदान का विस्तार उत्तर प्रदेश में सबसे अधिक पाया जाता है जबकि खादर की बहुतायत बिहार और पश्चिमी बंगाल में विशेष रूप से है।[8]

इस प्रकार गंगा के मैदान को इसकी भौतिक तथा सांस्कृतिक विशिष्टता के आधार पर तीन मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है।[9]

1. ऊपरी गंगा मैदान (Upper Ganga Plain)
2. मध्य गंगा मैदान (Middle Ganga Plain)
3. निचला गंगा मैदान (Lower Ganga Plain)

1. ऊपरी गंगा मैदान[10]

यह मैदान भारत के उत्तरी मैदान का एक महत्वपूर्ण भाग है, जिसके विषय में विभिन्न विद्वानों के मत इस प्रकार हैं, उदाहरण के लिए, डडले स्टाम्प और डा0 स्पेट 100 सेण्टीमीटर समवृष्टि रेखा को इस मैदान की पूर्वी सीमा मानते हैं, जो इलाहाबाद से होकर गुजरती है। प्रो0 आर0एल0 सिंह 100 मीटर समोच्च रेखा को इस मैदान की पूर्वी सीमा बताते हैं जो इलाहाबाद-फैजाबाद रेलमार्ग से समानान्तर चली गयी है। वस्तुतः गंगा के ऊपरी मैदान का विस्तार $25^0 15'$ से $30^0 17'$ उत्तरी अक्षाशों तथा $73^0 5'$ से $80^0 21'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य है।[11] इसका क्षेत्रफल लगभग 1,49,000 वर्ग किलोमीटर है जिसके अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश के निम्नलिखित जनपदों-सहारनपुर, मुजफ्फरपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, गाजियाबाद, बुलंदशहर, अलीगढ़, बदायूँ, बरेली, पीलीभीत, लखीमपुर, शाहजहाँपुर,

---

8 मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 80-81.
9 राव, बी0पी0; भारत एक भौगोलिक समीक्षा, गोरखपुर, 1988, पृष्ठ, 332.
10 शोध प्रबन्ध में गंगा-यमुना के निचले दोआब का स्थापत्य एवं मूर्ति शिल्प का अध्ययन करना है, जो ऊपरी गंगा के दक्षिणी मैदान के अन्तर्गत आता है। अतः यहाँ ऊपरी गंगा मैदान का विस्तृत वर्णन किया जायेगा। मानचित्र 1.
11. मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 844.

एटा, मथुरा, मैनपुरी, फतेहगढ़, हरदोई, सीतापुर, बहराइच, गोण्डा, बाराबंकी, लखनऊ, उन्नाव, कानपुर, इटावा, फतेहपुर, रायबरेली, इलाहाबाद, कौशाम्बी, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर और फैजाबाद के पूर्ण या अधिकांश भाग समाहित हैं।[12] इसकी पूरब-पश्चिम अधिकतम लम्बाई 550 किलोमीटर और उत्तर-दक्षिण चौड़ाई लगभग 380 किलोमीटर है।[13]

ऊपरी गंगा का मैदान एक समतल प्रायः मैदान है जो गंगा तथा उसकी सहायक नदियों जैसे-यमुना, रामगंगा, घाघरा आदि के द्वारा लाकर बिछाई गई उपजाऊ काँप मिट्टी से बना है। मैदान का ढाल उत्तर-उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-दक्षिण-पूर्व की ओर है, जिसकी औसत प्रवणता प्रति किलोमीटर 25 सेण्टीमीटर मानी जाती है। उत्तर के पर्वतपदीय मैदान में यह प्रवणता 100 सेण्टीमीटर प्रति किलोमीटर है, जबकि दक्षिण-पूर्व में केवल 10 सेण्टीमीटर है। अतः नदियाँ बहुत धीमी गति से बहती हैं और उनका उपयोग सिंचाई एवं नावें चलाने के लिए किया जाता है।[14]

2. मध्य गंगा मैदान

गंगा का मध्यवर्ती मैदान उत्तरी भारत के विशाल मैदान का ही मध्यवर्ती भाग है जिसकी पश्चिमी सीमा गंगा के ऊपरी मैदान से आरम्भ होती है। इसकी उत्तरी सीमा भारत-नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है तथा दक्षिण में 150 मीटर की समोच्च रेखा इसकी दक्षिणी सीमा निर्धारित करती है। इस मैदान की पूर्वी सीमा बिहार-बंगाल राज्यों की सीमा तक है, केवल उत्तर-पूर्व में बिहार राज्य के पूर्निया जिले की किशनगंज तहसील का वह भाग जो महानन्दा नदी के पूर्व में है, इस प्रदेश में सम्मिलित नहीं किया जाता है। इस प्रकार इसका विस्तार $24^{0}30'$ उत्तरी

---

12. राव, बी0पी0; भारत एक भौगोलिक समीक्षा, गोरखपुर, 1988, पृष्ठ 332.
13. मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत्त भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 844.
14. वही, पृष्ठ 845.

अक्षांश से $27^{0}50'$ उत्तरी अक्षांश एवं $81^{0}47'$ पूर्वी देशान्तर से $87^{0}50'$ पूर्वी देशान्तरों के मध्य है तथा इसका क्षेत्रफल 1,44,410 वर्ग किलोमीटर है।[15]

मध्य गंगा के मैदान में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर और वाराणसी संभाग (चन्दोली जिले की चकिया तहसील और मिर्जापुर जिले के अधिकांश भाग को छोड़कर), गोंड़ा जिले की बलरामपुर और अतरौला तहसील, फैजाबाद जिले की टाडा और अकबरपुर तहसीलें, प्रतापगढ़ की पट्टी, सुल्तानपुर जिले की सुल्तानपुर और कादीपुर तहसीलें, इलाहाबाद जिले की फूलपुर, हंडिया और सोराँव तहसीलें तथा बिहार के तिरहुत, भागलपुर और पटना सम्भाग सम्मिलित किये जाते हैं।[16]

3. निचला गंगा मैदान

गंगा का निचला मैदान वास्तव में गंगा नदी का डेल्टाई क्षेत्र है, जिसमें बिहार प्रान्त के पूर्णिया जिले की किशनगंज तहसील, सम्पूर्ण पश्चिमी बंगाल (पुरुलिया जिला तथा दार्जिलिंग के पहाड़ी भाग को छोड़कर) तथा पूर्वी पाकिस्तान का अधिकतम भाग सम्मिलित किया जाता है।[17] इसका विस्तार $21^{0}25'$ से $26^{0}50'$ उत्तरी अक्षांश एवं $86^{0}30'$ से $89^{0}58'$ पूर्वी देशान्तर के बीच है तथा क्षेत्रफल 80,968 वर्ग किलोमीटर है।[18]

यद्यपि निचले गंगा मैदान को गंगा का डेल्टा क्षेत्र कहा जाता है, किन्तु वास्तविक डेल्टा क्षेत्र इस प्रदेश के केवल दो-तिहाई भाग में ही है जो राजमहल-गारो पहाड़ियों के दक्षिणी ढाल के बीच और पूर्व में बंगलादेश के बीच में स्थित है। इस मैदान की पूर्वी सीमा भारत व बांगलादेश के बीच अन्तर्राष्ट्रीय सीमा है। दक्षिण-पश्चिम में 150 मीटर समोच्च रेखा इसकी सीमा बनाती है। इस प्रकार यह मैदान उत्तर में हिमालय के दार्जिलिंग प्रदेश से दक्षिण में बंगाल की खाड़ी के

---

15 मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ 853.
16. मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ-853.
17. सिंह, आर0एल0; इण्डिया, रीजनल ज्योग्राफी, वाराणसी, 1971, पृष्ठ-252.
18 वही, पृष्ठ-252.

बीच 580 किलोमीटर की लम्बाई में फैला है तथा दक्षिण-पश्चिम में छोटा नागपुर पठार से लेकर बंगलादेश तक 200 किलोमीटर चौड़ा है। यह समतल तथा अत्यन्त उपजाऊ मैदान है। अतः इस मैदान में धान, जूट, चाय, गन्ना तथा तम्बाकू आदि फसलें पैदा की जाती हैं।[19]

ऊपरी गंगा मैदान

ऊपरी गंगा के मैदान को धरातलीय संरचना की दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है[20]:-

1. ऊपरी गंगा का उत्तरी मैदान (Upper Ganga Plain North)

ऊपरी गंगा के उत्तरी मैदान को पुनः दो उपभागों में बांटा जा सकता है।

(i) रोहिलखण्ड का मैदान।

(ii) अवध का मैदान।

2. ऊपरी गंगा का दक्षिणी मैदान (Upper Ganga Plain South)

ऊपरी गंगा के दक्षिणी मैदान को पुनः तीन उपभागों में बांटा जा सकता है[21]-

(i) गंगा यमुना का ऊपरी दोआब,

(ii) यमुना पार (ट्रांस) का मैदान,

(iii) गंगा यमुना का निचला दोआब।

(i) गंगा यमुना का ऊपरी दोआबः-गंगा यमुना के ऊपरी दोआब में गढ़,

---

19. मामोरिया, चतुर्भुज; आधुनिक भारत का बृहत भूगोल, आगरा, 2002, पृष्ठ-861 तथा 864.
20 सिंह, आर0एल0; इण्डिया, रीजनल ज्योग्राफी, वाराणसी, 1971, पृष्ठ-124.
21. सिंह, आर0एल0; इण्डिया, रीजनल ज्योग्राफी, वाराणसी, 1971, पृष्ठ-179.

सहारनपुर, मेरठ तथा अलीगढ़ जनपद प्रमुख रूप से सम्मिलित हैं।

(ii) यमुनापार (ट्रांस) का मैदान—इसमें मथुरा (ब्रिज मैदान) और आगरा के मैदान आते हैं।

(iii) गंगा यमुना का निचला दोआब[22]

गंगा यमुना के निचले दोआब में मुख्य रूप से कानपुर, फतेहपुर, कौशाम्बी और इलाहाबाद जिलों के क्षेत्र सम्मिलित हैं। इसमें इलाहाबाद जिले में स्थित झूँसी, श्रृंग्वेरपुर तथा भीटा, कौशाम्बी जिले में स्थित–कौशाम्बी, गढ़वा तथा मेनहाई, फतेहपुर जिले में स्थित रेह तथा कानपुर जिले में स्थित भीतरगाँव आदि पुरास्थल प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की भौगोलिक सीमा के अन्तर्गत आते हैं। **पुरातात्विक दृष्टि से इन स्थलों को भी दो वर्गो के अन्तर्गत रख सकते हैं। प्रथम वर्ग** में उन स्थलों को सम्मिलित किया जा सकता है जहाँ विभिन्न संस्थाओं के द्वारा उत्खनन कार्य किया गया है जैसे कि–कौशाम्बी, भीटा, श्रृंग्वेरपुर और झूँसी तथा **द्वितीय वर्ग** के अन्तर्गत वे स्थल आते हैं, जिनके विषय में पुरातात्विक अन्वेषणों से तो जानकारी प्राप्त होती है, परन्तु अभी तक यहाँ उत्खनन कार्य नहीं सम्पन्न हुआ है, इन स्थलों में भीतरगाँव, गढवा, लाक्षागृह और दुर्वासा आश्रम इत्यादि की गणना की जा सकती है। इन पुरास्थलों की भौगोलिक स्थिति का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है।

कौशाम्बी

कौशाम्बी नामक पुरास्थल मंझनपुर तहसील में इलाहाबाद शहर से दक्षिण–पश्चिम दिशा में लगभग 51 किलोमीटर की दूरी पर यमुना नदी के बायें किनारे पर स्थित है। यह अक्षांश 25^{0},20' उत्तर, देशान्तर 81^{0}23' पूर्व पर स्थित है। प्रारम्भ में कौशाम्बी इलाहाबाद जिले में सम्मिलित था, किन्तु 4 मार्च 1997

---

22. शोध प्रबन्ध में गंगा यमुना के निचले दोआब का स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प का अध्ययन करना है अतः इस क्षेत्र के प्रमुख उत्खनित स्थलों का ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया जायेगा। मानचित्र 2 एवम् 3.

को तत्कालीन मुख्यमंत्री मायावती के कार्यकाल में इसको एक पृथक् जिले का स्वरूप प्रदान किया गया।[23] प्राचीन काल में यह नगर वत्स राज्य की राजधानी था।[24] महापरिनिब्बानसुत्त के अनुसार जब गौतमबुद्ध ने कुशीनगर में मरने की इच्छा प्रकट की, उस समय उनके शिष्य आनन्द ने कहा था-'भगवन यह छोटा सा नगर आपके परिनिर्वाण के उपर्युक्त नहीं है। चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी तथा वाराणसी जैसे विशाल नगर हैं। इससे स्पष्ट होता है कि कौशाम्बी की गणना तत्कालीन छः प्रसिद्ध नगरों में होती थी।[25]

कौशाम्बी नगर के अभिज्ञान तथा उसके अवशेषों के प्रथम प्रकाशन का श्रेय कनिंघम को है। उन्होंने 1862-63 की सर्वेक्षण आख्या में इलाहाबाद से लगभग 32 मील दूर यमुना के बायें तट पर स्थित कोसम ग्राम की पहचान कौशाम्बी से सिद्ध की थी।[26]

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से 1936-37 में एन0जी0 मजूमदार ने कौशाम्बी का उत्खनन कराना प्रारम्भ किया था परन्तु यह कार्य केवल दो वर्षो तक ही चल पाया (1937-38) था, क्योंकि एक दुर्घटना में श्री मजूमदार की मृत्यु हो गई।

पुनः यहॉ पर 1949 से 1964 ई0 तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के प्रो0 जी0आर0 शर्मा के निर्देशन में उत्खनन कार्य किया गया[27], जिसके फलस्वरूप शिलालेखों, मूर्तियों तथा मुद्राओं के रूप में अत्यन्त महत्वपूर्ण सामग्रियाँ प्राप्त हुई। कौशाम्बी का उत्खनन मुख्यतः चार क्षेत्रों में किया गयाः-

---

23 दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 21 फरवरी, 2002
24. राय, उदयनारायण; प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998, पृष्ठ 101-102
25. राय, उदयनारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, 1998, पृष्ठ 101-102
26. कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, वाल्यूम I, पृष्ठ-301.
27 शर्मा, जी0आर0; एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी (1957-59), इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 1960, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया नं0 74, 1969, दिल्ली, कुषाण स्टडीज, इलाहाबाद, 1968.

(1) अशोक स्तम्भ क्षेत्र;

(2) घोषिताराम विहार क्षेत्र;

(3) पूर्वी प्रवेशद्वार के पास स्थित रक्षा प्राचीर;

(4) राजप्रासाद क्षेत्र।

कौशाम्बी के टीले के मध्यवर्ती भाग में अशोक का एक लेख रहित पाषाणस्तम्भ स्थापित है इसलिए इस क्षेत्र को अशोक स्तम्भ क्षेत्र का नाम दिया गया है। 1949 ई0 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग की ओर से इस क्षेत्र का उत्खनन किया गया। कौशाम्बी के टीले के पूर्वी भाग में स्थित घोषिताराम विहार का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से 1951 से 1956 ई0 तक किया गया।[28] उत्खनन के फलस्वरूप अन्य वस्तुओं के अलावा आयागपट्ट पर अंकित दो पंक्तियों का अभिलेख विशेष महत्वपूर्ण माना गया है, जिसके अनुसार भदन्तधर के शिष्य भिक्षु फग्गल ने घोषिताराम में सभी बुद्धों की पूजा के लिए शिला स्थापित करायी थी। विभिन्न साक्ष्यों के द्वारा इस बात की पुष्टि होती है कि घोषिताराम विहार कौशाम्बी में स्थित था, इसलिए आयागपट्ट पर उल्लिखित उक्त अभिलेख से कौशाम्बी के समीकरण में महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई एवं निश्चित रूप से यह ज्ञात हो सका कि वर्तमान कौशाम्बी प्राचीन कोसम ग्राम ही थी। कौशाम्बी के तीसरे चरण का उत्खनन पूर्वी प्रवेशद्वार के पास सन् 1957–59 ईसवी के बीच हुआ जिससे रक्षा–प्राचीरो के निर्माण पर महत्वपूर्ण प्रकाश पडा। यहॉ की रक्षा–प्राचीरो को कुछ समय पश्चात् रक्षक–कक्षो तथा बुर्जो से सुसज्जित किया गया था। कौशाम्बी के उत्खनन का चौथा चरण यमुना नदी से लगे हुए टीले के दक्षिणी–पश्चिमी भाग में सन् 1960 ईसवी मे सम्पन्न हुआ। यहॉ से चहारदीवारी के जो साक्ष्य, मिले है, वे राजमहल के निर्माण का सकेत करते हैं। यद्यपि इस बात का कोई

---

28 इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954–55, पृष्ठ 16, 1955–56, पृष्ठ–20, 1956–57, पृष्ठ–28–29.

अभिलेखिक साक्ष्य नही मिला है कि यहॉ पर कोई राजपरिवार रहता रहा होगा लेकिन इसकी विशालता तथा निर्माण में पत्थरो के प्रयोग को देखकर यह अनुमान लगाया गया है कि इसका निर्माण किसी विशिष्ट व्यक्ति के रहने के लिए किया गया होगा।

कौशाम्बी के प्राचीन नगर के पूर्वी द्वार मार्ग से 24 किलोमीटर पूर्व मे मेनहाई नामक गॉव स्थित है। यहॉ से शुगकालीन स्तम्भ तथा मूर्तियॉ प्राप्त हुई है।

कौशाम्बी के पश्चिम मे लगभग 5 किलोमीटर की दूरी पर पभोसा की चट्टानयुक्त पहाडियॉ स्थित है।[29] यहॉ से प्राप्त एक बलुआ प्रस्तर खण्ड के ऊपर सस्कृत मे लिखा लेख मिला है– 'कौशाम्बी नगर बाह्य प्रभासाचलोपरि'।[30] इससे विदित होता है कि प्रभास (आधुनिक पभोसा) कौशाम्बी नगर के समीप स्थित है। यमुना तट पर बसे इस वैभवशाली स्थान पर जैन धर्म के छठे तीर्थंकर पद्मप्रभ का जन्म हुआ था। उन्होने इसी पवित्र भूमि पर वैराग्य लिया था और प्रभासशिरवर पर तप करके कैवल्य पद प्राप्त किया था। पभोसा से जैन धर्म से सम्बन्धित विपुल कला सामग्री प्राप्त हुई है।

कौशाम्बी के दक्षिण- पूर्व मे 24 किलोमीटर की दूरी पर गढवा स्थित है। यह इलाहाबाद के दक्षिण–पश्चिम मे 40 किलोमीटर की दूरी पर है।[31] यह अक्षाश 25° 13' उत्तर, देशान्तर 81° 38' पूर्व पर स्थित है।[32] गुप्तवशीय राजाओ के शासनकाल में यह एक प्रसिद्ध नगर था तथा इसे 'भट्टग्राम' कहते थे। गढवा के लेखों का पता बाबू शिवप्रसाद ने लगाया था। तदुपरान्त कनिघम ने 1871–72 तथा 1876–77 की अपनी सर्वेक्षण आख्या मे इनका प्रकाशन किया।[33] गढवा से गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प के सुन्दर उदाहरण प्राप्त हुए है जो राज्य संग्रहालय लखनऊ मे सुरक्षित है।[34]

---

29 उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, इलाहाबाद, 1968, पृष्ठ–384
30 घोष, एन0 एन0; अर्ली हिस्ट्री ऑफ कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1935, पृष्ठ 94-95
31 उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, इलाहाबाद, 1968, पृष्ठ–32-33
32 इण्डियन एटलस, शीट नं0 88
33 कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम III, 1871-72 पृष्ठ 53-60, कनिंघम, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम X, 1876-77 पृष्ठ 9-14
34 जोशी, एन0 पी0; कैटलॉग ऑव दि ब्राहिमिनिकल स्कल्पचर इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, प्रथम भाग, 1972, पृष्ठ 82 तथा 85-89

भीटा

भीटा इलाहाबाद जिले की बारा तहसील के अन्तर्गत दक्षिण–पश्चिम दिशा मे लगभग 15 किलोमीटर की दूरी पर यमुना नदी के दक्षिणी तट पर स्थित है। यह अक्षाश 25° 18' उत्तर, देशान्तर 81° 37' पूर्व पर स्थित है।[35] भीटा के अभिज्ञान और उसके अवशेषो के प्रथम प्रकाशन का श्रेय अलेक्जेण्डर कनिघम को है। 1871–72 की सर्वेक्षण आख्या मे उन्होने यह स्पष्ट किया कि भीटा इलाहाबाद के दक्षिण–दक्षिण पश्चिम मे 10 मील (16 किलोमीटर) की दूरी पर स्थित है।[36] उन्होने भीटा का समीकरण जैनियो के ग्रथ वीर–चरित्र मे उल्लिखित प्राचीन बीथा–व्यपटन से समीकृत किया जो महावीर के समय मे अत्यन्त समृद्धशाली था।

1911–12 ई0 मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के द्वारा सर जॉन मार्शल के निर्देशन मे यहॉ पर उत्खनन किया गया जिसके फलस्वरूप विभिन्न कालो से सम्बन्धित पुरातात्विक सामग्रियॉ प्राप्त हुई।[37] ये सामग्रियॉ पॉच कालो से सम्बन्धित मानी जाती है– पूर्व ऐतिहासिक काल, मौर्यकाल, शुंगकाल, कुषाणकाल तथा गुप्त एव गुप्तोत्तर काल।

भीटा के पूर्व 1.5 किलोमीटर की दूरी पर मानकुॅवार नामक गॉव स्थित है। यहॉ से गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम का एक लेख प्राप्त होता है जिस पर गुप्तसवत 129 अर्थात् 448 ई0 की तिथि अकित है। लेख बुद्ध प्रतिमा की चौकी पर उत्कीर्ण है। कनिघम की 1874–75 एव 1876–77 ई0 की सर्वेक्षण आख्या मे इस लेख का उल्लेख मिलता है।[38] परन्तु इसके प्रकाशन का श्रेय भगवान लाल इन्द्रजी को है, जिन्होने जर्नल ऑफ बाम्बे ब्राच ऑव रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के जिल्द 16 मे इस लेख का पाठ, अंग्रेजी अनुवाद–सहित प्रकाशित किया था।[39]

---

35 शर्मा, जी0 आर0; रेह इन्स्क्रप्शन ऑव मिनेण्डर एण्ड दि इण्डोग्रीक इनवेजन ऑव दि गंगा वैली, 1980, पृष्ट 24–25

36 कनिंघम; आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम III, 1871–72, पृष्ठ 46–52

37 मार्शल, सर जॉन; आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, पृष्ठ 29–94

38 कनिंघम; आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वाल्यूम X, पृष्ठ–6

39 राय, उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ– 267

शृंग्वेरपुर

शृग्वेरपुर नामक पुरास्थल आधुनिक इलाहाबाद जिले की सोरॉव तहसील में इलाहाबाद उन्नाव मार्ग पर उत्तर–पश्चिम दिशा मे लगभग 36 किलोमीटर की दूरी पर गंगा नदी के बॉए तट पर स्थित है। यह अक्षाश 25° 35' उत्तर, देशान्तर 81° 39' पूर्व पर स्थित है। ऐसी मान्यता है कि यहॉ शृगी ऋषि का आश्रम था। बाल्मीकिकृत रामायण के पन्द्रहवे सर्ग मे यह उल्लेख मिलता है कि महात्मा ऋष्य ऋङ्ग ने पुत्र प्राप्ति के उद्देश्य से राजा दशरथ के यहॉ पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था।[40] वर्तमान समय मे शृगी ऋषि तथा उनकी पत्नी को समर्पित एक छोटा (आधुनिक) मन्दिर यहॉ पर बना हुआ है। अतः यह स्थान उन्ही के नाम पर शृग्वेरपुर कहलाता है।[41] 14वी शताब्दी के बाद शृग्वेरपुर को सिगरौर के नाम से पुकारा जाने लगा था।[42] बाल्मीकिकृत रामायण के ही पचासवे सर्ग मे शृग्वेरपुर का वर्णन इस प्रकार से हुआ है कि श्रीराम जब अयोध्यावासियो सहित इस स्थान पर पधारे तो निषादो के सरदार गुह ने उनका स्वागत किया था। राम ने यही से सभी अयोध्यावासियो को लौटाकर लक्ष्मण और सीता सहित मुनियो का वेश धारण किया तथा नौका द्वारा गगा पार की थी।[43]

शृग्वेरपुर का उत्खनन कार्य शिमला उच्च अध्ययन सस्थान और भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के संयुक्त तत्वाधान में प्रो0 बी0बी0 लाल और के0 एन0 दीक्षित के निर्देशन में दिसम्बर सन् 1977 से 1987 ई0 तक किया गया।[44] इसके फलस्वरूप यहॉ के इतिहास को सात सास्कृतिक कालो मे विभक्त किया गया है इसमें प्रथम काल (1050–1000 ई0पू0),

---

40 रामायण, बाल्मीकिकृत, संवत् 2033, गीताप्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, पद्रहवॉं सर्ग, श्लोक, 1–3

41 दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 1 फरवरी 2001

42 दैनिक जागरण, जागरण विविध, इलाहाबाद, 6 जुलाई, 2000.

43 रामायण, बाल्मीकिकृत, संवत् 2033, गीताप्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, 50/13–40

44 लाल, बी0 बी0, एक्सकेवेशन ऍट शृंग्वेरपुर, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकिल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम I, 1993, नई दिल्ली। इंडियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1977–78 पृष्ठ 54–56, 1978–79, पृष्ठ 57–59, 1979–80 पृष्ठ 74, 1980–81 पृष्ठ 67–68, 1981–82 पृष्ठ 66–67, 1982–83 पृष्ठ 91–92, 1983–84 पृष्ठ 84–85 एवम् 1984–85 पृष्ठ 85–86

द्वितीय काल (950–700 ई0 पू0), तृतीय काल (700–200 ई0 पू0), चतुर्थ काल (200 ई0 पू0 200 ई0), पचम काल (300–600 ई0), षष्ठ काल (600–1300 ई0) और 17 वीं से 18 वी सदी ई0 मे सप्तमकाल को सम्मिलित किया गया है। प्रो0 बी0 बी0 लाल के अनुसार श्रृग्वेरपुर की बस्ती दो अन्तरालो को छोडकर निरन्तर चलती रही है। पहला अन्तराल लगभग 50 वर्षो का था जो प्रथमकाल और द्वितीय काल के बीच मे था। दूसरा अन्तराल लगभग 100 वर्षो का था जो चतुर्थकाल और पचम काल के बीच का था। उपर्युक्त सातो कालो मे सबसे महत्वपूर्ण चतुर्थकाल माना जाता है। इस काल से सम्बन्धित सिक्को और मूर्तियों के अतिरिक्त उत्खनन से जो महत्वपूर्ण सामग्री मिली है वह पक्का तालाब या जलाशय है। इसका समय प्रथम शताब्दी ई0 पू0 माना जाता है।

झूँसी (प्रतिष्ठान॰र)

झूँसी अर्थात् प्राचीन प्रतिष्ठानपुर इलाहाबाद शहर से 9 किलोमीटर की दूरी पर गगा के पूर्व मे स्थित है। यह अक्षाश 25° 26' उत्तर, देशान्तर 81^0 54' पूर्व पर स्थित है। पुराणो मे चन्द्रवशी राजाओ की राजधानी के रूप में इसका उल्लेख किया गया है।[45] गगा यमुना के निचले दोआब मे इलाहाबाद जिले मे स्थित चार महत्वपूर्ण पुरातात्विक स्थलो मे कौशाम्बी, (प्रारम्भ मे कौशाम्बी इलाहाबाद जिले मे सम्मिलित था, 4 मार्च, 1997 को तत्कालीन मुख्यमत्री मायावती के कार्यकाल मे इसको एक पृथक् जिले का स्वरूप प्रदान किया गया।)[46] भीटा तथा श्रृग्वेरपुर का उत्खनन कार्य विगत वर्षो मे सम्पन्न हो चुका था। झूँसी का उत्खनन कार्य इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग के पुरावेत्ताओ द्वारा सर्वप्रथम मार्च 1995 से अप्रैल 1995 ई0 तक किया गया। यह कार्य प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा, श्री बी0 बी0 मिश्रा, डा0 जे0 एन0 पाण्डेय, डा0 जे0 एन0 पाल, डा0 यू0 सी0 चट्टोपाध्याय, डा0 डी0 के0 शुक्ला तथा डा0 एम0 सी0 गुप्ता के निर्देशन में

---

45 प्राग्धारा, जर्नल ऑफ दि यू0 पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल आर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1995–96, अंक–6, पृष्ठ– 63

46 दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 21 फरवरी, 2002.

किया गया।[47] इस उत्खनन का अगला चरण मार्च 1998 से जून 1998 तक चला जिसमे प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा, श्री बी0 बी0 मिश्रा, डा0 जे0 एन0 पाण्डेय, डा0 जे0एन0 पाल, डा0 यू0सी0 चटोपाध्याय, डा0 डी0 के0 शुक्ला, डा0 एम0 सी0 गुप्ता के साथ ही डा0 प्रकाश सिन्हा नें भी भाग लिया।[48] मार्च 1999 से जून 1999 तक पुन यहॉ पर प्रो0 वी0 डी0 मिश्रा, डा0 जे0 एन0 पाल तथा डा0 माणिक चन्द्र गुप्ता के निर्देशन मे उत्खनन कार्य किया गया।[49] यहॉ के इतिहास को पॉच सास्कृतिक कालो मे बॉटा गया है। जिसमे प्रथम काल ताम्रपाषाणिक सस्कृति का काल माना जाता है, जब मानव तॉबे और पाषाण के बने औजारो का प्रयोग करते थे। इस काल के मानव नें अपनी बस्तियो का विस्तार समीपवर्ती क्षेत्रो मे भी किया जिनमे दुर्वासा आश्रम, महनैया डीह तथा रहिमनपुर आदि आद्यैतिहासिक स्थल सम्मिलित है। यहॉ की द्वितीय सस्कृति एन0 बी0 पी0 तथा सम्बन्धित पात्र–परम्परा की है, जिसका समय सातवी शताब्दी ईसा पूर्व से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक माना जाता है। तृतीय सस्कृति शुग–कुषाण एव पूर्व गुप्तयुग की सस्कृति रही है। इसका समय दूसरी शताब्दी ई0 पू0 से तीसरी शताब्दी ई0 के बीच अनुमानित किया जाता है। यहॉ की चौथी सस्कृति, गुप्तकाल के लिये, चौथी शताब्दी ई0 से पॉचवी शताब्दी ई0 के बीच का समय निर्दिष्ट किया जाता है। अन्तिम पॉचवी संस्कृति का धरातल पूर्व मध्यकाल माना जाता है, जिसका समय दसवी, ग्यारहवी शती ई0 से पद्रहवी शताब्दी ई0 तक माना गया है।[50]

मई 2003 मे, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एव पुरातत्व विभाग के आचार्य डा0 जे0एन0 पाल के निर्देशन मे, एक बार पुन झूँसी मे उत्खनन कार्य किया गया, जिसके फलस्वरूप इस तथ्य पर प्रकाश पडता है कि इस स्थल पर नवपाषाण काल अर्थात् भारत के आद्यैतिहासिक युग से मानव बस्तियो का प्रभूत संकेन्द्रण था, एव

---

[47] प्राग्धारा, अंक–6, पृष्ठ 64–66

[48] प्राग्धारा; जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्योलॉजिकल आर्गिनाइजेशन लखनऊ, 1998–99, अंक 9, पृष्ठ 45–49

[49] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्योलॉजिकल आर्गिनाइजेशन लखनऊ, 1999–2000, अंक 10, पृष्ठ 23–30

[50] प्राग्धारा; जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्योलॉजिकल आर्गिनाइजेशन लखनऊ, अंक–10 पृष्ठ 28

झूँसी ऐसा स्थल था, जहाँ से आस–पास के क्षेत्रो मे मानव सभ्यता का उत्तरोत्तर क्रमश सचरण हुआ। उत्खनन कार्य मै डा0 एम0 सी0 गुप्ता एव डा0 राम नरेश पाल इत्यादि नें भाग लिया। उत्खनन कार्य का निरीक्षण तत्कालीन विभागाध्यक्ष प्रो0 ओम प्रकाश एव पूर्व विभागाध्यक्ष एव पुरावेत्ता प्रो0 वी0डी0 मिश्रा ने किया।[51]

रेह

रेह उत्तर प्रदेश राज्य के फतेहपुर जिले में यमुना नदी के बाएँ तट पर स्थित है। यह स्थान कौशाम्बी के पश्चिम में 96 किलोमीटर की दूरी पर है। रेह अक्षांश 25° 51' 19" उत्तर, देशान्तर 80° 33' 36" पूर्व पर स्थित है।[52] 1979 ईसवी में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग को यहाँ से अभिलेख–युक्त एक प्रस्तर खण्ड प्राप्त हुआ था, जिसकी आकृति शिवलिंग से मिलती–जुलती है। अभिलेख में कुल चार पंक्तियाँ हैं, जिनमें तीन सुरक्षित अवस्था में हैं, जबकि चौथी अंशतः सुरक्षित है। इस लेख का सम्पादन एवं अध्ययन प्रो0 जी0 आर0 शर्मा ने 'रेह इन्सक्रिप्शन ऑव मिनेण्डर एण्ड दि इण्डोग्रीक इनवेजन ऑव दि गंगा वैली', नामक ग्रंथ में किया है। इस बात की सम्भावना की गई है कि आलेख्य उपकरण कोई स्मारक जय–स्तम्भ है, जिस पर किसी (सम्भवतः यूनानी) आक्रान्ता की विजयोपयोलब्धियों को प्रत्यांकित किया गया है।

भीतरगाँव

भीतरगाँव उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर जिले की घाटमपुर तहसील में स्थित है। तीन वैकल्पिक मार्गो के द्वारा कानपुर से इस मन्दिर तक पहुँचा जा सकता है। सत्तर के दशक में, इस मन्दिर तक पहुँचने के लिये केवल एक मार्ग उपलब्ध था, जो कि धरमपुर एवं बेहटा से होकर जाता था। इस पूरे रास्ते की दूरी 41

---

[51] दैनिक जागरण, 7 मई 2003.

[52] शर्मा जी0 आर0; रेह इन्सक्रिप्शन ऑव मिनेण्डर एण्ड दि इण्डोग्रीक इनवेजन ऑव दि गंगा वैली, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ– 3

किलोमीटर थी। जिसमें 29.1 किमी0 की दूरी कानपुर हमीरपुर की पक्की सड़क थी, 7.3 किमी0 की दूरी घाटमपुर नहर श्रृंखला के पास से होकर गुजरती थी, जो कि कच्ची एवं ऊबड़–खाबड़ थी तथा शेष 4.6 किमी0 का कच्चा रास्ता पुराक्षेत्र के समीप से होकर जाता था। वर्तमान समय में, भीतरगाँव एक तरफ से घाटमपुर से जुड़ा हुआ है एवम् दूसरी तरफ, एक दूसरी पक्की सड़क के द्वारा, सरसोल की ग्रेंड ट्रंक रोड पर जुड़ा हुआ है। इस प्रकार सरसोल होते हुए कानपुर से, इस स्थान की दूरी 32 किमी0 है, और दूसरे मार्ग से 48 किमी0 पड़ता है।[53]

1877 ई0 में अलेक्जेण्डर कनिंघम ने इस मन्दिर का पता लगाया था। उन्होंने 1875–76 तथा 1877–78 ई0 की अपनी सर्वेक्षण आख्या में भीतरगाँव अथवा बारी भीतरी तथा यहाँ स्थित ईंटों से निर्मित मन्दिर के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया।[54] उनके अनुसार मन्दिर उस समय 'देवल' के नाम से जाना जाता था, जिसका अर्थ 'तीर्थस्थान' अथवा मन्दिर ही होता है। दिसम्बर 1907 ई0 में जे0 एच0 फागिल के द्वारा मन्दिर का दूसरा सर्वेक्षण किया गया। तीसरा सर्वेक्षण ए0 एच0 लॉगर्हस्ट के द्वारा जनवरी 1909 ई0 में किया।

अधिसूचना संख्या 1928 एम0 367, दिनांक 8 सितम्बर 1908 ई0 में भीतरगाँव मन्दिर "प्राचीन स्मारक संरक्षण अधिनियम एक्ट VII, 1904" के अन्तर्गत संरक्षित स्मारक घोषित किया गया।[55] 1907 ई0 एवं 1909 ई0 में किये गये सर्वेक्षण के परिणामों को, 1912 ई0 में प्रकाशित, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया की एनुँअल रिपोर्ट 1908–09 ई0 के अन्तर्गत प्रकाशित किया गया।[56] लॉगर्हस्ट के विवरण के अगले पचास वर्षो के बाद तक इस मन्दिर का आगे कोई सर्वेक्षण नहीं किया गया। प्रकाशित साहित्य से ऐसा लगता है कि भीतरगाँव के बारे में लिखनें वाले लगभग सभी पुरातत्वविदों और कलाइतिहासकारों नें अपने संदर्भो

---

53 जहीर, मोहम्मद; दि टैम्पल ऑव भीतरगाँव, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 1

54 कनिंघम, अलेक्जेण्डर; आर्कियोलॉजिक सर्वे ऑव इण्डिया, वाल्यूम XI, पृष्ठ 40–46

55 जहीर, मोहम्मद; दि टैम्पल ऑव भीतरगाँव, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 5

56 आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908–09, कलकत्ता, 1912, पृष्ठ 5–16

को कनिंघम, फागिल और लॉगर्हस्ट के विवरणों पर आधारित किया।[57] 1968 ई0 में आर0सी0 सिंह का लेख "भीतरगाँव ब्रिक टैम्पल, बुलेटिन ऑव म्यूजियमस एण्ड आर्क्योलॉजी इन यू0पी0," दो भागों में प्रकाशित हुआ। पुनः 1969 ई0 में आर0 नाथ का लेख "भीतरगाँव: दि टेक्निक ऑव आर्किटेक्चर" प्रकाशित हुआ। 1974 ई0 में जे0सी0 हारेल की पुस्तक में मन्दिर के दक्षिणी मुख के तीन पैनल एवं हिस्सों का विवरण किया गया।[58] गुप्तकालीन ईंटों से निर्मित यह मन्दिर स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प दोनों ही दृष्टियों से असाधारण एवं अनोखा माना जाता है।[59]

---

57 जहीर, मोहम्मद; दि टैम्पल ऑव भीतरगाँव, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 5

58 हारेल, जे0 सी0; गुप्त स्कल्पचर, इण्डियन स्कल्पचर ऑव दि फोर्थ टु दि सिक्सथ सेन्चुरीज ए0 डी0, आक्सफोर्ड, 1974, प्लेट 132-135

59 भीतरगाँव मन्दिर के स्थापत्य के संदर्भ में विस्तृत वर्णन चतुर्थ अध्याय एवं मूर्तिशिल्प के संदर्भ में वर्णन पंचम अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

मा. चित्र-1

III UPPER GANGA PLAIN
SAHARANPUR
UPPER GANGA YAMUNA PLAIN
ROHILKHAND PLAIN
RAM GANGA RIVER
MEERUT
ALIGARH
MORADABAD
BAREILLY
GANGA RIVER
YAMUNA RIVER
ALIGARH
MATHURA
AGRA
MANPURI
YAMUNA PAR PLAIN
LAKHIMPUR
HARDOI
GOMTI RIVER
AWADH PLAIN
GHAGHARA RIVER
BAHARAICH
LUCKNOW
LOWER GANGA YAMUNA DOAB
KANPUR
ALLAHABAD
20 0 20 40 60
KM
77° 78° 79° 80° 81° 82°
25° 26° 27° 28° 29° 30° 31°

मानचित्र-2

LOCATION
LOWER GANGA YAMUNA DOAB
YAMUNA
GANGA
40°
72°
80°
88°
96°
40°
32°
32°
24°
24°
16°
16°
8°
8°
72°
80°
88°
96°
200 0 200 400
KM

मानचित्र-3

HISTORICAL SITES OF LOWER DOAB
76°
78°
80°
82°
84°
34°
32°
30°
28°
26°
24°
RIVER GANGA
RIVER YAMUNA
KANPUR
BHITARGAON
FATEHPUR
REH
SRINGVERPUR
KAUSAMBI
LAKSHAGIR
BHITA
PRATIS THANPUR
(JHUSI)
GARHWA
ALLAHABAD
100 0 100 200
K M

तृतीय अध्याय

गंगा-यमुना के निचले दोआब के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा

तृतीय अध्याय

गंगा-यमुना के निचले दोआब के राजनीतिक इतिहास की रूपरेखा

प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास का प्रामाणिक, सुसंगत तथा तिथिसम्मत ज्ञान छठी शताब्दी ई0पू0 से मिलता है। यद्यपि उत्तर वैदिक काल में विद्यमान कतिपय जनपदों का उल्लेख वैदिक तथा पौराणिक साहित्य में हुआ है, तथापि उनके राजनीतिक इतिहास को तैथिक अनुक्रम में प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है।[1] राजनैतिक दृष्टि से छठी शताब्दी ई0पू0 में प्राचीन भारत का अधिकांश भाग एक सुनिश्चित भौगोलिक सीमाओं वाले सोलह महाजनपदों में बँटा हुआ था।[2] बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तरनिकाय में इन षोडश महाजनपदों की तालिका इस प्रकार दी गई है:-(1) अंग (2) मगध (3) काशी (4) कोशल (5) वज्जि (6) मल्ल (7) चेदि (8) वत्स (9) कुरु (10) पांचाल (11) मत्स्य (12) शूरसेन (13) अस्सक (14) अवन्ति (15) गंधार (16) कम्बोज।[3] जैन ग्रंथ भगवतीसूत्र में भी थोड़े बहुत नामों के अन्तर के साथ इन सोलह महाजनपदों का उल्लेख मिलता है। **इनमें वत्स महाजनपद आधुनिक इलाहाबाद, कौशाम्बी तथा वाराणसी जिले के पश्चिमी तट तक फैला हुआ था।** इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। वस्तुतः गंगा-यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों यथाः-कौशाम्बी, शृंग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी का राजनीतिक इतिहास वत्स महाजनपद के राजनीतिक इतिहास के साथ जुड़ा हुआ है। वत्स के उत्तर-पश्चिम पांचाल महाजनपद स्थित था,[4] जिसमें आधुनिक फतेहगढ़, कानपुर, बरेली तथा बदायूँ और

---

1 पाण्डेय, आर0एन0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 50

2 राय चौधरी, एच0सी0, पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, षष्ठ सस्करण, कलकत्ता, 1953, पृष्ठ 107

3 घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 9-10.

4 पाण्डेय, आर0एन0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 63.

पीलीभीत के भाग सम्मिलित थे।[5] महाभारत से ज्ञात होता है कि पाँचाल जनपद गंगा नदी द्वारा उत्तरी और दक्षिणी दो भागों में विभक्त था। उत्तरी पाँचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी, जिसकी पहचान बरेली जिले के रामनगर से की जाती है। दक्षिणी पांचाल की राजधानी काम्पिल्य थी, जिसकी पहचान उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले से की जाती है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत स्थलों में भीतरगाँव सम्भवतः दक्षिणी पांचाल के अन्तर्गत आता था।[6] वत्स महाजनपद के पश्चिम में शूरसेन (आधुनिक मथुरा तथा उसके समीपस्थ का भू-भाग) जनपद था, तथा पूर्वी सीमा का स्पर्श काशी (वर्तमान वाराणसी तथा उसके आस-पास का क्षेत्र) जनपद करता था।[7] साहित्यिक साक्ष्यों द्वारा विदित होता है कि छठी शताब्दी ई0 पू0 में उदयन नामक राजा वत्स महाजनपद का शासक था। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक मगध, वत्स, कोशल तथा अवन्ति प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के रूप में उभरे, और अन्ततः मगध भारत के एक विशाल साम्राज्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास में 324 ईसवी पूर्व से 184 ईसवी पूर्व तक का काल मौर्यकाल के नाम से जाना जाता है। इस काल में भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश का समस्त भू-भाग एक राजनैतिक सत्ता के रूप में अस्तित्व में आया।[8] मौर्यकाल से ही राजनीतिक एकता का सूत्रपात होता है, जिसका प्रभाव इस क्षेत्र के कलात्मक विकास पर पड़ा।

द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से प्रथम शताब्दी ईसवी के मध्य का काल शुंग, शक और कुषाणों का काल माना जाता है। इस काल में यद्यपि मौर्य वंश की तरह की राजनीतिक एकरूपता स्थापित नही हो सकी, मौर्य साम्राज्य के विघटन के बाद उसके विभिन्न भागों में अनेक राजनीतिक शक्तियों का क्रमशः उदय हुआ। पश्चिम

---

5 अवस्थी, अवध बिहारी लाल, प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, लखनऊ, 1964, पृष्ठ 110

6 अवस्थी, अवध बिहारी लाल, प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप, लखनऊ, 1964, पृष्ठ 111

7 पाण्डेय, आर0एन0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 63.

8 मजूमदार, आर0सी0 (सं0), दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, चतुर्थ संस्करण, बम्बई, 1968, पृष्ठ 54-90

की ओर से पहले हिन्द-यवन और उसके पश्चात् शकों तथा कुषाणों का आगमन हुआ।[9] परन्तु स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प की दृष्टि से यह काल भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता है।

उत्तर भारत में कुषाण सत्ता 230 ई0 के लगभग समाप्त हो गई और अनेक स्थानीय राजवंशों का उदय हुआ। इसके पश्चात् 320 ई0 के आसपास गुप्तवंश सत्तारूढ़ हुआ। कुषाणों के पश्चात् तथा गुप्तों के उदय के पूर्व उत्तर-भारत में कतिपय स्थानीय राजवंशों की सत्ता के आभिलेखिक तथा मौद्रिक प्रमाण प्राप्त हुए हैं। कौशाम्बी के राजनीतिक इतिहास में मघ-काल उत्कृष्ट काल माना गया है। गुप्तवंश नें छठी शताब्दी ईसवी तक उत्तर भारत में शासन किया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के उत्खनित पुरास्थलों से ज्ञात आभिलेखिक एवं मौद्रिक साक्ष्यों के द्वारा विदित होता है कि बुद्धकाल से लेकर गुप्तकाल तक यह क्षेत्र राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। यहाँ का राजनैतिक इतिहास अनेक राजाओं और उनके क्रियाकलापों से भरा हुआ है। इसकी पुष्टि साहित्यिक साक्ष्यों के द्वारा भी होती है। गंगा-यमुना के निचले दोआब के चार प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों यथाः-कौशाम्बी, भीटा, श्रृंग्वेरपुर तथा झूँसी के राजनीतिक इतिहास की संक्षिप्त रूपरेखा निम्न प्रकार है।

1. कौशाम्बी

कौशाम्बी नगर का प्रथम उल्लेख वैदिक साहित्य में मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में प्रोति कौसुरुविन्दि को 'कौशाम्बेय' अर्थात् कौशाम्बी का निवासी कहा गया है।[10] गोपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि अत्यन्त प्राचीन काल में ही यह नगर विद्या का केन्द्र था।[11] महाभारत तथा रामायण आदि महाकाव्यों में इसकी उत्पत्ति की कथा

---

[9] मजूमदार, आर0सी0 (स0), वही, पृष्ठ 95-212.

[10] शतपथ ब्राह्मण, 12, 2, 2, 13

[11] गोपथ ब्राह्मण, 1, 4, 24.

वर्णित है। महाभारत[12] में कौशाम्बी की स्थापना का श्रेय उपरिचर वसु के पुत्र कुशाम्ब को दिया गया है। बाल्मीकिकृत रामायण के अनुसार कौशाम्बी की स्थापना कुश के कुशाम्ब नामक पुत्र नें की थीः-

कुशाम्बस्तु महातेजाः कौशाम्बीमकरोत् पुरीम्।[13]

पाणिनि ने "तेन निर्वृत्तम"[14] सूत्र का उल्लेख किया है जिसके अनुसार नगर या स्थान का नाम उसे बसानें वाले व्यक्ति के नाम के आधार पर रखना चाहिये। काशिका में इसका एक उदाहरण दिया गया है-'कौशाम्बेन निर्वृत्ता'-'कौशाम्बी नगरी' अर्थात् कौशाम्बी के संस्थापक कुशाम्ब थे।[15] बौद्ध ग्रंथों के अनुसार इसकी स्थापना के समय बहुत से कोसम्ब वृक्ष काटे गए थे, अतः इसका नाम कौशाम्बी पड़ा।[16] यमुना के तट पर स्थित होनें के कारण कौशाम्बी उत्तर-पूर्व भारत में आयात तथा निर्यात का महान केन्द्र बना।[17] यह श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग पर एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र था।[18]

छठी शताब्दी ई0पू0 में कौशाम्बी वत्स महाजनपद की राजधानी थी। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उस समय यहाँ का शासक उदयन था। कौशाम्बी में राज्य करने वाले उदयन के पूर्ववर्ती तथा परवर्ती राजाओं की लम्बी सूची पुराणों में मिलती है। पौराणिक साक्ष्यों के अनुसार गंगा में बाढ़ आ जानें के कारण अर्जुन के पौत्र परीक्षित के पाँचवें वंशज भरतवंशी राजा निचक्षु नें हस्तिनापुर के स्थान पर कौशाम्बी को राजधानी बनाया।[19] निचक्षु की सत्रहवीं पीढ़ी में उदयन हुए। पुराण तथा भासकृत स्वप्नवासवदत्ता में उदयन को भरतवंशी शासक

---

12 महाभारत, (अनु0) पं0 राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', सं0 2025, गीता प्रेस, गोरखपुर, आदिपर्व, अध्याय 63

13 रामायण, बाल्मीकिकृत, सवत् 2033, गीताप्रेस, गोरखपुर, बालकाण्ड, बत्तीसवां सर्ग, श्लोक-6

14 अष्टाध्यायी, 4, 2, 68.

15 घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, प्रस्तावना, पृष्ठ 17

16 पाण्डेय, आर0एन0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 63.

17 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 102.

18 जैन, बलभद्र, भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग), बम्बई, 1974, पृष्ठ 146

19 घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 4.

कहा गया है।[20] उदयन के काल में कौशाम्बी की ख्याति अत्यधिक बढ़ गयी और वह राजनैतिक, धार्मिक तथा आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से महत्वपूर्ण केन्द्र के रुप में प्रतिष्ठित हुई। बौद्ध धर्म-प्रचार हेतु बुद्ध नें छठाँ और नवाँ विश्राम कौशाम्बी में लिया था।[21]

उदयन ने वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा कौशाम्बी की राजनैतिक स्वतन्त्रता को न केवल अक्षुण्ण रखनें का प्रयास किया, अपितु उसका राजनैतिक महत्व भी स्थापित किया। उसकी रानियों में अवन्ति नरेश प्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता, मगध नरेश अजातशत्रु की पुत्री तथा दर्शक की भगिनी पद्मावती तथा अंग नरेश दृढ़वर्मा की पुत्री उल्लेखनीय है।[22]

उदयन की मृत्यु के उपरान्त से लेकर नन्दों के काल तक कौशाम्बी के राजनीतिक इतिहास के विषय में अत्यल्प ज्ञात है। मज्झिम-निकाय के अनुसार उदयन के उत्तराधिकारी बोधि ने कौशाम्बी में एक अत्यन्त भव्य राजप्रासाद का निर्माण किया तथा गौतमबुद्ध को आमंत्रितकर उनके चरणरज से राजप्रासाद को पवित्र किया।[23] पुराणों तथा पालि ग्रंथों में बोधि के उत्तराधिकारियों के नाम दिये गए हैं, किन्तु उनकी अन्य उपलब्धियों के विषय में कोई सूचना नहीं प्राप्त होती है। नन्दों के काल में कौशाम्बी उनके साम्राज्य में सम्मिलित थी।[24]

कौशाम्बी में स्थित अशोक स्तम्भ[25] के आधार पर यह माना जा सकता है कि कौशाम्बी विशाल मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित थी।

मौर्यो के अद्यःपतन के उपरान्त कौशाम्बी मित्र नामधारी राजाओं की प्रादेशिक

---

20 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 101

21 श्रीवास्तव, शालिग्राम, प्रयाग-प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 262

22 पाण्डेय, आर0एन0, प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 95-96.

23 मज्झिम निकाय, 2, 97, राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 103

24 राय, उदय नारायण; प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 103.

25 चित्रफलक क्रमसख्या 3(A)

राजनीतिक केन्द्र बनी।[26] आभिलेखिक एवं मौद्रिक साक्ष्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व एवं प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की अन्तर्वर्ती अवधि में, कौशाम्बी में मित्र राजवंश की सत्ता विद्यमान थी। प्रधानतया मित्र वंश के संज्ञापक, इस वंश से सम्बन्धित मुद्रायें हैं। **मुद्रा-परक साक्ष्यों के द्वारा निम्नलिखित मित्र शासकों के नाम ज्ञात होते हैं:-बृहस्पतिमित्र, अग्निमित्र, ज्येष्ठमित्र, वरुणमित्र, पोठमित्र, राजमित्र, रजनीमित्र, प्रजापतिमित्र और देवमित्र।**[27] विद्वानों का ऐसा मानना है कि मित्रवंश में बृहस्पति नामधारी दो शासकों का आविर्भाव हुआ था। बृहस्पति मित्र प्रथम का समीकरण तन्नामधारी उस शासक से करनें का प्रयास किया गया है, जो कि मोरा के इष्टका-अभिलेख में सन्दर्भित हुआ है, जिसकी कन्या का विवाह मथुरा के किसी शासक के साथ हुआ था।[28] सम्भवतः बृहस्पतिमित्र द्वितीय का समीकरण उसके मातुल (मामा) आषाढ़सेन के पभोसा (कौशाम्बी) के गुहा-लेख में सन्दर्भित बृहस्पतिमित्र के साथ किया जा सकता है।[29]

लगभग प्रथम शताब्दी ईसवी में कौशाम्बी कुषाण नरेश कनिष्क के साम्राज्य में सम्मिलित थी। कौशाम्बी से कनिष्क के राज्यकाल के दूसरे वर्ष की तिथि से युक्त बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई है।[30] कौशाम्बी से कनिष्क के राज्यकाल में स्थापित दो अन्य बुद्ध मूर्तियों की अभिलेखांकित पादपीठिकायें भी प्राप्त हुई हैं।[31] इसी प्रकार कौशाम्बी के कुषाण-सत्ता में अन्तर्भूत होने का सबसे महत्वपूर्ण साक्ष्य वह राजमुद्रा है जिस पर निम्नोक्त ब्राह्मी का अभिलेख प्राप्त होता है:-

---

26 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 104

27 गुप्त, परमेश्वरी लाल, भारत के पूर्व कालिक सिक्के, वाराणसी, 1996, पृष्ठ 187

28 जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड, 1912, पृष्ठ 120, घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 45

29 सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 95-97

30 चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन न0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 61, क्रमसख्या 85, प्लेट XXXVII, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 69, चित्रफलक क्रमसख्या 8(A), घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 64

31 जी0आर0 शर्मा मेमोरियल सग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या एस0 405 तथा आई 57 शर्मा, जी0आर0; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ-35.

प्रथम पंक्ति :– महाराजस्य राजाति

द्वितीय पंक्ति :– राजस्य देव–पुत्रस्य

तृतीय पंक्ति :– कनिष्कस्य प्रयो

चतुर्थ पंक्ति :– गे।

इस अभिलेख से यह व्यक्त होता है कि कौशाम्बी में कनिष्क की राजमुद्रा को व्यवहार में लाया जाता था।[32] कौशाम्बी के समीप गढ़वा नामक स्थान से कुषाण नरेश वासिष्क (Vasıska) को सन्दर्भित करने वाला एक खण्डित अभिलेख प्राप्त हुआ है।[33] इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि कौशाम्बी पर कुषाणों की सत्ता स्थापित थी।

कुषाणों के पश्चात् तथा गुप्तों के उदय के पूर्व, उत्तर–भारत में प्रमुख राजनीतिक शक्तियों के रूप में नागवंश एवं वाकाटक वंश का उत्कर्ष हुआ, किन्तु कौशाम्बी पर इनके आधिपत्य के मौद्रिक एवं आभिलेखिक साक्ष्य अप्राप्य है। कौशाम्बी के उत्खनन क्रम से प्रतीत होता है कि कुषाणों के पश्चात् इस समृद्ध नगरी में किसी नेव अथवा नव नामक शासक की सत्ता स्थापित थी।[34] किस विशेष राजवंश से इसका सम्बन्ध था, अथवा अन्य अनेक पुरातात्विक अथवा साहित्यिक साक्ष्यों से विदित कौशाम्बी के किस विशेष राजवंश में इस नरेश का आविर्भाव हुआ था, इस आशय की संज्ञापक कोई निश्चित सूचना नहीं मिलती है, किन्तु स्तरीकरण क्रम के अनुसार यह सुनिश्चित हो जाता है कि इस नरेश का आविर्भाव 150 ईसवी के आस–पास हुआ था। अभी तक हुए शोधों से इस नरेश की केवल दो मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं।[35]

---

32 शर्मा, जी0आर0, एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, 1949–50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 79

33 शर्मा, जी0आर0, वही, पृष्ठ 10.

34 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 105

35 शर्मा, जी0आर0; एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, 1949–50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 84

तदुपरान्त कौशाम्बी के राजनीतिक इतिहास में मघ शासकों ने प्रमुख भूमिका निभाई। इस वंश के भद्रमघ, वैश्रवण, भीमवर्मन, शिवमघ, शतमघ तथा विजयमघ आदि शासकों ने दीर्घ-काल तक कौशाम्बी में राज्य किया। कौशाम्बी के राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास में मघ-काल उत्कृष्ट काल माना गया है।[36] आभिलेखिक साक्ष्यों से विदित होनें वाले कौशाम्बी के मघ नरेशों में **भद्रमघ** सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतीत होता है। संख्या विषयक प्रचुरता की दृष्टि से इस नरेश के अभिलेख सबसे अधिक महत्वपूर्ण माने जा सकते हैं। भद्रमघ को सन्दर्भित करने वाले सभी अभिलेख कौशाम्बी से प्राप्त हुए हैं। इसमें तीन अभिलेख बौद्ध प्रतिमाओं की पीठिका पर उत्कीर्ण मिलते हैं। सम्प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इनका प्रकाशन प्रो0 जे0एस0 नेगी नें अपने ग्रंथ "सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज" में किया है।[37] इन तीनों में दो अभिलेख अंशतः भग्न अवस्था में मिले हैं, किन्तु तीसरा अभिलेख सर्वांशतः सुरक्षित है। इसका देवनागरी रूपान्तरण निम्न प्रकार हैः-

प्रथम पंक्तिः-Symbol म (हारा) जस्य श्री भद्रमघस्य त्सवत्सरे ८३ व १ दि १ एतये पुवये जु।

द्वितीय पंक्तिः-वासकस्य उपषकस्य खणुकपुत्रस्य उझकस्य देयधर्म इमेण दीयए महासंघे।

तृतीय पंक्तिः-मातपित...... ...सवसत्वनहितसुखए मम च पितिकाविहिकन परिग्रहा।[38]

उक्त लेख का हिन्दी अनुवाद इस प्रकार हैः-जबकि महाराज श्री भद्रमघ के संवत्सर ८३ का वर्ष एक तथा दिवस एक (प्रतिपदा) चल रहा था, उस समय यह

---

36 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद 1998, पृष्ठ 105.
37 नेगी, जे0एस0, सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, वाल्यूम I, इलाहाबाद, 1966, पृष्ठ 63-69
38 नेगी, जे0एस0, सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, वाल्यूम I, इलाहाबाद, 1966, पृष्ठ 64

देयधर्म जुवाशक तथा खुणुक के पुत्र उझक द्वारा महासंघ में समर्पित किया गया। इसका उद्देश्य माता-पिता तथा सभी जीवों के लिए सुख की प्राप्ति है। इसे सुह्रदय विहारवासियों की सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया जाये।

इस अभिलेख द्वारा निम्नोक्त ऐतिहासिक तत्वों पर प्रकाश पडता है:-

(I) अभिलेख में चर्चित जुवाशक, खुणुक एवं उझक शकों के नाम प्रतीत होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि इस अभिलेख के अंकन काल (83+78=161 ईसवी) में शकों का संक्रमण गंगा घाटी में हो चुका था।

(II) इसमें प्रयुक्त महासंघे शब्द महत्वपूर्ण है। इससे यह सुव्यक्त हो जाता है कि उक्त अभिलेख के अंकनकाल में घोषिताराम विहार की देख-रेख का दायित्व बौद्धों के महासांघिक (महायान) सम्प्रदाय पर था, जिसमें उपासना एवं आराधना के निमित्त भगवान बुद्ध की प्रतिमा को प्रधानता दी जाती थी।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मघ राजवंश में भद्रमघ एक प्रतिष्ठित शासक था। उसका आविर्भाव लगभग द्वितीय शताब्दी ईसवी में हुआ था। उसनें बौद्ध धर्म को संरक्षण प्रदान किया था, जिसकी क्रिया-कलाप का केन्द्र-बिन्दु घोषिताराम का महाविहार था। कौशाम्बी के मघ शासकों में **भीमवर्मन** का नाम विशेषतया उल्लेखनीय है। अभी तक इस नरेश को सन्दर्भित करने वाले तीन अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन तीनों में क्रमशः संवत् (वर्ष) 122, 130 तथा 139[39] का संदर्भण हुआ है।

कौशाम्बी के राजनीतिक इतिहास में मघों के उपरान्त किसी "श्री" राजवंश का आविर्भाव हुआ था, जिसका अन्तिम शासक सम्भवतः पुश्वश्री था, जिसका समय लगभग चतुर्थ शताब्दी ईसवी माना जा सकता है।[40] यद्यपि इसके सिक्के कुछ अंशों में मघों की मुद्रा-परम्परा से प्रभावित प्रतीत होते हैं, तथापि इसके कुल एवं पितृत्व के विषय में कुछ निश्चयात्मक रूप से ज्ञात नहीं है।

---

39 फलीट, जॉनफेथफुल; कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, इन्सक्रप्शनस ऑव दि अर्ली गुप्त किंग्स, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 266, न0 65, प्लेट XXXIXC

40 शर्मा, जी0आर0, एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, 1949-50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली 1969, पृष्ठ 84-85

लगभग चौथी शताब्दी ईसवी के पूर्वार्द्ध में समुद्रगुप्त की विजयों के फलस्वरूप कौशाम्बी गुप्त–साम्राज्य में सम्मिलित हो गयी। विद्वत्गण समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति (जो इलाहाबाद किले में संस्थापित अशोक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है)[41] में उल्लिखित रुद्रदेव नामक आर्यावर्त के शासक का समीकरण कौशाम्बी नरेश से करते हैं। कौशाम्बी से 'रुद्र' नामांकित मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं। लिपि साक्ष्य के आधार पर वह चतुर्थ शताब्दी ईसवी का शासक प्रतीत होता है। अतः प्रयाग–प्रशस्ति के रुद्रदेव का इस कौशाम्बी नरेश के साथ समीकरण समीचीन प्रतीत होता है।[42] समुद्रगुप्त के पश्चात् लगभग पाँचवीं शती ईसवी तक कौशाम्बी में गुप्तसत्ता विद्यमान रही। चीनी यात्री फाह्यान (399–414 ई0) नें अपने यात्रा–विवरण में कौशाम्बी नगर का उल्लेख किया है, किन्तु वह यहाँ के शासक का नामोल्लेख नही करता है, जिसका सामान्यतः इतिहासज्ञ यह अर्थ निकालते हैं कि कौशाम्बी पर गुप्तों का आधिपत्य रहा होगा।[43] पाँचवीं शती ईसवी के अन्तिम चरण तथा छठी शताब्दी ईसवी के प्रथम दशक में कौशाम्बी पर हूणों के आक्रमण के प्रमाण मिलते हैं। तोरमाण नामक हूणराज की दो अभिलेखांकित मुहरें यहाँ से प्राप्त हुई हैं।[44] सातवीं शताब्दी ई0 के चीनी यात्री ह्वेंगसांग (629–643 ई0) के आगमन के समय कौशाम्बी हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित थी। हर्ष के प्रियदर्शिका तथा रत्नावली आदि ग्रंथों में इस नगर का नामोल्लेख हुआ है। कालान्तर के ग्रंथ कथासरित्सागर में कौशाम्बी के पूर्व रूप का वर्णन इस प्रकार मिलता हैः–

अस्ति वत्स इति ख्यातो देशः।

कौशाम्बी नाम तत्रास्ति मध्यभागे महापुरी।।[45]

---

41 चित्रफलक क्रम सख्या 3(B).

42 राय, उदय नारायण, गुप्त राजवश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ 123

43 घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 72

44 शर्मा, जी0आर0, दि एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1960, पृष्ठ 15–16

45 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 106.

लगभग ग्यारहवीं शताब्दी ई0 में कौशाम्बी कान्यकुब्ज साम्राज्य के अन्तर्गत एक शासन–क्षेत्र के रूप में विद्यमान थी। कान्यकुब्ज शासक त्रिलोचनपाल के एक लेख में कौशाम्बी मण्डल का उल्लेख मिलता है।[46]

2. भीटा

इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत स्थित भीटा नामक ऐतिहासिक पुरास्थल लगभग चौथी–तीसरी शती ईसा पूर्व से लेकर नवीं–दसवीं शताब्दी ईसवी तक राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। इसकी पुष्टि यहाँ से प्राप्त मुहरों एवं मुद्राओं तथा उन पर उत्कीर्ण लेखों के द्वारा होती है। 1911–12 ई0 में सर जॉन मार्शल द्वारा किये गए उत्खनन के फलस्वरूप यहाँ से प्राप्त मिट्टी की मुहर पर चौथी–तीसरी शती ईसा पूर्व के अक्षरों में "सहजाति निगमस" लेख अंकित है।[47] इससे यह ज्ञात होता है कि सम्भवतः इस स्थान का नाम सहजाति था और यहाँ पर इस नाम का एक निगम था। भीटा से प्राप्त मुहरों में मुहर संख्या ग्यारह (11) एवं मुहर संख्या एक सौ नौ (109) पर चौथी–पाँचवी शती ई0 के उत्तरी गुप्तकालीन अक्षरों में उत्कीर्ण 'विच्छी' एवं 'विच्छीग्राम' लेख के आधार पर सर जॉन मार्शल नें इस स्थान का प्राचीन नाम "विच्छीग्राम" (Vıchhigrama) बताया है।[48]

यद्यपि भीटा के राजनीतिक इतिहास के विषय में साहित्यिक ग्रंथों के द्वारा क्रमबद्ध विवरण नहीं प्राप्त होता है, तथापि यहाँ से उपलब्ध राजकीय मुहरों में उत्कीर्ण लेखों के द्वारा 'गौतमीपुत्र–वृषध्वज'[49] 'शिवमघ'[50] तथा 'वासिष्ठीपुत्र–श्री भीमसेन'[51] इत्यादि राजाओं के नाम ज्ञात होते हैं। इन पर उत्कीर्ण लेख ब्राहमी और

---

[46] घोष, एन0एन0, अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 99, राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत मे नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 107

[47] मार्शल, सर जॉन, एक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुँअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 31

[48] मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ 49 एव पृष्ठ 59.

[49] मार्शल, सर जॉन; वही, मुहर सख्या 25, पृष्ठ 50–51.

[50] मार्शल, सर जॉन, वही, मुहर संख्या 26, पृष्ठ 51

[51] मार्शल, सर जॉन, वही, मुहर सख्या 27, पृष्ठ 51

कुछ गुप्तकाल की लिपि में है। भाषा गुप्तकाल के पहले की प्राकृत-संस्कृत मिश्रित है।[52] इनका पाठ निम्नलिखित हैः-

मुहर संख्या पच्चीस का लेख–'श्री विंध्यावर्धन–महाराजस्य महेश्वर-महासेनातिशृष्ट–राजस्य वृषध्वजस्य गौतमीपुत्रस्य'।

मुहर संख्या छब्बीस का लेख–'महाराजा–गौतमीपुत्रस्य श्री शिव म(इ) घस्य'।

मुहर संख्या सत्ताइस का लेख–'(रा) जन वास सु (वाशिष्ठी) पुत्रस्य श्री-भीमसेन (स्य)'।

कौशाम्बी के राजनीतिक इतिहास में गुप्तों के उद्भव के पूर्व मघ–राजवंश में शिवमघ नामक शासक का उल्लेख मिलता है, परन्तु भीटा से उपलब्ध मुहर में सन्दर्भित शिवमघ मातृबोधक शब्द गौतमीपुत्र से विशेषित किया गया है। भीमसेन की एक अन्य मुहर राजघाट से मिली है, परन्तु ये मुहरें स्पष्ट रूप से किसी प्रकार के राजनीतिक मेल को सूचित नही करती हैं। सम्भवतः, वे अपनें मूल स्थान से किसी सूचना अथवा सम्पर्क के लिए भेजी गई रही होगी।[53] भीटा की मुहरों में एक मुहर किसी महारानी की है, जिसमें उसका नाम महादेवी रुद्रमती अंकित है तथा उत्कीर्ण लेख है :- 'महादेव्या श्री रुद्रमत्याः'।[54] परन्तु इस रानी के विषय में अन्य स्त्रोतों से कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। भीटा की मुहरों में कतिपय मुहरें अमात्य तथा अन्य राजकर्मचारियों की हैं।

उपरोक्त मुहरों के अतिरिक्त भीटा से प्राप्त 120 मुद्राओं में[55] अयोध्या के मित्रवंश, कुषाणवंश, आंध्र, कलिंग तथा कौशाम्बी नरेशों की नामांकित मुद्रायें प्राप्त हुई हैं। यहाँ से प्राप्त अयोध्या जनपद की मुद्रा में एक ओर प्रारम्भिक ब्राह्मी अक्षरों

---

52 श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग–प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 291

53 नेगी, जे0एस0, सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज, वाल्यूम I, इलाहाबाद, 1966, पृष्ठ 91

54 मार्शल, सर जॉन, एक्सकेवेशन ऐंट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, ऐंनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 52, मुहर संख्या 30

55 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ 62–71

में आयुमित्र[56] तथा कौशाम्बी की मुद्राओं में बहसतिमित्र (बृहस्पति) लेख उत्कीर्ण है।[57] यहाँ से कुषाण वंश के कैडफिसिस द्वितीय, कनिष्क, हुविष्क तथा वासुदेव की मुद्रायें उपलब्ध हुई है।[58] भीटा से प्राप्त मुद्राओं में कतिपय मुद्रायें अफगान शासकों की है, इनमें सिकन्दर शाह लोदी तथा इब्राहीम शाह द्वितीय लोदी की मुद्रायें प्रमुख है।[59] इसी प्रकार भीटा के पूर्व स्थित मानकुँवार नामक गाँव से प्राप्त बुद्ध प्रतिमा की चौकी पर गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम का एक लेख प्राप्त होता है, जिस पर गुप्त संवत् 129 अर्थात् 448 ई0 की तिथि अंकित है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है।[60]

इस प्रकार उपरोक्त साक्ष्यों के आलोक में इस पुरास्थल के राजनीतिक इतिहासक्रम के विषय में निश्चयतापूर्वक तो कुछ नही कहा जा सकता है, तथापि यह स्पष्ट है कि कौशाम्बी की भांति यह स्थान भी तत्कालीन राजवंशों के राजाओं के कार्यकलापों का केन्द्र रहा, जिसमें मौर्य, शुंग, कुषाण तथा गुप्तवंश उल्लेखनीय हैं।

3. शृंग्वेरपुर

शृंग्वेरपुर नामक पुरास्थल का वर्णन ऋग्वेद, रामायण, महाभारत, अध्यात्म-रामायण, रघुवंश, उत्तरराम-चरित, भगवत्-भास्कर, निर्णयसिंधु, कवितावली, गीतावली तथा विनयपत्रिका आदि ग्रंथों में हुआ है।[61] गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों में कौशाम्बी तथा भीटा में जहाँ बौद्ध एवं जैन धर्म का प्रभाव देखा जा सकता है, वही शृंग्वेरपुर में वैदिक संस्कृति का बोलबाला रहा। इसका

---

56 मार्शल, सर जॉन; एक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुँअल रिपोर्ट, 1911-12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 62, मुद्रा संख्या-2

57 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ- 65-66

58 मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ- 62-65

59 मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ- 71

60 फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ- 45-47, कुमारस्वामी, आनन्द के0; हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965, पृष्ठ- 74, एवम् 84-85, चित्रफलक क्रम संख्या 8 (B)

61 दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 27 जून 2002

सम्बन्ध वैदिक धर्म के प्रमुख देवता विष्णु के अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम से निर्विवाद है। शृंग्वेरपुर में रामागमन की घटना भारत के ऐतिहासिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक इतिहास में युगान्तरकारी है। इसनें शृंग्वेरपुर को एक तीर्थ तो बना ही दिया, साथ ही इस स्थल को एक अखिल भारतीय महत्व भी प्रदान किया है।[62] महाभारत में शृंग्वेरपुर के माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार हुआ है :-

ततो गच्छेत राजेन्द्र शृंङ्वेरपुरं महत्।
यत्र तीर्णो महाराज रामो दाशरथिः पुरा।।
तस्मिस्तीर्थे महाबाहो स्नात्वा पापैः प्रमुच्यते।
गङ्गायां तु नरः स्नात्वा ब्रह्मचारी समाहितः।
विधूपपाप्मा भवति वाजपेयं च विन्दति।[63]

अर्थात् शृंग्वेरपुर महान है। वहाँ से राम नें गंगापार किया है। अतः वह शब्दतः और अर्थतः दोनों प्रकार से तीर्थ है। ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए जो व्यक्ति शृंग्वेरपुर में गंगा स्नान करता है, उसे बाजपेय यज्ञ करनें का फल मिलता है। वह सब पापों से मुक्त हो जाता है और स्वर्ग प्राप्त करता है।

शृंग्वेरपुर में रामागमन के समय यहाँ का अधिपति गुह नामक राजा था। **बाल्मीकिकृत रामायण के अनुसार** : शृंग्वेरपुर में गुह नाम का राजा राज्य करता था। वह श्री रामचन्द्र जी का प्राणों के समान प्रिय मित्र था। उसका जन्म निषादकुल में हुआ था। वह शारीरिक शक्ति और सैनिक शक्ति की दृष्टि से भी बलवान था तथा वहाँ के निषादों का सुविख्यात राजा था:-

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसमः सखा।
निषादजात्यो बलवान् स्थपति श्चेति विश्रुतः।।[64]

---

62 पाण्डेय, संगमलाल; शृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-114

63 महाभारत, वनपर्व, अध्याय 85, श्लोक 65-66½, पाण्डेय, संगमलाल; शृंग्वेरपुर गौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-98

64 रामायण, बाल्मीकिकृत, संवत् 2033, गीताप्रेस, गोरखपुर, अयोध्याकाण्ड, पचासवां सर्ग, श्लोक 33

पुरातात्विक आधार पर कहा जा सकता है कि निषादराज का राजप्रासाद श्रृंग्वेरपुर से पूर्व कोई आधा कि0मी0 पर रामचौरा में था। अब उसके कोई चिन्ह अवशेष नहीं हैं। कुछ वर्षो पूर्व मौनी फलाहारी बाबा (मूल नाम रघुनाथ दास जी) नें इसी स्थान पर एक मन्दिर बनवाया और वहाँ रामचरण पादुका स्थापित की। यह पवित्र स्मारक श्रीराम के यहाँ आगमन की पुण्यस्मृति में है।[65]

ऐतिहासिक स्रोतों से यह विदित होता है कि गुप्तों के पूर्व, उत्तरी भारत में नाग राजाओं के राज्य विद्यमान थे। ये नाग सर्प नहीं थे, किन्तु वे सर्प जैसा शिरस्त्राण रखते थे। इसीलिए उन्हें नाग कहा जाता था। सम्भवतः नाग उनका गोत्र भी रहा हो।[66] समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में आर्यावर्त्त राजाओं की सूची में नागदत्त, गणपतिनाग, नागसेन, अच्युत तथा सम्भवतः नन्दि आदि नाग राजाओं के नाम मिलते है, जिनको समुद्रगुप्त नें परास्त किया था और उन्हें अपने अधीन सामन्त बनाया था।[67] रैप्सन ने समुद्रगुप्त द्वारा पराजित आर्यावर्त के नव नरेशों की पहचान विष्णु पुराण तथा वायु पुराण में वर्णित नव-नागों से की है। इन ग्रंथों के अनुसार उन्होंने पद्मावती, कान्तिपुरी एवं मथुरा में शासन किया था।[68] अतः ऐसी सम्भावना की जा सकती है कि श्रृंग्वेरपुर के आस-पास कभी नाग राजाओं का राज्य था।[69] महाभारत के आदिपर्व में राजा जनमेजय के नागयज्ञ में जलकर मरने वाले नागों में श्रृंग्वेर नामक नाग का उल्लेख हुआ है, जो नागों के कौरव्य कुल का था :-

बाहुकः श्रृङ्गवेरश्च धूर्तकः प्रातरातकौ।।
कौरव्यकुलजास्त्वेते प्रविष्टा ह व्यवाहनम्।[70]

---

65 दैनिक जागरण, 20 फरवरी, 2003
66 पाण्डेय, संगमलाल; श्रृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-99
67 राय, उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ-122-129
68 राय, उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ-129
69 पाण्डेय, संगमलाल; श्रृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-99
70 महाभारत, (अनु0) पं0 राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम'; सं0 2025, गीताप्रेस, गोरखपुर, आदिपर्व, अध्याय 57, श्लोक 13½

अर्थात् बाहुक, शृंङ्गवेर, धूर्तक, प्रातर और आतक आदि कौरव्य कुल के नाग यज्ञाग्नि में जल मरे थे। किन्तु मात्र नाम-साम्य के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता है कि उसका सम्बन्ध शृंग्वेरपुर से किसी प्रकार का था अथवा नहीं था।[71] प्रयाग के कम्बलनाग और अश्वतरनाग स्थलों का उल्लेख पुराणों में हुआ है, जिन्हें यमुना तट पर स्थित वर्णित किया गया है।[72] यद्यपि कम्बल और अश्वतर नागों का वास्तविक स्थल सम्प्रति किसी परम्परा या पुरातात्विक प्रमाण के अभाव में निर्धारित नहीं किया जा सकता है,[73] तथापि मत्स्यपुराण में प्रयाग की सीमाओं का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि प्रयाग-मण्डल प्रतिष्ठान से लेकर वासुकि-हृद तक होता हुआ कम्बलनाग, अश्वतरनाग तथा बहुमूलकनाग तक प्रसरित है :-

आ प्रयागं प्रतिष्ठानाद्यत्पुरा वासुकेर्हृदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागश्च बहुमूलकः।।[74]

कम्बलनाग और अश्वतरनाग की भांति बहुमूलकनाग नामक स्थान की स्थिति भी स्पष्ट नहीं है। बहुमूलक का तात्पर्य सम्भवतः कई फणों वाले नाग से है और इस रूप में नाग के कई फण छत्र का आकार ग्रहण कर लेते हैं। अतः छत्रनाग या छतनगा को बहुमूलक के स्थान रूप में स्वीकार किया जा सकता है, जो कि झूँसी अर्थात् प्राचीन प्रतिष्ठानपुर के पूरब में स्थित है।[75] इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि लगभग चतुर्थ शताब्दी ईसवी तक अर्थात् गुप्त वंश के अभ्युदय के पूर्व तक, इन क्षेत्रों में नाग राजाओं का प्रभुत्व स्थापित रहा होगा।[76]

---

71 पाण्डेय, संगमलाल, शृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-99

72 राय, उदय नारायण; प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ 109-110

73 शुक्ल, विमल चन्द्र; भारतीय कला के विविध आयाम, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 47

74 मत्स्यपुराण, पूर्वभागः, (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989, अध्याय 45, श्लोक 10, राय, उदयनारायण; प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, 1998, पृष्ठ-109

75 शुक्ल, विमल चन्द्र; भारतीय कला के विविध आयाम, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 47

76 पाण्डेय, संगमलाल; शृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ-127

सन् 1977 ई0 से लेकर 1987 ई0 तक प्रो0 बी0 बी0 लाल एवं के0 एन0 दीक्षित के निर्देशन में श्रृंग्वेरपुर का उत्खनन किया गया।[77] जिसके फलस्वरूप शुंग, कुषाण, गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामग्रियां उपलब्ध हुई है। इनमें ईटों से निर्मित जलाशय[78], मृण्मयी मूर्तियाँ,[79] मुहरें तथा मुद्रायें प्रमुख है। श्रृंग्वेरपुर से प्राप्त मुद्राओं में धनदेव की एक मुद्रा[80] विम कैडफिसिस की मुद्रा[81] तथा एक परवर्ती कुषाणकालीन स्वर्ण मुद्रा[82] उल्लेखनीय है।

मुगल शासक अकबर के काल में श्रृंग्वेरपुर एक व्यापारिक केन्द्र और परगने के रूप में स्थित था। यहाॅ के जमींदार मुसलमान और कायस्थ थे। आइने अकबरी में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें एक प्रसंग है, जिसके अनुसार उस समय इसका क्षेत्रफल 38, 536 बीघे का था। सरकारी माल गुजारी 18, 85066 दीनार प्राप्त होती थी।[83]

अठारहवीं शताब्दी में अवध के नवाब के वजीर अब्दुल मंसूर खान, जिसे सफदर जंग के नाम से भी जाना जाता है, यहाँ से परगना को स्थानान्तरित किया तथा नवाबगंज को नए परगने के रूप में बसाया। वर्तमान समय में कौड़िहार विकास खण्ड क्षेत्र में इलाहाबाद ऊँचाहार वाया लखनऊ राजमार्ग पर नवाबगंज एक छोटे से कस्बे के रूप में स्थित है।[84]

---

[77] लाल, बी0 बी0; एक्सकेवेशन एटॅ श्रृंग्वेरपुर, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम I, दिल्ली, 1993

[78] विस्तृत वर्णन चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

[79] विस्तृत वर्णन पंचम अध्याय के अन्तर्गत मृण्मूर्तियाँ उपशीर्षक में किया गया है।

[80] लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन ऍट श्रृंग्वेरपुर, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम I, दिल्ली, 1993, पृष्ठ 60, प्लेट LXXXIB, नं0 3.

[81] लाल, बी0बी0; वही, पृष्ठ 60 प्लेट LXXXIB नं0 4

[82] लाल, बी0बी0; वही, पृष्ठ 60 प्लेट LXXXIC

[83] दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 6 जुलाई 2000

[84] दैनिक जागरण, इलाहाबाद, 6 जुलाई 2000

4. झूँसी

पौराणिक साहित्य में झूँसी का प्राचीन नाम प्रतिष्ठानपुर मिलता है। मत्स्य-पुराण के अनुसार प्रतिष्ठान प्रयाग-मण्डल की पूर्वी सीमा का निर्माण करता है। यह प्रयाग का एक महत्वपूर्ण उपतीर्थ है :-

पूर्व पार्श्वे तु गंगायास्त्रिषु लोकेषु भारत।
कूंप चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्।[85]

प्राचीन प्रतिष्ठानपुर के माहात्म्य का वर्णन करते हुए मत्स्यपुराण में कहा गया है कि प्रयाग तीर्थ का मण्डल पाँच योजन में विस्तृत है, वहाँ पाप कर्म के निवारण तथा धर्म की रक्षा के लिये ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर निवास करते हैं। प्रतिष्ठान की उत्तर दिशा में कपट रूप धारण कर ब्रह्मा निवास करते हैं :-

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति।[86]

इस प्रकार प्रयाग के पूर्व स्थित प्राचीन प्रतिष्ठानपुर ही वर्तमान झूँसी है। इसी प्रकार प्रयाग प्रजापतिक्षेत्र के नाम से भी पुकारा जाता है, जोकि पूर्व में प्रतिष्ठान से लेकर, पश्चिम में कम्बलाश्वतर नाग, उत्तर में वासुकि-ह्रद एवं दक्षिण में बहुमूलक नाग तक प्रसरित है। त्रिथलीसेतु एवं तीर्थप्रकाश नामक ग्रंथों के अनुसार "उपर्युक्त चारो प्रधान बिन्दु एक वृत्त का निर्माण करते हैं, जिसके भीतर प्रयाग क्षेत्र स्थित है।[87] यह निश्चयता के साथ नहीं कहा जा सकता है कि किस घटना के द्वारा प्रतिष्ठानपुर का नाम बदलकर झूँसी पड़ा। **झूँसी के विषय में, वहाँ एक स्थानीय मौखिक परम्परागत कथा प्रचलित है कि** :- वहाँ एक समय 'हडबेन्गा' (Harabenga) नामक

---

85. मत्स्यपुराण, पूर्व भागः, (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989, अध्याय 106, श्लोक संख्या 30
86. मत्स्यपुराण, पूर्व भाग : (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1989, अध्याय 111, श्लोक संख्या $6^1/_2$ एवं $8^1/_2$
87. दूबे, डी0पी0; प्रयाग, दि साइट ऑव कुम्भ मेला, दिल्ली, 2001, पृष्ठ 14.

अल्पबुद्धि तथा मूर्ख राजा राज्य करता था, जिसके राज्य में चारो तरफ उपद्रव होते रहते थे। कहते हैं कि उस राजा से, उस समय के बड़े महात्मा गोरखनाथ और उनके गुरु मत्स्येन्द्र नाथ (मछंदरनाथ) नें रूष्ट होकर शाप दिया, जिससे वहाँ प्रचण्ड अग्नि का प्रकोप हुआ और पूरा नगर नष्ट हो गया। इस प्रकार इसका नाम झूँसी अर्थात् 'एक जला हुआ कस्बा' पड़ गया।[88] मुगल शासक अकबर के द्वारा झूँसी का नाम बदलकर ''हादियाबास'' (Hadıabas) रखा गया, परन्तु यह नाम प्रचलित नहीं हुआ और यह झूँसी के नाम से ही जाना गया। मुगलों के समय में शेख तकी नामक एक प्रसिद्ध फकीर यहाँ रहते थे। उनकी कब्र गंगा के किनारे, समुद्रकूप टीले के दक्षिण में स्थित है, जहाँ वर्ष में एक बार मेला लगता है। दिल्ली का बादशााह फर्रुखसियार उनकी कब्र के दर्शनार्थ एक बार झूँसी आया था।[89]

पुराणों में प्राचीन प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख चन्द्रवंशी राजाओं की राजधानी के रूप में हुआ है। इसकी स्थापना पुरूरवा नें की थी, जो कि चन्द्रमा के पुत्र बुध एवं इला से उत्पन्न हुए थे।[89A] **मत्स्यपुराण के अनुसार** वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र इल एक बार भ्रमण करते हुए शरवण नामक एक बड़े उपवन में पहुँचे। इस उपवन में सोमार्धशेखर महादेव जी पार्वती जी के साथ विहार कर रहे थे। इस शरवण नामक उपवन में 'किसी परकीय पुरुष के आ जाने से लज्जित होना पड़ेगा, इसलिए पार्वती जी ने यह प्रतिज्ञा की थी कि' यदि कोई पुरुष जीव इस उपवन के दस योजन मण्डल में प्रवेश करेगा तो वह स्त्री रूप में परिवर्तित हो जायेगा। राजा इल को शरवण उपवन प्रवेश के विषय में पार्वती जी की यह प्रतिज्ञा

---

88 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल आर्गिनाइजेशन, लखनऊ 1995-96,अंक 6, पृष्ठ-63, श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग-प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 272, दूबे, डी0पी0; प्रयाग, दि साइट ऑव कुम्भ मेला, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ-35

89 श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 273

89A श्री श्री विष्णु पुराण, सं0 2033, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ अंश, छठां अध्याय, पृष्ठ 310, श्लोक 34

ज्ञात नहीं थी, अतः उपवन में प्रवेश करते ही वह स्त्री रूप में परिवर्तित हो गए। उनका अश्व भी बडवा (घोड़ी) के रूप में बदल गया। स्त्री होकर वह इला के नाम से विख्यात हुए।[90] 'लिंग पुराण' पूर्वार्ध के अन्तर्गत 66 वें अध्याय में इस प्रकार लिखा है कि इला के पुत्र पुरूरवा नें यमुना से उत्तर की ओर प्रयाग के निकट अपनी राजधानी प्रतिष्ठानपुर में राज्य किया था। इस पुराण के अनुसार उसकी वंशावली इस प्रकार है:–[91]
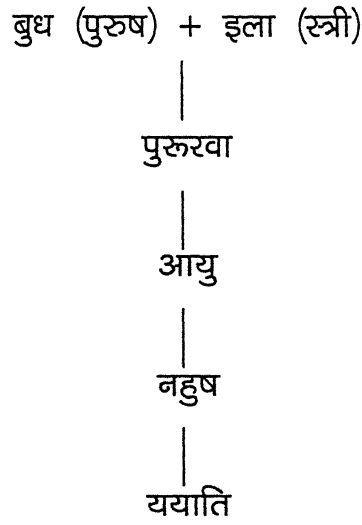
कालिदास नें अपने प्रसिद्ध नाट्क 'विक्रमोर्वशीय' में इसी प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा को नायक बनाया है।[92] इलानन्दन पुरूरवा के उर्वशी अप्सरा से छः पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम इस प्रकार हैं– आयु, धीमान्, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु। इस प्रकार पुरूरवा के पश्चात् **आयु** राजा हुए। आयु के पाँच पुत्र– नहुष, वृद्धशर्मा, रजि, गय तथा अनेना बताये जाते हैं।[93] राजा **नहुष** के छः पुत्रों में– यति, ययाति, संयाति, आयाति, वियाति और कृति में, यति नें राज्य की इच्छा

---

90 मत्स्य पुराण, पूर्वभागः, (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, अध्याय ग्यारह, श्लोक 40–54

91 श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग-प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 271

92 श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग-प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 272

93 श्रीमन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत महाभारत (प्रथम खण्ड), आदि पर्व और सभापर्व, तृतीय संस्करण, सं0 2025, गीताप्रेस, गोरखपुर, पछत्तरवाँ अध्याय, श्लोक 23–26

नहीं की, इसीलिये **ययाति** ही राजा हुए।[94] ययाति नें शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा से विवाह किया। उनके देवयानी से यदु और तुर्वसु, तथा वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा से दुह्य, अनु और पुरु नामक पुत्र हुए। परन्तु ययाति को शुक्राचार्य के शाप से वृद्धावस्था नें असमय ही घेर लिया। उन्होनें शर्मिष्ठा से उत्पन्न पुत्र पुरु की युवावस्था को लेकर कुछ समय तक अपनी प्रजा का भली-भाँति पालन किया। तदन्तर दक्षिण-पूर्व दिशा में तुर्वसु को, पश्चिम में दुह्य को, दक्षिण में यदु को और उत्तर में अनु को माण्डलिक-पद पर नियुक्त कर पुरु को सम्पूर्ण भूमण्डल के राज्य पर अभिषिक्त किया।[95] पुराणों से यह भी ज्ञात होता है कि कालान्तर में इन्हीं चन्द्रवंशियों नें मथुरा इत्यादि स्थानों में जाकर अपना अलग राज्य स्थापित किया था।[96]

विगत वर्षो में (सन् 1995, 1998, 1999, 2000, 2002 एवम् 2003) इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग द्वारा यहाँ पर किये गए उत्खनन कार्यो से मध्यपाषाणकाल, नवपाषाणकाल एवं ताम्रपाषाणिक काल से लेकर पूर्वमध्यकाल तक की ऐतिहासिक सामग्रियाँ प्रकाश में आई हैं। इनमें बड़ी संख्या में वलय-कूप, मृण्मय वस्तुएँ, मुहरें, सिक्के, हाथी दाँत की वस्तुएँ, मनके, चूड़ियाँ, ताँबे और लोहे की वस्तुओं की प्राप्ति उल्लेखनीय है।[97] आभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा यह इंगित होता है कि बारहवीं शती ई0 के बाद प्रतिष्ठानपुर की राजनीतिक महत्ता कम होनें लगी थी। सन् 1830ई0 में यहाँ से एक बहुत ही महत्वपूर्ण अभिलेख ताम्रपत्र पर मिला, जो इस समय एशियाटिक

---

[94] श्री श्री विष्णु पुराण, (अनु0) मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ अंश, दसवां अध्याय, श्लोक 1-3

[95] श्री श्री विष्णु पुराण, (अनु0) मुनिलाल गुप्त, गीताप्रेस, गोरखपुर, चतुर्थ अंश, दसवां अध्याय, श्लोक 4-32

[96] श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 272

[97] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1995-96, अंक 6, पृष्ठ 66

सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में है। इसमें देवनागरी अक्षरों तथा संस्कृत भाषा में 16 पंक्तियाँ हैं।[98] प्रथम पंक्ति इस प्रकार है-

"ओम स्वस्ति श्रीप्रयाग समीप गंगातटावासे परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्रीविजयपाल देवा पा।"

पूरे अभिलेख का सार यह है कि "विजयपाल देव के पौत्र, राज्यपाल देव के पुत्र त्रिलोचनपाल नें जो गंगा किनारे प्रयाग के निकट रहते थे, दक्षिणायन संक्रांति के दिन गंगा-स्नान करने के पश्चात् शिव इत्यादिक का पूजन करके एक गाँव प्रतिष्ठान के ब्राह्मणों को दान दिया, जो विविध गोत्रों और विविध परिवारों से सम्बन्ध रखते थे।" अन्त में श्रावण बदी 4 संवत् 1084 विक्रमी अंकित है, जो कि सन् 1027 ई0 के समतुल्य है।[99] गहड़वाल वंश के राजा गोविन्द चन्द्र (1126ई0) के दान में भी प्राचीन प्रतिष्ठानपुर का उल्लेख हुआ है।[100]

---

[98] इण्डियन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम XVIII, पृष्ठ 35

[99] श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग-प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 272-273

[100] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1995-96, अंक 6, पृष्ठ 63

चतुर्थ अध्याय

स्थापत्य-कला

चतुर्थ अध्याय

स्थापत्य-कला

भवन–निर्माण से सम्बन्धित कला को स्थापत्यकला अथवा वास्तुकला कहा जाता है। इसके अन्तर्गत सभी प्रकार के भवनो यथा– धार्मिक भवन, विशिष्टभवन (राजभवन), आवासीय भवन, सैन्यभवन तथा इनके उपभवन एव उपागो–प्रत्यगो इत्यादि की गणना की जाती है।[1] वास्तु शब्द "वास" शब्द से बना है, जिसका अर्थ है रहने का स्थान अथवा ढका हुआ स्थान। इस प्रकार वास्तु प्राथमिक रूप से ढके हुए स्थान अथवा निवास–स्थान को सदर्भित करता है। **वास्तुकला एक ढके हुए स्थान अथवा मकान अथवा निवास-स्थान रचित करनें की कला एवं विज्ञान है।** वास्तु के मूल मे ढके हुए स्थान का निर्माण किस प्रकार किया जाए, निहित है।[2] कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार–

गृहं क्षेत्रमारामः सेतुबन्धस्तटाकमाधारो वा वास्तुः[3]

अर्थात् घर, खेत, बाग, सीमाबन्ध तालाब और बन्द (जल रोकने के लिये बनाये हुए बाध) आदि वास्तु कहलाते हैं। मानसार के अनुसार वास्तु शब्द का तात्पर्य है–भूमि, हर्म्य (भवन आदि), यान एव पर्यंक।[4] मयमत के अनुसार वास्तु शब्द का अभिप्राय भूमि, प्रासाद, यान एव शयन से है।[5] वास्तुकला एक ऐसा क्रियात्मक विज्ञान है जिसमे सीमित भूमि रचना को अपरिमित वैश्विक शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है, अर्थात् भवन निर्माण सामग्री के ढॉचे स्वरूप शव को शिव बनाना है तो उसमे वास्तुरूपी आत्मा को प्रविष्ट कराना अति आवश्यक है।[6] वास्तुशास्त्र एव; प्रकार से ज्योतिष एव गणित शास्त्र का समन्वित विज्ञान या उप–शास्त्र है।[7]

---

1 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 21
2 दूबे, लालमणि, अपराजितपृच्छा, ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, 1987, पृष्ठ 23
3 कौटिल्य अर्थशास्त्र, (अनु0) उदयवीरशास्त्री, लाहौर, 1925, 61/8/2
4 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 17
5 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 18
6 दैनिक जागरण, 8 अप्रैल 2002
7 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 37

वास्तुकला की ये विशेषताये शब्द "ARCHITECTURE" मे स्वाभाविक रूप से विद्यमान है और शिल्प के संदर्भ मे उद्धत है। **आर्क्ट्रिक्चर (ARCHITECTURE) का सामान्य अर्थ है "आच्छादित (ढका हुआ) और अनाच्छादित (खुला हुआ) या घिरा हुआ अथवा बिना घिरा हुआ स्थान"।** इसे गृह–निर्माण की तकनीक एव कला कहा जाए तो इसका प्राथमिक सम्बन्ध बाहरी खुले हुए स्थान और भीतरी ढके हुए स्थान के बीच सामजस्य बनाना है।[8] आर्क्ट्रिचर (ARCHITECTURE) के संक्षिप्त अर्थ को कुछ शब्दो मे व्यक्त करने के लिए अनेक प्रयास किये गए। लेटहेबी (Lethaby) के अनुसार "ARCHITECTURE IS THE MATRIX OF CIVILIZATION" अर्थात् "स्थापत्य सभ्यता का सॉचा है।" इस परिभाषा मे यह जोडा जा सकता है कि ऐतिहासिक स्थापत्य युगो से मनुष्य के बौद्धिक विकास से होता हुआ सदैव द्रष्टव्य और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का आईना रहा है।[9]

भारतीय स्थापत्य पर प्रथम प्रभावशाली एव व्यवस्थति कार्य रामराज (Ram Raz) के "ऍस्से ऑन दि आर्क्ट्रिक्चर ऑव दि हिन्दूज" था, जिसे उनके मरणोपरान्त रॉयल एशियाटिक सोसाइटी के द्वारा 1834 ई0 मे प्रकाशित किया गया।[10] इसी समय जेम्स प्रिसेप के द्वारा ब्राह्मी लिपि को पढने एव उसके गूढाक्षरो को स्पष्ट करने से प्राचीन भारतीय अध्ययन मे महत्वपूर्ण बदलाव आया। प्रिसेप द्वारा उत्पन्न उत्साह एव महान् कार्य से जेम्स फर्गुसन अत्यधिक प्रभावित हुए। 1845 ई0 मे भारतीय स्थापत्य पर उनका लेख "रॉक कट टैम्पल ऑव इण्डिया" प्रकाशित हुआ।[11] तत्पश्चात् 1876 ई0 मे उनकी पुस्तक "हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्क्ट्रिक्चर" प्रकाशित हुई।[12]

1861 ई0 मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण की स्थापना हुई तथा **अलेक्जेण्डर कनिंघम** को इसका डायरेक्टर जनरल बनाया गया। उन्होने उत्तर भारत का विशेष रूप से गहन

---

8 दूबे, लालमणि, अपराजितपृच्छा, ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, 1987, पृष्ठ 23

9 ब्राउन, पर्सी; इण्डियन आर्क्ट्रिक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू), बम्बई, 1942, अध्याय 1, पृष्ठ 1

10 चन्द्र, प्रमोद, स्टडी इन इण्डियन टैम्पल आर्क्ट्रिचर, AIIS, दिल्ली, 1975 पृष्ठ 1

11 जेम्स फर्गुसन, "रॉक कट टैम्पल ऑव इण्डिया," लंदन, 1845

12 जेम्स फर्गुसन, 'हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्क्ट्रिक्चर', दो खण्डो में, लदन, 1876

सर्वेक्षण किया और अपनी रिपोर्ट तेइस (23) खण्डो मे प्रकाशित की। इनमे 22 खण्डो मे पुरातात्विक स्थलो का वर्णन है तथा तेइसवे खण्ड मे सूची प्राप्त होती है। कनिंघम के अनुसार **"ARCHITECTURAL REMAINS NATURALLY FORM THE MOST PROMINENT BRANCH OF ARCHAEOLOGY"** अर्थात् "गृह–शिल्प सम्बन्धी अवशेष स्वाभाविक रूप से पुरातत्व की प्रधान शाखा है।"[12A]

1874 ई0 मे **जेम्स बर्गेस** पश्चिमी भारत के लिये पुरातात्विक परिमापक एव निर्देशक नियुक्त हुए। अगले चार वर्षो मे भारतीय स्थापत्य पर उनकी तीन श्रेष्ठ पुस्तके प्रकाशित हुई (1) रिपोर्ट ऑन दि एन्टीक्वटीज ऑव बेलग्राम एण्ड कलादी डिस्ट्रीक्ट (1874), (2) रिपोर्ट ऑन दि एन्टीक्वटीज ऑव काठियावाड एण्ड कच्छ (1876), (3) एन्टीक्वटीज ऑव बीदर एण्ड औरगाबाद डिस्ट्रीक्ट (1878)।[13] 1880 ई0 में बर्गेस तथा फर्गुसन की सयुक्त पुस्तक "केव टैम्पल ऑव इण्डिया" प्रकाशित हुई।[14]

भारतीय स्थापत्य पर **ई०बी० हावेल** की दो पुस्तके क्रमश 1913 मे "इण्डियन आर्क्टिक्चर"[15] तथा 1915 मे "एन्श्यन्ट एण्ड मेडवल आर्क्ट्रेक्चर ऑव इण्डिया"[16] प्रकाशित हुई।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सस्कृत विभाग के **प्रो० पी०के० आचार्य** ने अपना सम्पूर्ण जीवन स्थापत्य के अध्ययन मे समर्पित किया, जिसकी अनुकृति उनके ग्रथ **"मानसार"** के रूप मे हुई। उन्होने 1914 ई0 से मानसार पर कार्य करना प्रारम्भ किया तथा उनका प्रथम लेख "ए समरी ऑव दि मानसार" 1918 ई0 मे प्रकाशित हुआ। 1927 ई0 मे "इण्डियन आर्क्ट्रेक्चर एकॉडिग टु दि मानसार–शिल्पशास्त्र एण्ड ए डिक्शनरी ऑव हिन्दू आर्क्ट्रेक्चर" प्रकाशित हुआ। 1946 ई0 मे अन्तिम विस्तृत एव सशोधित सस्करण एन **"एनसाइक्लोपीडिया ऑव हिन्दू आर्क्ट्रेक्चर"** प्रकाशित हुआ।[17]

12A चन्द्र, प्रमोद, स्टडीज इन इण्डियन टैम्पल आर्क्ट्रेचर, AIIS, 1975, पृष्ठ 9

13 चन्द्र, प्रमोद, स्टडीज इन इण्डियन टैम्पल आर्क्ट्रेचर, AIIS, 1975, पृष्ठ 12

14 जेम्स फर्गुसन एव जेम्स बर्गेस, "केव टैम्पल ऑव इण्डिया", लदन, 1880

15 हावेल, ई0बी0; "इण्डियन आर्क्ट्रेक्चर", लंदन 1913

16 हावेल, ई0बी0, "एन्श्यन्ट एण्ड मेडवल आर्किट्रेक्चर ऑव इण्डिया, लदन 1915

17 आचार्य, प्रसन्न कुमार, एन एनसाइक्लोपीडिया ऑव हिन्दू आर्क्ट्रेक्चर, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946

भारतीय कला के अध्ययन को नए आधारो पर पुन स्थापित करने का श्रेय **आनन्द के० कुमारस्वामी** को है। 1927 ई0 मे उनकी पुस्तक "हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशिया आर्ट" प्रकाशित हई। इसके पश्चात् भारतीय कला एव स्थापत्य पर उनकी एक के बाद एक पुस्तके प्रकाशित होती गई। इनमे दो भागो मे "यक्षाज" (दिल्ली, 1971), "एलिमेन्ट्स ऑव बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी" (दिल्ली 1972), "अर्ली इण्डियन आर्क्ट्रिेक्चर : सिटीज एण्ड सिटीगेट" (दिल्ली 1991) महत्वपूर्ण है। भारतीय स्थापत्य की अन्य पुस्तको मे **स्ट्रेला क्रैमरिश** की दो भागो मे "दि हिन्दू टैम्पल" (कलकत्ता, 1946) तथा पर्सी ब्राउन की "इण्डियन आर्क्ट्रिेक्चर (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू)" (बम्बई, 1942) भी पर्याप्त उपयोगी मानी गई है।

इसी प्रकार भारतीय कला एव स्थापत्य मे एस0के0 सरस्वती[18] एच0 डी0 साकलिया,[19] कृष्ण देव,[20] के0 आर0 श्रीनिवासन,[21] एम0ए0 ढाकी,[22] वासुदेव शरण अग्रवाल[23] आदि विद्वानो के लिखे हुए ग्रथ बहुगुण विशिष्ट है तथा उनका पर्याप्त महत्व है।

भारतीय स्थापत्य कला के संदर्भ मे सहित्यिक ग्रथो के द्वारा भी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वैदिक साहित्य मे वास्तुकला सम्बन्धी अनेक शब्द मिलते है, जैसे स्कम्भ (घरो की छत आदि टेकने के खम्भे) , इन्द्र को स्कभीयान् अर्थात् सर्वोत्तम खम्भे का स्वामी कहा गया है।[24] अर्थववेद के शालासूक्त मे शालाओ के निर्माण का उल्लेख है।[25] इसमे

---

18 सरस्वती, एस0 के0, "ए सर्वे ऑव इण्डियन स्कल्पचर," नई दिल्ली, 1975 ई0

19 साकलिया, एच0डी0, "रीजनल एण्ड डायनिस्टिक स्टडी ऑव साउथ इण्डियन मॉन्यूमेन्ट्स", एनॉल्स ऑव दि भडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट XXI (1941)

20 कृष्ण देव, "दि टैम्पल ऑव खजुराहो", एन्श्यन्ट इण्डिया, न0 15 , (1959), "प्रेसीडेन्ट्यिल आड–ड्रेस, फाइन आर्टस एण्ड टेक्निकल साइसस सेक्सन", ऑल–इण्डिया ओरियण्टल कॉन्फ्रेन्स, श्रीनगर, 1961, , एवम् "एक्सटेन्शन ऑव गुप्त आर्ट आर्ट एण्ड आर्कियोलॉजी ऑव दि प्रतिहार ऐज" सेमिनार ऑन इण्डियन आर्ट हिस्ट्री", नई दिल्ली, 1962

21 श्रीनिवासन, के0 आर0 , "पल्लव आर्क्ट्रिेक्चर ऑव साउथ इण्डिया" एन्श्यन्ट इण्डिया, न0 14 (1958), "केव टैम्पल ऑव दि पल्लवाज्", नई दिल्ली 1964

22 ढाकी, एम0ए0, "कॉन् आलाजि ऑव दि सोलकी टैम्पलस ऑव गुजरात," जर्नल ऑव दि मध्य प्रदेश इतिहास परिषद, नं0 3 (1961)

23 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, गुप्त आर्ट , वाराणसी, 1977

24 ऋग्वेद 10/11/5, अग्रवाल, वासुदेव शरण , भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 51

25 अथर्ववेद 3/12/3, जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 56

द्विपक्षा, चतुष्पक्षा, षट्पक्षा, अष्टपक्षा तथा दशपक्षा शालाओ का वर्णन है।[26] शतपथ ब्राह्मण से ज्ञात होता है कि वैदिक युगीन मानवीय घरो का विन्यास उत्तर–दक्षिण दिशा वाला अच्छा माना जाता था। मकानो का मुख उत्तर की ओर रखना शुभ माना जाता था।[27]

सूत्र साहित्य मे स्थापत्य कला के विषय मे उपयोगी सूचनाएँ उपलब्ध है। आश्वलायन एव साखायन गृहयसूत्र दोनो ही तीन–तीन अध्यायो मे भवन–निर्माण सम्बन्धी नियमो का प्रतिपादन करते है। गोभिल तथा खादिर गृहयसूत्रो मे भवन–निर्माण के सिद्धान्तो, आकार, वृत्ताकार या आयताकार द्वारो की स्थिति, घर के आस–पास वृक्षो की स्थिति आदि का विस्तृत विवेचन हुआ है। शुल्ब सूत्रो मे यज्ञ की वेदी के निर्माणार्थ सूक्ष्म नाप–जोख के नियमो का निर्देश है[28], जो पश्चातकालीन प्रासाद–निर्माण का आधारभूत सिद्धान्त बना।[29]

रामायण तथा महाभारत आदि महाकाव्यो मे प्राप्त होने वाले कलात्मक सदर्भो से ज्ञात होता है कि उस समय तक वास्तुकला का पर्याप्त विकास हो चुका था। **महाभारत** मे मय नामक महा–स्थपति के वास्तु कौशल की बडी प्रशसा है, जिसने श्रीकृष्ण के आग्रह पर धर्मराज युधिष्ठिर के लिए एक अद्‌भुद सभा भवन का निर्माण किया था–

न दाशार्ही सुधर्मा वा ब्रह्मणो वाथ तादृशी।
सभारूपेण सम्पन्ना यां चक्रे मतिमान् मयः।।[30]

अर्थात बुद्धिमान मय ने जिस सभा का निर्माण किया था, उसके समान सुन्दर यादवो की सुधर्मा सभा अथवा ब्रह्मा जी की सभा भी नहीं थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र[31] में वास्तुकला के विषय मे रोचक सामग्री उपलब्ध है। इसमे नगर के अतिरिक्त गॉवो के विषय मे भी सूचनाएँ प्राप्त होती है। कौटिल्य ने अपने ग्रंथ मे

---

26 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ–31
27 शतपथ ब्राह्मण, 3 6 1 23, जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995 पृष्ठ 59
28 जोशी, महेशचन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 67
29 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968 पृष्ठ 32
30 महाभारत, (अनु0) पं0 राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय 'राम', स0 2025, गीताप्रेस, गोरखपुर, सभापर्व, तृतीय अध्याय, 27वॉ श्लोक
31 कौटलीय अर्थशास्त्र, (अनु0) उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925

वास्तुकला पर विचार करते हुए सर्वप्रथम उपयुक्त स्थान या जनपद के चुनाव पर विशेष बल दिया है। जनपद का चुनाव हो जाने के पश्चात् उसमे गॉव, नगरीय बस्तियॉ और दुर्गो के चुने हुए स्थान बसाये जाने के विषय मे सूचनाये प्राप्त होती है।[32]

वराहमिहिर की बृहत्सहिता[33] मे वास्तुकला सम्बन्धी सूचनाओ मे साधारण भवनो, राजप्रासादो आदि के निर्माण का रोचक वर्णन हुआ है।

स्थापत्य कला सम्बन्धी उल्लेखो की दृष्टि से अग्निपुराण[34], मत्स्यपुराण[35], भविष्यपुराण[36], नारदपुराण[37] तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण[38] का विशेष महत्व है। **मत्स्यपुराण** के 252 वे अध्याय मे वास्तुविद्या के अट्ठारह आचार्यो की सूची दी गई है–

भृगुरत्रिर्वशिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः।।
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती।।
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।[39]

अर्थात् भृगु, अत्रि, वशिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित विशालाक्ष, पुरन्दर, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति ये अट्ठारह वास्तुशास्त्र के उपदेशक अथवा प्रणेता मानें गये है।

---

32 कौटलीय अर्थशास्त्र, वही, प्रकरण 21, तीसरा अध्याय, दुर्ग विधान। प्रकरण 22, चौथा अध्याय, दुर्ग निवेश

33 वराहमिहिरकृत (बृहत्सहिता), (अनु0) बलदेव प्रसाद जी मिश्र, बम्बई, सवत्, 1997, अध्याय 53 एवम् 56

34 अग्निपुराणम् (पूर्वभाग), (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1985 ई0, अध्याय 104, 105 एव 106

35 मत्स्यपुराणम् (उत्तरभाग), (समा0) प0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988, अध्याय 252, 255, 269, 270

36 भविष्यमहापुराणम् (प्रथम खण्ड) ब्राह्म पर्व, (अनु0) प0 बाबू राम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग, 1995, अध्याय 125 (भुवन वर्णन), अध्याय 130 (प्रसाद लक्षणवर्णनम्), 131 (दारू परीक्षा वर्णनम्)

37 नारद पुराण, महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास रचित, (अनु0) रामचन्द्र शर्मा, मुरादाबाद, अध्याय 13वॉ।

38 विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् (तृतीय खण्ड), क्षेमराज श्रीकृष्णदासेन सम्पादित, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, अध्याय 86–101

39 मत्स्यपुराणम् (उत्तरभाग), (समा0) पं0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988, अध्याय 252, श्लोक 2–3½

गुप्त एव गुप्तोत्तर युग मे सस्कृत भाषा मे रचित कतिपय शिल्पशास्त्रीय ग्रथो मे भारतीय वास्तुकला विषयक जानकारी उपलब्ध होती है, इनमे **शिल्परत्न** (त्रिवेन्द्रम, 1922), **मयमत, मानसार** (लदन, 1946), **समरांगणसूत्रधार** (बडौदा, 1925), मानसोल्लास (मैसूर, 1926), वास्तुविद्या (त्रिवेन्द्रम सस्कृत सीरीज, 1940), अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत, बडौदा, 1950), विश्वकर्मा–वास्तुशास्त्र ((स0) के0 वासुदेव शास्त्री, तजोर, 1958), एव ईशानशिवगुरुदेवपद्धति आदि ग्रथो की गणना की जा सकती है।

इस प्रकार भारतीय स्थापत्य के अध्ययन से सम्बन्धित प्रचुर ग्रथ उपलब्ध है। इनमे अधिकाश वर्णनात्मक है तथा उनमे स्थापत्य और वास्तु शिल्प का विचार अलग–अलग व्यक्त किया गया है। भारतीय स्थापत्य अध्यात्म से सम्बन्धित माना जाता है। भवन–निर्माण का उद्देश्य लोगो की धार्मिक भावना का प्रतिनिधित्व करना रहा है, और इस प्रकार भारतीय स्थापत्य के दो वर्ग हो जाते है–

(1) धार्मिक स्थापत्य,

(2) लौकिक स्थापत्य।

भारत में स्थापत्य कला के साक्ष्य ईसा पूर्व ढाई हजार वर्ष मे विकसित सिधु सभ्यता के पुर–विन्यास, दुर्ग–विधान, महापथरथ्याविधि एव गृह–निर्माण विधि मे प्राप्त होते है।[40] सैधव वास्तुकला उत्तम नगर–नियोजन का उदाहरण प्रस्तुत करती है, जिसमे आग से पकाई हुई मिट्टी की करोडो ईटे इस सभ्यता की निजी विशेषता मानी जाती है, जो आज भी वहॉ के घरो, महलो, जलकुण्ड और कुओ मे लगी है।[41] विशाल तथा कई मजिलो वाले भवन, सीधी चौडी और समकोण पर काटती सडके, पक्की नालियॉ, विशाल अन्नागार, स्नानागार, आदि विकसित नगर सभ्यता के परिचायक है।[42] हडप्पा, मोहनजोदडो, कालीबंगा और सुत्कागेंन–डोर के नगर–निवेश मे मुख्य–मुख्य बातो मे प्रायः समानता मिलती है। इन पुरास्थलों पर पूर्व और पश्चिम दिशा में दो टीले मिले हैं। पूर्व दिशा मे विद्यमान टीले पर

---

40 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ– 17

41 वही, पृष्ठ–17

42 श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ–8

नगर या आवास क्षेत्र के साक्ष्य मिले है। पश्चिम के अपेक्षाकृत ऊँचे किन्तु छोटे टीले पर गढी अथवा दुर्ग के प्रमाण प्राप्त हुए है।

सैन्धव सभ्यता के अवसान से मौर्य युग के प्रादुर्भाव तक, भारतीय वास्तुकला के स्वरूप का अध्ययन प्रधानतया साहित्यिक सन्दर्भो के आधार पर ही किया जा सकता है। इसका अर्थ यह नही है कि उस समयावधि मे विशाल भवनो और मन्दिरो का निर्माण नही हुआ था, बल्कि यह है कि उस काल के भवन कच्ची ईंट और लकडी से बनाये जाते थे। कालक्रम मे वे सड–गल गए और उनके चिन्ह अब शेष नही रहे।[43] इन भवनो की छते बाँस–बल्लियो के ठाट पर फूँस छाकर बनाई जाती थी। इसके ऊपर कोरे बॉसो का जाल, बॉस की खपच्चियो का बिछावन और फूँस–पयार के मुट्ठो की सघन तहे रक्खी जाती थी।[44] वास्तु या गृह–निर्माण कला के सबसे प्रभावशाली अग लकडी के ऊँचे स्तम्भ होते थे, जिन्हे काष्ठ–कर्म के शिल्पी वनो के ऊँचे वृक्षो को काटकर बडे खम्भो का रूप देते थे, (वनस्पते स्वधितिवार्ततक्ष, ऋग्वेद 3/8/6)[45]। काष्ठ–शिल्प के पूर्व अस्तित्व का सुनिश्चित प्रमाण पश्चिमी भारत के गुहा–रचित चैत्यगृह है, जहॉ कीर्तिमुखो के द्वार मे बने हुए काष्ठपजर या वातायन एव भीतर की छत के कठभाग मे पहनाये हुए लकडी के बहुत भारी गर्दने अभी तक अवशिष्ट है।[46]

इस प्रकार वैदिक युग एवम् महाजनपदयुग के नगरवास्तु एव प्रासादवास्तु के भौतिक उदाहरण नही प्राप्त हुए है, क्योकि उनमे से अधिकाश काष्ठकर्म के नमूने थे, परन्तु साहित्यिक स्रोतो से स्पष्ट होता है कि गृह–वास्तुविद्या के आचार्यो ने वैदिक युग मे ही उन तत्वो का आविष्कार कर लिया था, जो ऐतिहासिक युगो की गृह–निर्माण कला में पाए जाते है, जैसे–नीव, कोठे, पक्खे, सभा, अन्त.पुर, द्वार, अलिन्द, ऊर्ध्वछन्द, अध.छन्द, सूत्रमापन, स्तम्भ, छत इत्यादि। इससे विदित होता है कि आर्य गृहवास्तु का विन्यास सरल और स्पष्ट था। उसके तीन भाग थे, प्रथम कक्ष्या, द्वितीय सदस् या दीवानखाना तथा तृतीय अन्त पुर।

---

43 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ– 48

44 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ– 73

45 वही, पृष्ठ 51

46 वही, पृष्ठ 48

कालान्तर मे कक्ष्याओ की सख्या सात तक हो गई।[47] घर के लिये दम, गृह, पस्त्या, सदन, दुरोण, हर्म्य, अस्त, शरण इत्यादि शब्दो का प्रयोग मिलता है।[48] **अमरकोश में गृह के बीस समानार्थक नाम दिये गए हैं-**

गृहं गेहोदवसितं वेश्म सद्म निकेतनम्।।
निशान्तपस्त्य सदनं भवनागारमन्दिरम्।। गृहाः

पुंसि च भूमन्येव निकाय्यनिलयालयाः।। वासः कुटि द्वयोः शाला सभा[49]

अर्थात् गृह गेह, उदवसित, वेश्मन, सद्मन्, निकेतन निशान्त, पस्त्य, सदन, भवन, अगार, मन्दिर, गृह (पु0 बहुवचन) निकाय्य, निलय, आलय, वास, कुटी, शाला, सभा आदि गृह के नाम है।

भारतीय स्थापत्यकला के अन्तर्गत प्रासादो अर्थात् देवभवनो का विशिष्ट स्थान है। पुराणो, आगमो, तन्त्रो एव शिल्पशास्त्रो मे प्रासाद शब्द का मन्दिर के अर्थ मे व्यापक प्रयोग हुआ है।[50] **अमरकोश** मे देवता और राजाओ के गृह का नाम 'प्रासाद' प्राप्त हुआ है–

प्रासादो देवभूभुजाम्।[51]

मत्स्यपुराण,[52], भविष्यपुराण[53], बृहत्सहिता[54] तथा समरागणसूत्रधार आदि ग्रथो मे निम्नलिखित बीस प्रकार के प्रासादो के नाम दिये गए है–

मेरु, मन्दर, कैलास, विमानच्छद, नन्दन समुद्ग, पद्म, गरुड नन्दिवर्धन, कुजर, गुहराज, वृष, हस, सर्वतोभद्र, घट, सिह वृत्त, चतुष्कोण, षोडशश्रि और अष्टाश्रि। उपर्युक्त

---

47 वही, पृष्ठ 54
48 वही, पृष्ठ 51
49 अमरकोश (अमरसिहकृत), प0 रामस्वरूप कृत भाषा टीका सहित, बम्बई, सवत् 1962, 2/2/4–5
50 जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 191
51 अमरकोश (अमरसिहकृत), प0 रामस्वरूप कृत भाषा टीकासहित, बम्बई, सवत् 1962, 2/2/9
52 मत्स्यपुराण (उत्तर भाग.), (स्मा0) प0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988, अध्याय 269, श्लोक 28–29
53 भविष्यमहापुराणम् (प्रथम खण्ड) ब्राह्म पर्व, (अनु0) प0 बाबूराम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1995, अध्याय 130, श्लोक 23–35
54 बृहत्सहिता (वराहमिहिरकृत), (अनु0) बलदेव प्रसाद जी मिश्र, बम्बई, सवत्, 1997, अध्याय 56, श्लोक 17–19

बीस प्रकार के प्रासादो को समरागणसूत्रधार 'नागर प्रासाद' कहता है और उन्हे वाराट तथा द्राविड प्रासादो से अलग रखता है।[55]

अग्निपुराण के अनुसार :- वैराज, पुष्पक, कैलाश, मणिक तथा त्रिविष्टिप, ये पॉच प्रकार के मन्दिर होते है। इनमे प्रथम चौकोर, दूसरे प्रकार का भी वैसा ही होता है, तीसरा गोलाकार, चौथा वृत्ताकार तथा पॉचवे प्रकार का मन्दिर अष्टभुजाकार होता है–

वैराजः पुष्पकश्चान्यः कैलासो मणिकस्तया।।
त्रिविष्टपञ्च पञ्चैब मेरुमूर्धनि संश्थितः।[56]

इनमे से प्रत्येक के नौ प्रभेद होते है। इस प्रकार अग्निपुराण के अनुसार पैतालिस प्रकार के मन्दिर होते है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे भी नगर मे निवेश्य देवतायतनो एव देवो का उल्लेख है।[57] मत्स्यपुराण[58] अग्निपुराण[59], विष्णुधर्मोत्तरपुराण[60] तथा बृहत्सहिता[61] मे मन्दिरो की निर्माण–विधि का वर्णन मिलता है। बृहत्सहिता के अनुसार–

कृत्वा प्रभूतं सलिल [illegible]निवेश्य च।
देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये।[62]

अर्थात् बहुत जल वाले जलाशय बनाकर और बगीचा लगाकर यश और धर्म की वृद्धि के लिये देवता का मन्दिर बनावे। ये मन्दिर ईट, पत्थर अथवा लकडी से निर्मित किये जाते थे। इनमे पत्थरो अथवा ईटो से निर्मित मन्दिर अधिक सख्या मे प्राप्त हुए है। द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से पहले के मन्दिर स्थापत्य के अवशेष नही के बराबर है। इस समय की

---

55 जोशी, महेशचन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 199

56 अग्निपुराणम् (पूर्वभाग), (अनु0), तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग 1985, अध्याय, 104, श्लोक 11

57 अर्थशास्त्र कौटिल्य, (अनु0) उदयवीर शास्त्री, लाहौर, 1925, 22/4/24–27

58 मत्स्यपुराण (उत्तरभाग), (समा0) पं0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988, अध्याय 269, श्लोक 1–56, अध्याय 270, श्लोक 1–36

59 अग्निपुराण (पूर्वभाग), (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976, अध्याय 42, श्लोक 1–26

60 विष्णुधर्मोत्तरपुराण, क्षेमराज श्रीकृष्णदासेन सम्पादित, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, तृतीय खण्ड, अध्याय 86, श्लोक 4–14

61 बृहत्सहिता (वराहमिहिरकृत), (अनु0) बलदेव प्रसाद जी मिश्र, बम्बई, सवत्, 1997, अध्याय 56, श्लोक 1–31

62 बृहत्संहिता वही, अध्याय 56, श्लोक 1

धार्मिक इमारतो मे बौद्ध स्तूप तथा गुफा मन्दिर ही प्रमुख है। पर्वत की गुफाओ को काटकर तत्कालीन प्रचलित मन्दिरो का स्वरूप उनमे अकित किया गया। इनमें सबसे प्राचीन गया जिले की बराबर और नागार्जुनी की पहाडियो पर अशोक एव उसके पौत्र दशरथ द्वारा निर्मित गुफाएँ है। बराबर की पहाडी मे चार तथा नागार्जुनी की पहाडी मे तीन गुफाएँ है।[63] आरम्भिक काल के बने हुए मन्दिरो मे राजस्थान के जयपुर जिले के बैराट नामक स्थान से लगभग 250 ईसा पूर्व का छोटे आकार का ईंट तथा लकडी से निर्मित सादा मन्दिर प्राप्त हुआ है।[64] यह गोलाकार मन्दिर था, जिसका व्यास 8 25 मीटर था। पूर्व दिशा मे स्थित छोटे से मण्डप से होकर इसका प्रवेशद्वार था, जिसके दोनो ओर लकडी के एक–एक स्तम्भ थे। यह 2 15 मीटर चौडे प्रदक्षिणापथ से घिरा हुआ था, जिसमे भी पूर्व दिशा मे एक प्रवेश–द्वार था। कालान्तर मे इसको एक आयताकार (21 मीटर × 13 50 मीटर) प्रागण से घेर दिया गया था।[65]

राजस्थान के उदयपुर जिले मे स्थित नगरी (प्राचीन मध्यमिका) मे सकर्षण एव वासुदेव मन्दिर तथा मध्य प्रदेश के विदिशा जिले मे बेसनगर नामक स्थान पर स्थित भागवत मन्दिर (वैष्णव मन्दिर) का उल्लेख प्राचीन मन्दिरो के उदाहरणो के रूप में किया जा सकता है। इन दोनो मन्दिरो का आकार वृत्तायत के रूप मे था। सभवत यह दोनो मन्दिर मूलत लकडी के बने हुए थे। बाद मे नगरी के मन्दिर की वेदिका पत्थर की बना दी गई थी। इन दोनो मन्दिरो का उल्लेख समकालिक अभिलेखो मे मिलता है। **घोसुण्डी अभिलेख** मे 'पूजा शिला प्राकार और 'नारायण' वाटिका का उल्लेख मिलता है। नगरी से जो अवशेष प्रकाश मे आये है उनसे यह इगित होता है कि द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में यहॉ पर कोई वैष्णव मन्दिर रहा होगा जिसके चारो ओर पत्थर की चहार दीवारी (शिला प्राकार) बनवायी गई थी जिसे अभिलेख में 'नारायण वाटिका' कहा गया है।[66] महाक्षत्रप रजुवुल के

---

[63] पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय कला एव पुरातत्त्व, इलाहाबाद, 1989, पृ0 28
[64] भारत के मन्दिर, प्रकाशन विभाग, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 8
[65] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 138
[66] सरकार डी0सी0, सेलेक्ट इन्क्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम–I, दिल्ली 1991, पृष्ठ 90–91

पुत्र, शोडास के समय के मोरा अभिलेख[67] से ज्ञात होता है कि पञ्चवृष्णिवीरो (बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब) की मूर्तियॉ पाषाण निर्मित देवगृह (अर्थात् मन्दिर) मे स्थापित की गई थी।[68] मध्य प्रदेश के विदिशा जिले मे बेसनगर नामक स्थान पर, प्रथम शताब्दी ई0 पू0 मे तक्षशिला के हिन्द–यवन (इण्डोग्रीक) राजदूत हेलियोडोरस ने गरुडध्वज की स्थापना की थी।[69] समय–समय पर हुए उत्खननो द्वारा यह सकेत मिलता है कि यहा पर ईटो का बना हुआ एक विष्णु मन्दिर था।[70] उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि ईसापूर्व की प्रारम्भिक शताब्दियो मे मन्दिरो का निर्माण हुआ, जिनके सदर्भ अभिलेखो मे प्राप्त होते है। वस्तुत मन्दिर स्थापत्य का पूर्ण विकास गुप्तकाल मे हुआ। गुप्तयुग मे पौराणिक देवी–देवताओ के बहुसख्यक मन्दिर निर्मित हुए, जिनके आभिलेखिक एव पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त हुए है। एक शैली के रूप मे गुप्त मन्दिर स्थापत्य की परम्परा गुप्तो के बाद किसी न किसी रूप मे नवी शती ई0 तक चलती रही। गुप्तयुग से मन्दिर के वास्तुगत सिद्धान्तो का निर्धारण किया गया तथा उसके विविध अगो को शास्त्रीय स्वरूप देने का प्रयास किया गया। पौराणिक उपाख्यानो मे कैलाश पर्वत, सुमेरु पर्वत आदि का उल्लेख मिलता है जहॉ देवता निवास करते है। इस कल्पना ने भी गुप्तकालीन मन्दिरो का स्वरूप प्रभावित किया। पर्वत की गुफाओ के समान मन्दिर का गर्भगृह अधकारपूर्ण बनाया गया। पर्वत की चोटियो के समान गर्भगृह के ऊपर नुकीला शिखर बनाया गया। कहने का आशय यह है कि गुप्तकाल मे धार्मिक, आध्यात्मिक और दार्शनिक मान्यताओ ने मन्दिर के स्वरूप का निर्धारण किया।

अनेक शिल्पशास्त्र के ग्रथो मे मन्दिर के रूप–विधान की परिकल्पना 'वास्तु–पुरुष' के विभिन्न अगो के रूप मे की गई है। यह माना गया है कि जिस प्रकार शरीर मे आत्मा निवास करती है उसी प्रकार मन्दिर मे (गर्भगृह मे) मूर्ति स्थापित होती है। मन्दिर के आधार

---

67 जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 189, एन्शियन्ट इण्डिया, 24, स0 27

68 जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 158

69 सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम–I, दिल्ली, 1991 पृष्ठ 88–89

70 पाण्डेय, जयनारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 138

(अधिष्ठान) को पाद (पैर), अधिष्ठान के ऊपर का भाग जघा (मुख्य दीवार), मन्दिर का भीतरी भाग 'कटि' (कमर) तथा मन्दिर के सबसे ऊपर का भाग शीर्ष अथवा सिर होने के फलस्वरूप 'शिखर' कहलाया। इसके ऊपर कलश, आमलक इत्यादि का अकन किया गया।[71]

गंगा यमुना के निचले दोआब के अधीत क्षेत्रों में इलाहाबाद, कौशाम्बी तथा कानपुर जिलों में स्थित पुरास्थलों से स्थापत्य सम्बन्धी बहुसंख्यक सामग्री प्राप्त हुई है। अध्ययन की सुविधा के लिए इनका क्षेत्रवार वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है।

1. इलाहाबाद

इलाहाबाद जिले के शृग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी आदि स्थलो से प्राप्त वास्तुकला सम्बन्धी सामग्री मे निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

(I) शृग्वेरपुर का ईंटो से निर्मित जलाशय।

(II) भीटा से प्राप्त भवनों की शृखला।

(III) झूँसी का हवेलिया टीला, आवासीय भवन तथा वलयकूप (rıng wells)

2. कौशाम्बी

कौशाम्बी जिले के कौशाम्बी, पभोसा, मेनहाई तथा गढवा आदि स्थलो से स्थापत्यकला सम्बन्धी अवशेषो में निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

(I) घोषिताराम विहार।

(II) अशोक के दो स्तम्भ, प्रथम कौशाम्बी स्तम्भ तथा द्वितीय इलाहाबाद किले मे संस्थापित अशोक स्तम्भ।

(III) कौशाम्बी के आवासीय भवन तथा रक्षा प्राचीर।

---

[71] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1993, पृष्ठ 119

(IV) कौशाम्बी का राजप्रासाद।

(V) रानी कारुवाकी का अभिलेख।

(VI) पभोसा का बृहस्पतिमित्र के मामा आषाढसेन का गुहा निर्माण से सम्बन्धित लेख।

(VII) मेनहाई से प्राप्त वास्तुस्तम्भ।

(VIII) गढवा का चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य', कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त कालीन शिलालेख।

3. कानपुर

कानपुर जिले मे स्थित भीतरगॉव का ईटो से निर्मित मन्दिर उल्लेखनीय है।

1. - लाहाबाद

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उत्खनित पुरास्थलो मे इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत शृग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी से प्राप्त वास्तुकला सम्बन्धी सामग्री मे निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

(I) **शृंग्वेरपुर का ईटों से निर्मित जलाशय :-** शृग्वेरपुर का ईटो से निर्मित जलाशय भारत मे पाए जाने वाले अन्य समकालिक जलाशयो मे सर्वप्रमुख है। इसका उत्खनन शिमला उच्च अध्ययन सस्थान और भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के सयुक्त तत्वाधान मे प्रो0 बी0बी0 लाल और के0एन0 दीक्षित के निर्देशन मे सन् 1978 से 1985 ई0 तक किया गया।[72] यद्यपि समकालीन ग्रथो मे इस जलाशय का उल्लेख वास्तुकला सम्बन्धी उदाहरणो के अन्तर्गत नही प्राप्त होता है, तथापि इसके निर्माण की उच्च स्तरीय योजना तथा तकनीक, एवं जलाशय क्षेत्र से ज्ञात भवन–परिसर के अस्तित्व सम्बन्धी साक्ष्य इस धारणा को प्रबल करते है कि इसका अध्ययन वास्तुकला सम्बन्धी सामग्री के अन्तर्गत किया जा सकता है।

---

72 इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू 1978–79 (पृष्ठ 57–59), 1979–80 (पृष्ठ 74), 1980–81 (पृष्ठ 67–68), 1981–82 (पृष्ठ 66–67), 1982–83 (पृष्ठ 91–92), 1983–84 (पृष्ठ 84–85), 1984–85 (पृष्ठ 85–86)

जलाशय ए (A), बी (B) तथा सी (C) के रूप मे उल्लेखित मिलता है।[73] सम्भवत उक्त जलाशय का निर्माण वर्षाकाल मे गगा नदी मे आई बाढ के फलस्वरूप अतिरिक्त जल को उपयोग मे लाने हेतु किया गया था। जलाशय क्षेत्र मे, जलाधिक्य को एक विशेष रूप से उत्खनित प्रवाहिका के द्वारा पहुँचाया जाता था। इस प्रवाहिका को **फीडिंग चैनल** (Feeding Channel) कहा गया है, जो ऊँचाई पर लगभग 11 मी0 चौडी थी, किन्तु नीचे की ओर सकरी होती हुई ढाल की तरफ केवल 3 मी0 चौडी थी, इसकी गहराई लगभग 5 मी0 थी।

फीडिग चैनल (Feeding Channel) से जल **सिल्टिंग चैम्बर** (Silting Chamber) मे प्रवेश करता था, जो कि फीडिग चैनल से सीधी रेखा मे स्थित न होकर उसके बगल मे स्थित थी, जिसके परिणामस्वरूप सिल्टिग चैम्बर मे प्रवेश करने से पूर्व जल अपनें वेग के एक हिस्से को खो देता था। सिल्टिग चैम्बर की तली फीडिग चैनल की तली से लगभग 1 35 मीटर ऊँची थी। तली के स्तर की इस वृद्धि ने रेत तथा अन्य कचडो के बडे भाग को सिल्टिग चैम्बर मे प्रवेश करने से रोका था।

सिल्टिग चैम्बर (Silting Chamber) से जल **इनलेट चैनल** (Inlet Channel) के सामने बनें हुए सोपानबद्ध कगार (Stepped ledge) के द्वारा जलाशय ए (A) मे प्रवेश करता था, यह सोपानबद्ध कगार (Stepped ledge) अन्तर्वाही जल के अभ्याघात को क्षीण करने मे मदद करता था। यहॉ यह ध्यान देने योग्य है कि इनलेट चैनल (Inlet Channel) की तली सिल्टिग चेम्बर (Silting Chamber) की तली से 2 32 मी0 ऊँची थी। इनलेट चैनल से जल सीधे जलाशय ए (A) की फर्श अथवा जमीन पर न गिर कर कई चरणों की श्रृंखला मे प्रपातित होता था, सर्वप्रथम चौडे क्षेत्र मे प्रवेश करते हुए फर्श पर पहुँचता था, अन्तिम ढलान केवल 25 सेमी0 होता था। पुन· जल, जलाशय के खुले तल पर नही गिरता था। जल को धारित करनें के लिए बडे आकार का ईटो से युक्त (64×48 ×12 सेमी0) फर्श तैयार किया गया था।

---

73 लाल, बी0बी0; एक्सकेवेशन एटॅ श्रृग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 15–21

जलाशय ए (A) मे दो प्रतिधारी दीवारे (Retaining Walls) देखी जा सकती थी,[74] जो एक दूसरे के पीछे स्थित थी। यद्यपि कुछ साक्ष्यो के आधार पर यह माना जा सकता है कि दूसरी दीवार के पीछे वहाँ तीसरी दीवार भी रही होगी जिसके कुछ चिन्ह जलाशय ए(A) के दक्षिणी–पूर्वी कोने के पूर्व मे देखे जा सकते है।

प्राय जलाशय ए(A) की तली, इनलेट चैनल के विपरीत, दक्षिण किनारे की तरफ ढाल लिये हुए थी, जिसके परिणामस्वरूप जो भी रेत जल मे मौजूद रहती थी (क्रमश· फीडिग चैनल और सिल्टिग चैम्बर से निकल जाने के बाद) दक्षिण की तरफ जमा होती जाती थी। दक्षिणी–पूर्वी किनारे पर इस रेत को समय–समय पर बाहर निकालने के लिए सीढियाँ बनाई गई थी। इस कार्य को सम्भवत गर्मी के महीनो मे अधिक सुविधापूर्वक किया जाता रहा होगा, क्योकि उस समय जल–स्तर नीचे चला जाता था। रेत के हट जाने के बाद, अगले बरसात मे होने वाले नये जल की आपूर्ति को धारण करने के लिये जलाशय पुन· तैयार हो जाता था।

जलाशय बी (B), परिसर क्षेत्र का वह हिस्सा था जिसके जल का उपयोग मुख्यतः पेय जल की आपूर्ति के लिये होता था। मिट्टी और कचरे से रहित होने के पश्चात भी, जलाशय ए (A) की तली से जल सीधे जलाशय बी (B) मे प्रवेश नही कर पाता था। इसे अर्न्तसयोजक चैनल–1 के द्वारा जलाशय बी (B) मे प्रवेश कराया जाता था, जो जलाशय ए (A) की तली से ऊपर 1.20 मीटर की ऊँचाई पर थी।[74A] इस प्रकार यह सुनिश्चित था कि जलाशय बी (B) मे गिरने वाला जल पूर्णत स्वच्छ था।

जलाशय बी (B) मे तीन प्रतिधारी दीवारे (Retaining walls) थी, जिसमे दक्षिणी पूर्वी कोने मे एक और दीवार जोडी गई थी। ये सभी रिटेनिंग दीवारे प्राकृतिक मिट्टी की ओर झुकी हुई थी, जिसमे जलाशय खुदा हुआ था। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि रिटेनिग दीवारे गिरे नही, उनको छोटी–छोटी दीवारो के माध्यम से आपस में जोड दिया

---

[74] लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन एट शृग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 16 प्लेट XIV, चित्रफलक 1 (A)

[74A] लाल, बी0बी0, वही, पृष्ठ 17, प्लेट XVIII, चित्रफलक 1(B)

गया था। सबसे निचली रिटेनिग दीवार की ऊँचाई 3 34 मी0 थी, जबकि दोनो अन्य दीवारो की ऊँचाई क्रमश 2 09 मी0 तथ 1 72 मी0 थी। इस प्रकार उत्तरी हिस्से मे कुल ऊँचाई 7.15 मी0 बनती थी। दीवाल की सम्पूर्ण ऊँचाई भूमितल के बाहरी हिस्से से जुडी थी, सम्भवत जिसके कारण एक अतिरिक्त दीवार दक्षिणी–पूर्वी कोने में स्थापित करनी पडी थी।

जलाशय सी (C) आकार में वृत्ताकार था।[75] इसके अधिकाश मलबो तथा कुछ निचले जमावो मे बडी सख्या मे देवी–देवताओ (कुबेर, शिव, पार्वती, षष्ठी या हारीति) की मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुई है जो यह सकेत करती है कि इस ओर कुछ धार्मिक सरचनाये मौजूद थी। जलाशय सी (C) मे भी तीन प्रतिधारी दीवारे थी। इसके पश्चिमी व्यास के हिस्से की ठीक–ठीक जानकारी नही है, क्योंकि इस क्षेत्र का आशिक उत्खनन ही हो सका है, किन्तु पूर्वी तरफ की स्थिति रोचक है। यहॉ एक सीढी के साक्ष्य प्राप्त हुए है, जो पूर्वी भूमि–तल से शुरू है और पश्चिमी तथा दक्षिण की तरफ अपने रास्ते को चौडा करती गयी है।

जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है कि नदी के जल की दिशा को बदल कर जलाशय को भरा जाता था, ऐसे समय मे जब गगा नदी मे बाढ आती थी तथा जलस्तर कई मीटर ऊँचा हो जाता था। चूँकि जलाशय के भर जाने के बाद भी जल बहता रहता था, इसलिये अतिरिक्त जल की निकासी के लिये किसी उपाय की आवश्यकता थी, अन्यथा अतिरिक्त जल, जलाशय को क्षति पहुँचा सकता था। जलाशय परिसर मे, जलाशय सी (C) आखिरी इकाई थी, इसलिए अतिरिक्त जल को जलाशय सी (C) से ही होकर निकाला जाना था। चूँकि नदी दक्षिण की ओर स्थित थी, इसलिये इसके दक्षिणी हिस्से से होकर निकास–द्वार (out let) निर्मित किया गया था। जहॉ जलाशय सी (C) की सबसे निचली प्रतिधारी दीवारे (retaining walls) सुरक्षित पाई गयी, वही दुर्भाग्यवश एक सम्भावित बाढ से ऊपरी दीवारे बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई, परिणामत. निकासी की चौडाई आदि निश्चितता पूर्वक बता सकना सभव नही है।

---

[75] लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन एटॅ श्रृंग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 19 प्लेट, XLVIII, चित्रफलक 2(A)

जलाशय सी (C) के थोडा दक्षिणी ओर छ वाहिकाओ का समूह, जो आपस मे जुडी हुई थी, चौडाई मे 50 सेमी0 से 1 02 मी0 तक, तथा गहराई मे 80 सेमी0 से 1 3 मीटर थी, प्राकृतिक भूमि मे खोदी गयी थी। यद्यपि इन नलिकाओ और जलाशय सी (C) के निकासी के बीच स्पष्ट सम्बन्ध को निरूपित नही किया जा सकता तथापि उत्खनन के अन्तिम सत्र मे स्थल का निरीक्षण करने वाले जल–अभियन्ताओ ने स्पष्ट किया कि ये वाहिकाये स्पिल चैनल (Spill Channel) हो सकती है, जिनसे होकर निकासी जल पहले निकला होगा। उन्होने आगे बताया कि यह अस्थिर बॉधो (waste weirs) का सामान्य अभ्यास था, चूँकि यह निकासी जल को विभाजित करती थी, तथा इस प्रकार से इसके प्रवाह वेग को रोक देती थी। यदि ऐसी युक्ति प्रयोग मे नही लायी जाती तो अकेली वाहिका से गुजर कर जाने वाले सम्पूर्ण जलाधिक्य से उत्पन्न कटाव से जलाशय सी(C) को भारी नुकसान पहुँच सकता था।[76]

स्पिल चैनल के चारो तरफ की प्राकृतिक भूमि के अनुत्खनित हिस्से ने एक आवरण दीवाल (Curtain- wall) बनाई, जिसने जल को सभी दिशाओ मे बहने से रोका। इस आवरण के केन्द्रीय भाग मे केवल एक अन्तराल (Gap) उपलब्ध था, जिससे होकर बर्हिगामी जल गुजर सकता था। इस गलियारे का आधार स्तर स्पिल चैनल के औसत आधार स्तर से 1 48 मी0 ऊँचा था। इसका तात्पर्य था कि उपरोक्त गलियारे मे प्रवेश करने के लिये जल को ऊपर चढना पडता था। जल अभियन्ताओ की तकनीकी शब्दावली मे ऊँचे स्तर के गलियारे को क्रेस्ट (Crest) कहा गया। क्रेस्ट से होकर 4 मी0 तक बहने के बाद ही जल अन्तिम निकास नाली (Exit channel) मे उतरता था, जो प्राकृतिक बरसाती नाली के द्वारा वापस नदी की ओर ले जायी जाती थी।[77]

यद्यपि उक्त जलाशय को निर्मित करनें वाले प्राचीन जल–अभियन्ताओ ने इसकी सुरक्षा के लिये सभी सभव सावधानियो को ध्यान मे रखा, तथापि लगभग एक शताब्दी तक प्रयोग में आने के बाद नदी मे आई अप्रत्याशित बाढ ने इसकी दीवारों को क्षतिग्रस्त कर कुण्ड को आप्लावित कर दिया। फलस्वरूप जलाशय कुछ समय के लिये निर्जल पडा रहा।

---

76 लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन एटॅ श्रृग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 20

77 वही, पृष्ठ 20

निर्जलता की इस अवधि मे रेत और बालू की परत इतनी मात्रा मे इक्ट्ठा होती गयी कि जलाशय बी (B) के उत्तरी हिस्से मे जमाव की मोटाई 3 मीटर से अधिक हो गयी थी।

यद्यपि कुछ समय बाद जलाशय को फिर से प्रयोग मे लाने का प्रयास किया गया, लेकिन रेत और बालू का जमाव इतनी ऊँचाई तक पहुँच गया था कि इनलेट चैनल के द्वारा, जो स्वय अवरूद्ध हो गयी थी, नदी से पानी को प्रवेश कराना कठिन था। फलस्वरूप पश्चिम और दक्षिण किनारो पर एक मिट्टी का बॉध बनाया गया, जहॉ ईटो वाले जलाशय की ऊपरी प्रतिधारी दीवारे (Upper retaining walls) अधिकाश मात्रा मे क्षतिग्रस्त थी। मिट्टी के उक्त जलाशय का जीवन भी बहुत लम्बे समय तक नही रहा और 50 से 100 वर्षो के भीतर ही यह ध्वस्त हो गया। इस प्रकार यह भी परित्यक्त अवस्था को प्राप्त हो गया तथा रेत की परते जमती गयी।[78]

कुछ अन्तरालो के बाद यह स्थल समतल हो गया और उस क्षेत्र के कुछ हिस्से के ऊपर, जहॉ पहले ईटो वाला जलाशय तथा मिट्टी का जलाशय था, एक भवन परिसर के अस्तित्व के साक्ष्य मिलते है। मृद्भाण्ड, मृण्मूर्तियो तथा वासु तृतीय नामक शासक के सिक्के मिले है जिनके आधार पर उक्त भवन परिसर को तीसरी शताब्दी ई0 मे रखा जा सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मिट्टी का जलाशय तीसरी शताब्दी ई0 के प्रारम्भ से पूर्व ही नष्ट हो चुका था। क्योकि मिट्टी के जलाशय का जीवनकाल बहुत लम्बा नही था अत यह (मिट्टी का जलाशय) दूसरी शताब्दी ई0 के प्रथमार्द्ध मे अस्तित्व मे आया रहा होगा। ईटो वाले जलाशय और मिट्टी के जलाशय के बीच का समयान्तराल, उन दोनो के बीच पाये जाने वाले रेत और बालू के मोटे जमाव से स्पष्ट है। अत ऐसा प्रतीत होता है कि ईटों का जलाशय प्रथम शताब्दी ई0 के अन्त तक नष्ट हो चुका था। जहॉ तक इसकी उत्पत्ति का प्रश्न है, उपलब्ध साक्ष्यो के प्रकाश में कहा जा सकता है कि ईटो का जलाशय पहली शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्द्ध मे निर्मित किया गया रहा होगा।[79]

---

78 लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन एटॅ श्रृग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 21

79 लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन एटॅ श्रृंग्वेरपुर, मेमॉमर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88, वाल्यूम 1, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ 21

(II) **भीटा से प्राप्त भवनों की शृंखला :-** प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रो मे भीटा नामक स्थान से, मौर्यकाल से लेकर गुप्तकाल तक निर्मित भवनो के साक्ष्य प्राप्त हुए है, जिन्हे गगा–यमनु के निचले दोआब की स्थापत्यकला के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है। 1911–12 ई0 मे भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के द्वारा सर जॉन मार्शल के निर्देशन मे यहॉ उत्खनन किया गया।[80] भीटा के विभिन्न कालो में निर्मित भवनों में, वास्तुकला सम्बन्धी विशिष्टताओं की दृष्टि से निम्नलिखित भवन उल्लेखनीय है।

भीटा के मौर्यकालीन भवनों में भवन तीन और चार (Buildings 3 and 4.), जो एक दूसरे के आमने–सामने सडक पर स्थित थे, सभवत सुरक्षा गृह का कार्य करते थे अथवा किसी और तरह से सुरक्षा प्रबधो से जुडे हुए थे। ये भवन अपनी सरचना मे उस काल के निजी भवनो की तुलना मे विशालकाय थे। इन भवनो की नीव उनके बीच स्थित सडक के कक्रीट तल के नीचे 4 फीट की गहराई से डाली गयी थी। नीव मे प्रयुक्त ईंटे 20" x 12" से 13¼" × 2¾ से 3" इच माप की है, जिसमे निचली कई परते कच्ची ईटो की है। नीव का बाहरी रूप कूटे हुए मृद्भाण्डो के टुकडों और ककड की परतो द्वारा सुरक्षित है और उसके कोने बाहर से लगाये गए विशाल पत्थरो के द्वारा मजबूत बनाये गए है।[81]

भवन 23 अर्थात् "पुष्यवृद्धि का भवन" (Building 23) के अवशेष बहुत अधिक क्षतिग्रस्त हो चुके है, इसलिये इसकी योजना को दर्शा पाना सभव नही है, इसमे विद्यमान कमरो B, J और K की स्थिति भी स्पष्ट नही की जा सकती है। **यह भवन मूलतः मौर्यकाल में बना था,** जैसा कि नीव तथा 20½" × 13½" x 2¾" माप की प्रयुक्त ईटों से स्पष्ट होता है। कक्ष सख्या J और K को पहली शताब्दी ई0पू0 मे बढाकर पुन निर्माण किया गया। इसी समय ऑगन के चारो ओर कक्षो की शृखला के रूप मे मकान के शेष भाग का निर्माण हुआ, किन्तु इसकी योजना भीटा से प्राप्त अन्य भवनों की तुलना में अनियमित जान पडती है। कक्ष B के मौर्यकालीन फर्श (Floor) को बिगाडा नही गया किन्तु J और K कक्षो के

---

80 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 29–40

81 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 30

तल बाद के काल मे फिर से बनाये गए तथा उनके नीचे दोनो कालो की पुरावस्तुएँ मिलती है।[82]

मौर्यकालीन भवनो की शृखला में पहली पूर्ण–सरचना **भवन सात (Building 7)** है, जो एक श्रेणी–गृह है। इस भवन के कक्ष O के फर्श–तल के नीचे तीसरी अथवा चौथी शताब्दी ई0पू0 की लिपि मे अकित मिट्टी की मुहर पर "सहजाति–निगमस" लेख पढा गया है, अत यह भवन मौर्यकालीन निर्दिष्ट किया जाता है। भवन की योजना सरल है। इसके केन्द्र मे एक खुला आयताकार ऑगन निर्मित है, जिसके चारो तरफ बारह कमरे व्यवस्थित क्रम मे है। ऑगन मे पहुँचने के लिये दो प्रवेशद्वार J और M है, जो भवन मे एक–दूसरे के सामने स्थित है। इसके फर्शतल के ऊपर मलवे मे पायी गयी पुरातन वस्तुएँ, भवन के निर्जन अवस्था मे आने के तुरन्त बाद वहॉ छोडी गयी तथा पहली शताब्दी ई0पू0 से सम्बन्धित है।[83]

इसी प्रकार **भवन छः (Building 6)** का निर्माण शुगकाल मे किया गया, किन्तु गुप्तकाल मे मौर्यकालीन भवन चार के अवशेषो पर इस भवन को बढाकर इसका पुर्ननिर्माण किया गया।[84]

उत्खनन के दौरान, पुष्यवृद्धि के भवन (Building 23) के उत्तरी–पूर्वी दिशा मे कुछ विस्तृत खन्तियॉ डाली गयी, जिनसे **भवनों के दो समूह 27 एवम् 28 (Building 27 and 28)** प्रकाश मे आये। इनमे पहला भवन प्रथम शताब्दी ई0पू0 से सम्बन्धित था, जिसका गुप्तकाल मे बढाकर पुनर्निर्माण किया गया एवम् यथा आवश्यक मरम्मत की गई। सरचना–अवशेषो के दूसरे समूह मे ऊँची गली के समानान्तर स्थित दूसरी गली मे पडने वाली दुकानो की शृखला आती थी। यह गली कस्बे की मुख्य दीवार के एक बुर्ज की ओर जाती थी। मार्शल नें इसका नाम बास्टन स्ट्रीट (Bastion street) रखा।[85] आगे की ओर खन्ती

---

[82] मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ 37

[83] मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्क्यिोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 30–32

[84] मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ– 32

[85] मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ– 38

बढाने पर **गौरीदास और धरदास के दो भवन अर्थात् भवन** 29 **और** 30 **(Buildings 29 and 30)** प्रकाश मे आए।

गौरीदास का भवन (Building 29) पहली शताब्दी ई0पू0 मे बनाया गया। इस भवन मे तीसरी अथवा चौथी शताब्दी ई0 मे जो कुछ भी जोडा गया, यदि उसे छोड दिया जाये तो सामान्यत गौरीदास के मकान की दीवारे लगभग 17½" × 11½ × 2½" माप की ईटो के द्वारा बनायी गयी। इसकी दीवारे सुरक्षित दशा मे प्राप्त होती है तथा इसकी ऊँचाई स्थान–स्थान पर अधिकतम 10 फीट तक पायी जाती है।[86]

धरदास के भवन (Building 30) की वास्तविक योजना को, तीसरी अथवा चौथी शताब्दी ई0 मे होने वाले पुनर्निर्माणो के कारण निर्धारित कर पाना बहुत कठिन है। इस भवन के कक्ष a में एक कुँए का साक्ष्य प्राप्त हुआ है, जो परवर्ती कुषाण युग तक सूख गया था। यह सामान्यत मृतिका वलयो (Earthen ware-rings) से निर्मित है। इसकी गहराई $5^1/_3$" तथा आन्तरिक व्यास 2' 5" है। वृत्तीय भाग 1' 6" ऊँचे वर्गाकार शीर्ष द्वारा ढका हुआ है। यह कुऑ केवल 6' की गहराई तक स्पष्ट था।[87]

भीटा के **भवनों में, भवन एक और दो के अवशेष (Buildings 1 and 2),** जो सडक के दोनो ओर लगभग कस्बे क प्रवेशद्वार पर स्थित थे, गुप्तकाल से सम्बन्धित मानें गए है। ये बनावट मे कमजोर है तथा इतनी भग्न अवस्था मे है कि इनके ढॉचे को दर्शा पाना सम्भव नही है। इन्हें देखकर यह स्पष्ट होता है कि ये सुरक्षागृहो के हिस्से नही थे। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि ये अन्दरूनी और बाहरी द्वारो के बीच स्थित दुकाने रही होगी।[88] **मौर्यकालीन भवन सात अर्थात् श्रेणी-गृह के समीप उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर नागदेव की दुकान तथा मकान (Buildings 12 and 13) के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं,** जो प्रथम शती ई0पू0 के अन्त मे निर्मित किये गए प्रतीत होते है। अभी तक जिन भवनो का उल्लेख

---

86 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आक्यिोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 38

87 मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ– 39

88 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ– 30

किया गया है, वे योजना मे एक जैसे लगते है। इनके मध्य विचारणीय अन्तर यह है कि बाद की सरचना मे कमरो के आकार मे विविधता दिखाई देती है तथा बरामदा भी अपेक्षाकृत बडा है। दुकान केवल तीन कमरो की बनी हुई है, जो एक खुले ऑगन के द्वारा मकान से विभाजित है। इन कमरो के सामने एक ऊँचा चबूतरा था, जैसा कि सामान्य भारतीय बाजारो मे देखा जाता है। मूलरूप से यह चबूतरा केन्द्रीय कक्ष की ओर जाने वाले गलियारे के द्वारा दो भागो मे विभाजित था, किन्तु तीसरी अथवा चौथी शताब्दी ई0 मे फर्श–तल के कई फीट ऊँचा उठ जाने पर एक सीढी जोडी गई तथा नए प्रवेशद्वार को कुछ ऊँचा करके बनाया गया।[89] इन सीढियो पर दूसरी शताब्दी ई0 पू0 की ब्राह्मी लिपि के अक्षरो मे अकित लेखयुक्त पाषाण वेदिका पायी गयी है। नागदेव के मकान मे कक्षो के दक्षिणी–पश्चिमी पक्ति मे प्रयुक्त ईंटो की माप 19½" × 12½" × 2½" है, जबकि मकान के शेष भाग तथा दुकान मे प्रयुक्त ईटो की माप 17½" × 11¾" × 2¾ है।[90] उत्खननो के दौरान नागदेव के भवन तथा अन्य दूसरे कई भवनो से, कुषाणकाल तथा प्रारम्भिक एव परवर्ती गुप्तकालीन स्तरो से काफी सख्या मे प्राप्त कुल्हाडियो (Celts) तथा स्लेट, चूने के पत्थर एव डाईबेस (Diabase) से बने हुए अन्य नवपाषाणिक औजारो की प्राप्ति से यह तथ्य सामने आता है कि शत्रुओ द्वारा लूटपाट कर उजाड दिये जाने के बाद यह कस्बा आस–पास के जगली कबीलो द्वारा अधिकृत कर लिया गया, जो उस समय भी सस्कृति की नवपाषाणिक अवस्था मे थे तथा अपने पीछे इन औजारो को छोड गये थे।[91]

भीटा के भवनो मे, **भवन उन्नीस अर्थात् 'जयवसुद का भवन' (Building 19),** नागदेव के भवन का समकालिक तथा समान लक्षणो वाला माना गया है। यहॉ ऑगन मे कुँआ तथा कोने के कमरे R के फर्श के नीचे भण्डार या कोषगृह पाया गया है। इस भवन का कक्ष 13 फीट गहरा था तथा इसमे नीचे उतरने के लिये अन्तरालो पर तिरछी धरनियॉ (cross Beam) प्रविष्ट करायी गई थी। इस प्रकार इस सकीर्ण क्षेत्र मे चढना और उतरना

---

89 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 32

90 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्क्योलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 33

91 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ– 35

बहुत असुविधाजनक रहा होगा। दीवारों पर स्थापित धरनियाँ (Beam) चौडी है। ऑगन मे स्थित कुँए का ऊपरी चौकोर 4'9" ऊँचा हिस्सा प्रारम्भिक गुप्तकाल का माना जाता है। **इसके** नीचे का वृत्तीय भाग भवन के समकालिक था, यह फर्श–तल से 33" नीचे की ओर गहरा बनाया गया था तथा इसके निर्माण मे प्रयुक्त ईंटे बाहरी किनारो पर उन्नतोदर तथा अन्दरूनी किनारो पर नतोदर थी। इन ईटो की माप अन्दर की ओर 8 ¾" × 7" तथा बाहर की ओर से 10¾" थी।[92]

इस भवन की निचली सतह पर, कुषाण स्तर पर, कई प्रकार के पात्र, एक नारी मृण्मूर्ति (सख्या 34), कई प्रकार की मुहरे, जिसमे दो मुहर कुषाणकाल की लिपि मे अकित एवम् श्रेणियो से सम्बन्धित है (मुहर सख्या 57 तथा मुहर सख्या 59), तथा एक मुहर कुछ पूर्व की लिपि मे अकित पुसमितस (Pusamitasa) लेख से युक्त (सख्या 64) पायी गयी है।

दूसरे तल पर हाथी–दॉत से निर्मित मुहर का ठप्पा पाया गया है, जिस पर उत्तरी गुप्त अक्षरो मे "श्रेष्ठि जयवासुद" लेख है। जिसे उस समय के भवन के स्वामी "महाजन जयवासुद" की मान सकते है।[93]

अन्य संरचनाओ मे, ऊँची गली पर, सामनें की ओर दुकानो की तीन शृखलाये (Shops 9,10 and 22) एवम् बगल की गली मे पक्ति सख्या 10 (row No. 10) में स्थित दुकाने गुप्तकाल मे निर्मित की गई। इनमे कोई उल्लेखनीय विशेषता नहीं प्रकट होती। अधिकाश हिस्सो का गुप्तकालीन स्तर अथवा कुछ फीट नीचे तक ही अन्वेषण किया गया तथा उनमे पाई जाने वाली समस्त पुरानिधियॉ गुप्तकाल की है।[94]

भीटा से प्राप्त भवनो की शृखला के अन्तर्गत **भवन** 50 **(Building 50)** परवर्ती गुप्तकालीन मन्दिर है। इसका उत्खनन फ्यूरर के द्वारा कराया गया। इसमे कोई उल्लेखनीय विशेषता नही प्रकट होती है।[95]

---

92 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ– 35

93 मार्शल, सर जॉन, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आक्यिोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, कलकत्ता, 1915, पृष्ठ 36

94 मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ– 38

95 मार्शल, सर जॉन, वही, पृष्ठ– 40

(III) **झूँसी का हवेलिया टीला, आवासीय भवन तथा वलय- कूप (ring-wells) :-** इलाहाबाद शहर से सटे गगा नदी के बाए तट पर स्थित झूँसी का विशालकाय हवेलिया टीला, जो समुद्रकूप टीले के नाम से जाना जाता है, 25 से 30 मीटर ऊँचा और 30 एकड से अधिक के क्षेत्र मे फैला हुआ है।[96] इस पर एक बडा पक्का कुँआ है। उसी को 'समुद्रकूप' कहते है।[97] ऐसा अनुमान है कि इसका निर्माण समुद्रगुप्त ने करवाया था। मत्स्य–पुराण मे इसका उल्लेख है। पहले बहुत दिनो तक यह कूप बद था। लोगो का यह विश्वास था कि इसका सम्बन्ध समुद्र से है तथा इसे खोदने से समुद्र उमड आयेगा और सारी पृथ्वी जलमग्न हो जायेगी। कई सौ वर्ष पूर्व अयोध्या के एक वैष्णव साधु बाबा सुदर्शन दास ने इस कूप को खुलवाया, साफ कराया और यहॉ एक सुन्दर आश्रम और मन्दिर बनवाया। इसमें गगा की ओर एक बडी सीढी और कई गुफाएँ है।[98]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग की ओर से सर्वप्रथम मार्च 1995 से अप्रैल 1995 तक[99], पुनः मार्च 1998 से जून 1998 तक,[100] एव मार्च 1999 से जून 1999 तक,[101] यहॉ पर उत्खनन कार्य किया गया। टीले के सास्कृतिक अनुक्रम को जानने के लिए 5 वर्गमीटर माप की चार खतियॉ डाली गयी। इन खन्तियो को C-12, D-12, C-14 तथा C-15 नाम दिया गया। खन्ती C-12 तथा D-12 के उत्खनन से कुषाणकाल से लेकर पूर्वमध्यकाल तक के सास्कृतिक जमाव प्रकाश मे आए है, जबकि खन्ती C-14 के उत्खनन से एन0बी0पी0डब्लू0 काल से शुग–कुषाणकाल तक की पुरावस्तुए

---

[96] दैनिक जागरण, "जागरण विविध", इलाहाबाद, 31 मई 2000

[97] गङ्गापूर्वकूले प्रतिष्ठान नाम नगर तत्रैव सामुद्रो नाम कूप स एव प्रतिष्ठानशब्देनात्र लक्ष्यते, तीर्थचिन्तामणि 41, (स0) वाचस्पति मिश्रा, कमलाकृष्ण स्मृतितीर्थ, कलकत्ता,

[98] श्रीवास्तव, शालिग्राम, प्रयाग–प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 280–281, दैनिक जागरण, "जागरण विविध", इलाहाबाद, 1 फरवरी 2001

[99] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1995–96, अंक 6, पृष्ठ 63–66

[100] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 45–49

[101] प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1999–2000, अक 10, पृष्ठ 23–30

प्रकाश मे आयी है। खन्ती C-15 से पूर्व एन0बी0पी0डब्लू स्तर से लेकर मध्य एन0बी0पी0 काल तक के पुरावशेष प्रकाश मे आये है।[102]

प्रारम्भिक एन0बी0पी0डब्लू0 स्तर से ईटो की सरचना के साक्ष्य नही प्राप्त हुए है।[103] इस काल के सरचनात्मक उदाहरणो मे स्तम्भगर्तो (Post holes), फर्शो तथा चूल्हो का उल्लेख किया जा सकता है। नरकट अथवा खडित बॉस के साथ पकी मिट्टी के दीयो का पाया जाना निर्दिष्ट करता है कि सम्बन्धित काल के लोग नरकट तथा बॉस की सहायता से अपने घरो को बनाते थे। छप्परयुक्त इन घरो की दीवाले मिट्टी से लीपी जाती थी।[104] मध्य एन0बी0पी0 चरण से पकी हुई ईटे पाई जाने लगती है। वलयकूप (Ring wells) इस सास्कृतिक चरण के महत्वपूर्ण हिस्से माने गए है।[105] पकी हुई मिट्टी से बने वलय–कूपो का उपयोग गलियो, मकानो तथा ऑगन इत्यादि से गदे पानी के निकास के लिए किया जाता था।[106] सम्भवतया आवासीय भवनो मे स्वच्छता तथा सफाई की दृष्टि से इन मृत्तिका वलय–कूपो का निर्माण किया गया। इनकी बनावट गड्ढे के समान होती थी, जिसमे एक रिंग के ऊपर दूसरे रिंग को रखा जाता था। झूँसी से बहुत बडी सख्या मे रिंगवेल प्राप्त हुए है, इतनी बडी संख्या मे कौशाम्बी से भी रिंगवेल नही प्राप्त हुए है।

द्वितीय शताब्दी ई0पू0 से तीसरी शताब्दी ई0 अर्थात् शुग–कुषाण एव पूर्व गुप्त युग के वास्तुकला सम्बन्धी उदाहरणो मे पकी ईटो की दीवाले, ईंट की फर्श से युक्त कमरे इत्यादि के साथ अग्निकुण्ड के साक्ष्य प्राप्त हुए है। कुषाणकाल के कई स्तर परवर्ती गतिविधियो से क्षतिग्रस्त हुए। प्राप्त साक्ष्य सकेत करते है कि कुषाणकाल मे जनसंख्या की सघनता विद्यमान थी।[107]

---

102 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्यियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 45

103 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्यियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 46

104 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्यियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1999–2000, अंक 10, पृष्ठ 24

105 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्यियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1999–2000, अक 10, पृष्ठ 26

106 शर्मा, जी0आर0, एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, 1949–50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्क्यियोजॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न0 74 दिल्ली, 1969, पृष्ठ 32–33

107 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्क्यियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 49

यहाँ से प्राप्त गुप्तकालीन अवशेषो मे ईट की फर्श से युक्त कुछ भवनो के साक्ष्य मिलते है। इस सम्बन्ध मे यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि कुषाणकाल से सम्बन्धित सरचनाओ मे पूर्ण ईटो के उदाहरण, गुप्तकालीन सरचना की तुलना मे अधिक है।[108]

ऐसा प्रतीत होता है कि उत्खनित स्थल गुप्तकाल के पश्चात् पूर्णत त्याग दिया गया तथा एक लम्बे समयान्तराल के बाद पूर्व मध्यकाल मे पुन प्रयोग मे लाया गया। पूर्व मध्यकाल का समय दसवी–ग्यारहवी शती ई0 से पन्द्रहवी शताब्दी ई0 तक माना गया है।[109]

2. कौशाम्बी

कौशाम्बी जिले के अन्तर्गत कौशाम्बी, पभोसा, मेनहाई तथा गढवा आदि स्थलो से ज्ञात स्थापत्यकला सम्बन्धी अवशेषों मे निम्नलिखित उल्लेखनीय है–

(I) घोषिताराम विहार :- बौद्ध साहित्य में भिक्षुगण के निवास–स्थान के लिये दो विभिन्न शब्दों का प्रयोग मिलता है:–(1) आराम (2) विहार। सर्वप्रथम भगवान बुद्ध के निवास निमित्त जो कुटी या भवन बनाये गए उन्हें "आराम" की संज्ञा दी गई। कालान्तर में भिक्षु समूह के निवास निमित्त स्थान संघाराम या विहार कहलाये।[110]

कौशाम्बी के टीले के पूर्वी भाग में स्थित घोषिताराम विहार का उत्खनन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग की ओर से 1951 से 1956 ई0 तक किया गया।[111] इसे कौशाम्बी के एक समृद्ध सेठ घोषित नें निर्मित कराया था। बौद्ध परम्परा के अनुसार घोषित वत्सराज उदयन का कोषाध्यक्ष था। ऐसी सूचना मिलती है कि जिस समय भगवान बुद्ध श्रावस्ती में ठहरे

---

108 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 49

109 प्राग्धारा, जर्नल ऑव दि यू0पी0 स्टेट आर्कियोलॉजिकल ऑर्गिनाइजेशन, लखनऊ, 1998–99, अक 9, पृष्ठ 49, प्राग्धारा, वही, 1999–2000, अक– 10, पृष्ठ 28

110 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर, पटना, 1972, पृष्ठ 97.

111 इण्डियन आर्कियोलॉजी; ए रिव्यू, 1953-54, पृष्ठ 9, 1954-55, पृष्ठ 16-18 तथा 1955-56, पृष्ठ 20

हुए थे, उन्हें घोषित एवं दो अन्य कुक्कुट एवं पावारिय नामक सेठों नें कौशाम्बी आनें के लिये आमंत्रित किया था।[112] इन तीनों सेठों नें भगवान बुद्ध के सम्मान में अलग-अलग क्रमशः घोषिताराम, कुक्कुटाराम एवं पावरिकाराम नामक विहारों का निर्माण सम्पन्न कराया था।[113] इन तीनों में अभी तक उत्खनन शोधों के प्रयास के परिणाम में केवल घोषिताराम विहार प्रकाश में आ सका है। चीनी बौद्ध यात्री फाह्यान् तथा ह्वेनसांग नें भी क्रमशः चतुर्थ एवं सातवीं शताब्दी ई0 में इस विहार का दर्शन किया था। फाह्यान् नें अपनें यात्रा-विवरण में लिखा है कि, यह विहार उस समय अच्छी दशा में था। इसमें अधिकतर हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी रहते थे।[114] ह्वेनसांग को यह विहार केवल ध्वंसावशेष के रूप में उपलब्ध हुआ था। उसके अनुसार यह विहार नगर के बाहर दक्षिणपूर्व के कोने पर बना हुआ था।[115] घोषिताराम के दक्षिणपूर्व की ओर ईंटों का दो मंजिला एक भवन था। जिसमें वसुबन्धु रहते थे। उन्होंने इसी भवन में 'वेइ-शिह-लुन' (विद्यामात्रसिद्धिशास्त्र) की रचना की थी।[116] घोषिताराम के पूर्व की दिशा में एक आम्रवाटिका थी, जहाँ पर एक प्राचीन गृह था। सुबन्धु के अग्रज असंग इसी में रहते थे। उन्होंने यहाँ रह कर 'सियेन-यंग-शेंग-चिआओ-लुन' नामक ग्रंथ की रचना की थी। चीनी यात्री नें कौशाम्बी नगर के भीतर कुछ अन्य बौद्ध मन्दिरों एवं स्तूपों के भी विद्यमान होनें का उल्लेख अपनें यात्रा विवरण में किया है।[117]

---

[112] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ-248.

[113] राय, उदय नारायण; प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, संस्करण 1998, पृष्ठ 102.

[114] लेग्गे, ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान; ऑक्सफोर्ड, 1886, पृष्ठ 72, राय उदय नारायण; प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद 1998, पृष्ठ 106

[115] वाटर्स, ऑन श्वान् च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (A D 629-645) लंदन, 1905, 1, पृष्ठ 369.

[116] वाटर्स, ऑन श्वान् च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (A D 629-645) लंदन, 1905, 1, पृष्ठ 370.

[117] वाटर्स, ऑन श्वान् च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (A D 629-645) लंदन, 1905, 1, पृष्ठ 366, राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद, संस्करण 1998, पृष्ठ 106.

भारत के अत्यन्त प्राचीन विहारों में प्रसिद्ध घोषिताराम विहार का निर्माण पाँचवी शती ईसा पूर्व में सम्पन्न किया गया।[118] निर्माण के विभिन्न स्तरों से ज्ञात होता है कि इसका विस्तार विभिन्न समयों में होता रहा। यहाँ से निर्माण के सोलह स्तर प्रकाश में आए हैं।[119] इस क्षेत्र में मानव आवास की परम्परा उत्तरी–काली–चमकीली पात्र–परम्परा के प्रचलन से पहले ही प्रारम्भ हो गयी थी, क्योंकि इस क्षेत्र के निम्नतम आवासीय धरातल से चित्रित–धूसर पात्र खण्ड उपलब्ध हुए हैं। इस विहार के चारो ओर पकी हुई ईंटों से निर्मित अनेक दीवालें मिली हैं। विहार का मुख्य प्रवेशद्वार पश्चिम की ओर था। विहार के बीच में एक आँगन था, जिसके उत्तर, दक्षिण तथा पूर्व की ओर भिक्षु–भिक्षुणियों के रहनें के लिये छोटे–छोटे कक्ष (कोठरियां) बनें हुए थे।[120] विहार के प्रांगण में एक बहुत बड़े स्तूप का साक्ष्य मिला है।[121] इसके अतिरिक्त एक अण्डाकार स्तूप तथा तीन छोटे–छोटे स्तूपों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।[122] घोषिताराम विहार के प्रवेशद्वार के बगल में हारीति का एक मन्दिर प्रकाश में आया है,[123] जिसमें हारीति[124] गजलक्ष्मी[125] एवं कुबेर की मिट्टी की विशालकाय मूर्तियाँ स्थापित थीं।[126] यहाँ से प्रस्तर प्रतिमायें, सिक्के, मुहरें तथा अभिलेख भी मिले हैं।

घोषिताराम से प्राप्त अभिलेखों में सबसे महत्वपूर्ण आयागपट्ट पर उल्लिखित अभिलेख है। सम्प्रति जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत है। इस अभिलेख का आलेख्य–उपकरण बुद्ध के पादचिन्ह, स्वस्तिक आदि के चित्रांकनों से अलंकृत है। बुद्ध के पादचिन्हों के नीचे ब्राहमी अक्षर में निम्न लेख अंकित हैः–

---

[118] शर्मा, जी0आर0 हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ 8

[119] इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू 1955–56, पृष्ठ 20.

[120] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 249

[121] शर्मा, जी0 आर0; हिस्ट्री–टू–प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ 11.

[122] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 249.

[123] इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954–55, पृष्ठ 17.

[124] चित्रफलक क्रमसंख्या 10, सम्प्रति जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत।

[125] चित्रफलक क्रमसंख्या 20(A), सम्प्रति जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत।

[126] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 249.

भयंतस धरस अंतेवासिस भिखुस फगुलस
बुधावासे घोषितारामे सब बुधानां पुजाये सिलाकंमस्ता

अर्थात् भदन्तधर के शिष्य भिक्षु फगल नें घोषिताराम में सभी बुद्धों की पूजा के लिये शिला स्थापित करायी थी।[127]

घोषिताराम विहार से सम्बन्धित पुरातात्विक साक्ष्य यह इंगित करते हैं कि छठी शताब्दी ईसवी के प्रथम दशक में यहाँ हूण आक्रमण हुआ। हूणों की लूट-पाट एवं आगजनी का शिकार घोषिताराम विहार भी हुआ। यहाँ के उत्खनन से हूणराज प्रत्यांकित मिट्टी की मुहर मिली है जो कि तोरमाण से समीकृत की जाती है।[128] तोरमाण नें 610 ई0 में मध्य प्रदेश के सागर जिले में स्थित एरण नामक स्थान पर आक्रमण किया था, इसलिये घोषिताराम पर आक्रमण का समय 510 ई0 से 515 ई0 के बीच आनुमानित किया जा सकता है।[129]

(II) अशोक स्तम्भ; प्रथम कौशाम्बी स्तम्भ और द्वितीय इलाहाबाद किले में संस्थापित अशोक स्तम्भः—लकड़ी के ऊँचे स्तम्भ वास्तु या गृह-निर्माणकला के सबसे प्रभावशाली अंग मानें गए हैं।[130] भारत में विशाल स्तम्भों के निर्माण की परम्परा का ऐतिहासिक प्रारम्भ मौर्य सम्राट अशोक द्वारा निर्मित एकाश्मक स्तम्भों से माना जाता है।[131] चुनार के पत्थर से बनें हुए, 30 से 50 फीट तक ऊँचे ये स्तम्भ नीचे की ओर मोटे और ऊपर की ओर क्रमशः पतले होते गए हैं।[132] स्तम्भ-यष्टि (shaft) गोलाकार हैं, तथा उस पर अत्यन्त चमकदार ओप (पालिश) है। स्तम्भ की वास्तुगत विशेषताओं में स्तम्भ-यष्टि (shaft), स्तम्भ-यष्टि की चोटी पर स्थापित घण्टाकृति (capital), स्तम्भ-पट्टिका (Abacus) तथा स्तम्भ के ऊपर मूर्त पशु आकृति (Crowning

---

[127] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 250. राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-192.
[128] इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954-55, पृष्ठ 18, प्लेट XXXIIB
[129] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 250.
[130] अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 68.
[131] जोशी, महेश चन्द्र; युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 172.
[132] जोशी, महेश चन्द्र; युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 86, श्रीवास्तव, ए0एल0; भारतीय कला, इलाहाबाद, संस्करण 1997, पृष्ठ 25.

Animal) है।[133] अशोक के स्तम्भों पर उत्कीर्ण सर्वोच्च पशु आकृतियाँ, मूर्तिकला की सर्वोत्तम उदाहरण मानी जाती हैं। पशुओं में सिंह,[134] हस्ति[135] तथा वृषभ[136] का अंकन प्राप्त होता है। अश्व का अंकन अशोक के सारनाथ स्तम्भ के गोल अंड भाग अथवा चौकी पर प्राप्त हुआ है।[137] इस प्रकार अशोकीय स्तम्भ वास्तुकला और मूर्तिकला का समन्वय समुपस्थित करते हैं। अशोक के कई स्तम्भों पर ब्राह्मी लिपि में लेख उत्कीर्ण मिलता है, जबकि कतिपय लेख रहित स्तम्भ भी प्राप्त हुए हैं।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों के अन्तर्गत अशोक के दो स्तम्भ प्राप्त हुए हैं-प्रथम कौशाम्बी स्तम्भ[138] तथा द्वितीय इलाहाबाद किले में संस्थापित अशोक का लेखयुक्त स्तम्भ।[139]

1. कौशाम्बी स्तम्भ, जिसे नामकरण की सुविधा की दृष्टि से 'अशोकन पिलर' की संज्ञा प्रदान की जाती है। उक्त स्तम्भ कौशाम्बी में ही स्थित है। आपाततः यह स्तम्भ अभिलेख–रहित है, किन्तु अभिव्यक्ततः इसके ऊपरी भाग में शंख–लिपि में निबद्ध अभिलेख प्राप्त होता है, जिसके अक्षरों को अभी तक सुपाठ्य नहीं बनाया जा सका है। वास्तविकता यह है कि इसी शंख–लिपि का रूपान्तर भी उक्त स्तम्भ पर उट्टंकित है। रूपान्तरित अभिलेख कीलशीर्षा (अथवा कुटिल) लिपि में अंकित है, जिसके सुपाठ्य अक्षर हैं, "शंखदेवस्य कृतिरियं", अर्थात् किसी शंखदेव नामधारी व्यक्ति नें इसे अभिलिखित किया था। स्तम्भ का शीर्ष भाग टूटा हुआ है।

---

[133] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 30.

[134] अशोक का सिंह शीर्षक से युक्त स्तम्भ बसाढ़–बाखिरा, लौरियानन्दनगढ़, रामपुरवा तथा सारनाथ से प्राप्त हुआ है, द्रष्टव्य – अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी 1987, पृष्ठ 110–112.

[135] अशोक के गजशीर्षक युक्त स्तम्भ के अन्तर्गत संकाश्य का स्तम्भ उल्लेखनीय है। द्रष्टव्य– अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी 1987, पृष्ठ 111.

[136] वृषभ शीर्षक युक्त अशोक के स्तम्भों में रामपुरवा का स्तम्भ आता है। अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी 1987, पृष्ठ 111.

[137] अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी 1987, पृष्ठ 112–113.

[138] चित्रफलक क्रम संख्या 3(A)

[139] चित्रफलक क्रम संख्या 3(B)

2. इलाहाबाद किले में संस्थापित अशोक का लेखयुक्त स्तम्भ। इस स्तम्भ का भार 493 मन और लम्बाई 35 फीट है। नीचे का व्यास लगभग 3 फीट है, परन्तु ऊपर जाकर क्रमशः कम होते-होते 2 फीट 2 इंच रह गया है।[140] इस स्तम्भ पर सम्राट अशोक, उनकी रानी कारुवाकी, समुद्रगुप्त और जहाँगीर के लेख उत्कीर्ण है, इसके साथ ही बीरबल का भी एक लेख हिन्दी में है।[141] प्रारम्भ में यह स्तम्भ प्राचीन कौशाम्बी नगर में ही स्थापित किया गया था। एक सम्भावना रखी जाती है कि इलाहाबाद किले का निर्माण करते समय इसे अकबर नें कौशाम्बी से स्थानान्तरित कराया था। मध्य युग के मुसलमान नरेशों में फिरोजशाह तुगलक (1351-1388 ई0) उल्लेखनीय है, जिसनें क्रमशः टोपरा तथा मेरठ नगर से अशोक के दो अभिलिखित स्तम्भों को दिल्ली में स्थानान्तरित कराया था।[142] उक्त आशय के साक्ष्य मिल चुके हैं, किन्तु अकबर द्वारा उक्त स्तम्भ के स्थानान्तरित किये जानें का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरी ओर इस स्तम्भ के अभिलेख में प्रयुक्त लिपि के आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकल सकता है कि कम से कम गुप्तकाल में यह स्तम्भ कौशाम्बी में नहीं था। प्रस्तुत स्तम्भ पर गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त का जो अभिलेख अंकित है, उसमें अक्षर 'म' की आकृति कौशाम्बी के मघ शासकों के अभिलेखों में प्रयुक्त आकृति से सर्वथा भिन्न है। अतः समुद्रगुप्त के शासनकाल में उक्त अभिलेखांकित स्तम्भ के कौशाम्बी में स्थित होनें की सम्भावना संशयशील बन बैठती है। यद्यपि इस स्तम्भ के कौशाम्बी में स्थित होनें की संभावना संदिग्ध है, तथापि इसमें उत्कीर्ण लेख से यह सिद्ध हो जाता है कि अशोक के काल में यह नगर मौर्यो के अधीन होनें के अतिरिक्त बौद्ध धर्म का एक प्रतिष्ठित केन्द्र माना जाता था। स्तम्भ का शीर्ष भाग टूटा हुआ है।

---

[140] श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 221.

[141] वही, पृष्ठ 221.

[142] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 29.

स्तम्भ पर अंकित लेख में अशोक कौशाम्बी के महामात्रों को आज्ञा देता है कि संघ में फूट करनें वाले भिक्षु अथवा भिक्षुणियों को मठ की सदस्यता से वंचित तथा निष्कासित किया जायेगा।[143]

(III) कौशाम्बी के आवासीय भवन तथा रक्षा प्राचीरः—उत्खनन शोधों के परिणामस्वरूप कौशाम्बी के टीले में मानव-आवास के चिन्ह लगभग 6.45 किमी0 की परिधि में फैले हुए ज्ञात होते हैं।[144] भवन निर्माण के संदर्भ में उत्तरी-काली-चमकीली पात्र-परम्परा से सम्बन्धित निर्माण के आठ स्तर प्रकाश में आये हैं, जिनमें प्रथम पाँच में भवन-निर्माण कार्य में मिट्टी तथा कच्ची ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं। ऊपरी तीन निर्माण स्तरों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भवनों का निर्माण पकी हुई ईटों से होनें लगा था।[145] भवनों की बनावट अत्यन्त साधारण है। कौशाम्बी के आवासीय भवनों की, समकालीन युग के धार्मिक भवनों यथा-दक्षिण के गुफा मन्दिरों, भरहुत और सॉंची आदि के साथ एक प्रबल तुलना करनें पर, इन भवनों की बनावट एकदम विपरीत दृष्टिगत होती है।[146] मुख्य रूप से सड़कों और गलियों के किनारों पर, भवन पंक्तिबद्ध रूप में बनाये गए, जिनका क्रम उत्तर-दक्षिण और पूरब-पश्चिम था। प्रारम्भिक भवन मुख्य बिन्दु से पूर्व दिशा की ओर बनाये गए, किन्तु बाद में पूर्व दिशा के सम्बन्ध में दृढ़ता नहीं रह गई।[147]

---

[143] हुल्त्स, ई0, कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, वाल्यूम I, वाराणसी, 1969, पृष्ठ 159, सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 70; शर्मा, जी0आर; एक्सकेवेशन एट कौशाम्बी, 1949-50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 8; उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन, दिल्ली, 1961, द्वितीय खण्ड में पृष्ठ 20.

लेख - 1 (A) देवानंपिये आनपयति (B) कोसंबियं महामात

2. . ..... .समगे कटे (B) संघसि नो लहिये

3 .. .. संघ भारवति भिखु वा भिखुनि वा से पि चा

4. ओदातानि दुसानि सनंधापयितु अनावाससि आवासयिये

[144] पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 247.

[145] पाण्डेय जय नारायण; वही, पृष्ठ 248.

[146] शर्मा, जी0आर; एक्सकेवेशन एट कौशाम्बी, 1949-50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 29.

[147] शर्मा, जी0आर; एक्सकेवेशन एट कौशाम्बी, 1949-50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 29.

कौशाम्बी के उत्खनन से छः भवन प्रकाश में आए हैं। यद्यपि भवनों के अपने विशिष्ट लक्षण हैं, तथापि प्रत्येक की आधार-योजना में काफी समानता दिखाई पड़ती है। भवनों में, भीतरी और बाहरी, दो हिस्से निर्मित मिलते हैं, जो सम्भवतया क्रम से स्त्री और पुरूष के द्वारा उपयोग में लाए जाते थे। भीतरी भाग में कमरों की संख्या बाहरी भाग की तुलना में अधिक थी। एक उदाहरण में अन्दर के आँगन के चारों ओर निर्मित कमरों के समूह का साक्ष्य प्राप्त हुआ है। बाहरी आँगन के, बाहरी कमरों की दीवारें कुछ समय पश्चात् लकड़ी के खम्भों द्वारा स्थानान्तरित की गई, जैसा कि भवन तीन में दिखाई पड़ता है। कुछ समय पश्चात् भवन एक में, बाहरी भाग के, बाहरी कमरों के सामने गलियारे जोड़े गए।[148]

भवनों में कोई भी पूर्ण संरचना नहीं प्राप्त हुई है। अतः यह निर्णय करना कठिन है कि घरों की छतों को किस प्रकार बनाया जाता था। विभिन्न स्तरों से बहुत बड़ी संख्या में छत बनाने के लिए पकी हुई मिट्टी के खपड़े (Tiles) प्राप्त हुए हैं। मिट्टी की ईंटों द्वारा निर्मित भवनों में, लकड़ी का प्रयोग दरवाजों के पक्खों एवं भवनों की छत बनानें की सामग्री के रूप में किया गया था, किन्तु किन्हीं भी अवशेष द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती है।[149] सम्भवतया सभी भवनों में, चौरस लकड़ी के लिन्टेल (Lintels) द्वारा दरवाजे बनाये गए थे। दरवाजों की चौड़ाई उनकी स्थिति के द्वारा निर्धारित की जा सकती है। भवनों के मुख्य द्वार प्रायः चौड़े होते थे, जिनकी माप 3 फीट 9 इंच और 4 फीट 9 इंच के बीच की होती थी, जबकि अन्य द्वार प्रायः 2 फीट 6 इंच नाप के होते थे।[150]

कौशाम्बी के टीले के पूर्वी द्वार पर बृहदाकार, आयताकार तथा वर्गाकार इष्टिकाओं से निर्मित रक्षा-प्राचीर के सुस्पष्ट अवशेष उपलब्ध हुए हैं, जो इस सम्भावना के संज्ञापक है कि यह नगर दुर्ग के रूप में प्रतिष्ठित था। रक्षा-प्राचीर में

---

[148] शर्मा, जी0आर0; वही, पृष्ठ 30

[149] शर्मा, जी0आर0; वही, पृष्ठ 29.

[150] शर्मा, जी0आर; एक्सकेवेशन ऐंट कौशाम्बी, 1949-50, मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, दिल्ली, 1969, पृष्ठ 30.

स्थान–स्थान पर प्रहरी कक्ष के अवशेष भी मिले हैं, जिनसे इस नगर का दुर्ग–विधान सुनिश्चित किया जा सकता है। पुरातात्विक समीक्षा के अनुसार, इस दुर्ग–विन्यास में हड़प्पा–विशिष्ट शैली का आभास दिखाई देता है। रक्षा–प्राचीर क्षेत्र के उत्खनन से निर्माण के पच्चीस स्तर प्रकाश में आए हैं, जिनमें से दो निर्माण स्तर रक्षा–प्राचीर के पूर्व–काल से सम्बन्धित हैं, बाईस निर्माण–काल पाँच विभिन्न रक्षा–प्राचीरों से सम्बन्धित हैं, तथा पच्चीसवें निर्माण–स्तर का सम्बन्ध रक्षा–प्राचीर के ध्वस्त हो जानें के बाद के काल से है। रक्षा–प्राचीर के ठीक पूर्व एक यज्ञ वेदी के अवशेष मिले हैं, जिसका समीकरण श्रौत–सूत्र साहित्य में वर्णित श्येनचिति से किया गया है।[151] इसमें संदेह नहीं कि इन उत्खनन शोधों के परिणाम में कौशाम्बी के नगर–जीवन 'उद्भव एवं विकास' तथा भारतीय वास्तुकला के बहुरूप पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है।

(IV) कौशाम्बी का राजप्रसादः–कौशाम्बी के टीले के दक्षिण–पश्चिमी भाग में एक प्राचीन राजप्रासाद के अवशेष उपलब्ध हुए हैं। उत्खनन शोधों से इसके निर्माण के चार स्तर अभिद्योतित हुए हैं। प्रथम स्तर पर निर्मित इसकी दीवाल में अनगढ़ पत्थरों का उपयोग किया गया, इसका समय आठवीं से छठवीं शती ई0 पू0 के बीच माना गया है। द्वितीय स्तर की दीवाल के निर्माण में भली–भाँति गढ़े हुए पत्थरों का उपयोग किया गया। द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 के आसपास इस राजप्रासाद के नष्ट होनें के प्रमाण प्राप्त होते हैं। तृतीय स्तर पर इसे पुनर्निमित करनें का प्रयास किया गया, जब पाषाण के अतिरिक्त इसकी दीवालों में ईटों की भी चुनाई की गई थी। इसका समय द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व से प्रथम शताब्दी ईसवी के बीच में माना गया है। चतुर्थ स्तर पर इस राजप्रासाद की वास्तुकला में मेहराब (Arch) के प्रमाण मिलते हैं। इसका समय द्वितीय शती ई0 का है।[152] राजप्रासाद का निर्माणकाल विवादपूर्ण है।

---

[151] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद 1989, पृष्ठ 246–256.
[152] पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद 1989, पृष्ठ 257–258.

(V) रानी कारुवाकी का अभिलेखः–इलाहाबाद स्तम्भ[153] पर अशोक की रानी कारुवाकी का अभिलेख भी प्राप्त हुआ है। लेख के अनुसार–उन्होंने पुण्यार्जन के निमित्त कौशाम्बी में आम्रवाटिका तथा दानगृह आदि का निर्माण कराया था।[154]

उपरोक्त लेख द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है कि, जिस प्रकार अशोक नें स्तूपों, विहारों तथा एकाश्मक स्तम्भों का निर्माण करके भारतीय वास्तुकला को समृद्धिशाली बनाया, उसी प्रकार राजपरिवार के अन्य सदस्यों नें भी धार्मिक लाभ के निमित्त जिन भवनों का निर्माण कराया, वास्तुकला के अनुपम उदाहरण मानें जा सकते हैं।

(VI) पभोसा का बृहस्पतिमित्र के मामा आषाढसेन का गुहा-निर्माण से सम्बन्धित लेख :–कौशाम्बी के निकट पभोसा नामक स्थान पर स्थित एक गुफा की बाहरी तथा भीतरी दीवाल पर अंकित उक्त लेख प्राकृत से प्रभावित संस्कृत भाषा तथा ब्राहमी लिपि में अंकित है।[155] **गुफा के बाहर अंकित लेख के अनुसार** राजा गोपालीपुत्र बृहस्पतिमित्र के मामा गोपालिका वैहिदरीपुत्र आषाढ़सेन नें उदाक के दसवें संवत्सर में अहिच्छत्र के अर्हतों (जैन अथवा बौद्ध भिक्षु) के लिये गुफा का निर्माण कराया। इसी प्रकार **लयण के भीतर अंकित लेख में** भी आषाढसेन का नाम आया है।[156] प्रथम

---

153 चित्रफलक क्रम संख्या 3(B)

154 हुल्त्स, ई0; कार्पस इन्सक्रप्शनम इन्डीकेरम, वाल्यूम I, वाराणसी, 1969, पृष्ठ 158, सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 69; भट्ट, जनार्दन; अशोक के धर्मलेख (अशोक के शिलालेखों, स्तंभ लेखों और गुफालेखों का संग्रह), दिल्ली, 1957, पृष्ठ 113-114.

155 सरकार, डी0सी0; सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 95-97, गुप्त, परमेश्वरी लाल; प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड 1, मौर्यकाल से गुप्त-पूर्व काल तक, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 94-96, राणा, एस0एस0; भारतीय अभिलेख, वाराणसी, 1978, पृष्ठ 64-65.

156 सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ-97, **गुफा के बाहर अंकित लेख, नं01**
संस्कृतानुवाद-राज्ञ. गोपाली-पुत्रस्य बृहस्पतिमित्रस्य (यद्वा बृहत्स्वातीमित्रस्य) मातुलेन गोपालिका-वैहिदरी-पुत्रेण आषाढ़सेनेने लयनं (= गुहावास.) कारितम् ऊदाकस्य दशम-संवत्सरे अहिच्छत्रार्हतां (सुपरिग्रहे = व्याहाय)।। (क्रमशः पृष्ठ 90 पर)

लेख से ज्ञात होता है कि आषाढ़सेन बृहस्पतिमित्र नामक राजा का मातुल (मामा) था। कौशाम्बी से बृहस्पतिमित्र नामक शासक के सिक्के बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। अतः सम्भावना की जा सकती है कि उक्त अभिलेख में उल्लिखित बृहस्पतिमित्र कौशाम्बी नरेश ही रहा हो। इस प्रकार इन अभिलेखों से कौशाम्बी और अहिच्छत्र के राजवंशों के पारिवारिक सम्बन्धों का परिचय मिलता है। दिनेश चन्द्र सरकार लिपिगत विशेषताओं के आधार पर इस लेख का समय ई0पू0 प्रथम शती के अन्त में रखते हैं।[157]

यह अभिलेख इस सूचना की पुष्टि करता है कि कौशाम्बी के आस-पास के क्षेत्रों में भी उस समय (छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0) धार्मिक भवनों का निर्माण कराया गया।

(VI) मेनहाई से प्राप्त वास्तुस्तम्भः-कौशाम्बी के समीप मेनहाई नामक स्थान से कुछ खण्डित वास्तु-शिल्प कृतियाँ प्राप्त हुई हैं। सम्प्रति जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत हैं। निम्न कलाकृतियाँ उल्लेखनीय हैंः-

(1) चुनार के बालुकाश्म खंड से निर्मित वर्गाकार शीर्ष, ताड़ के पंखे के आकार और रूप में तराशा गया है, जिसकी पत्तियाँ चारो दिशाओं में फैली हुई हैं और उनके बीच से गोलाई में ताड़फल उभरे हुए दिखाई पड़ते हैं।[158] वस्तुतः इसके शिराओं के नुकीले किनारों में अशोक के कमल शीर्षो की शैलीकृत शिराओं की तकनीक दिखाई पड़ती है।

(2) चुनार के बालुकाश्म से तराशा हुआ घंटे के आकार का शीर्ष फलक, जिसमें एक उल्टा अंकित कमल और शीर्ष फलक सहित शीर्ष है, जो कभी किसी

गुफा के भीतर अंकित लेख नं० 2-अधिच्छत्रायाः (= अहिच्छत्रायाः) राज्ञः शौनकायनी-पुत्रस्य वंगपालस्य पुत्रस्य राज्ञः त्रैवर्णी-पुत्रस्य भागवतस्य पुत्रेण वेहिदरी-पुत्रेण आषाढ़सेनेन कारितं (लयनम्)।।

[157] गुप्त, परमेश्वरी लाल; प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड 1, मौर्यकाल से गुप्त-पूर्व काल तक, वाराणसी, 1988, पृष्ठ 94-96.

[158] चित्रफलक क्रम संख्या 4(A)

स्तम्भ पर लगाया गया होगा। प्रस्तुत कलाकृति का रूप और पालिश मौर्य कला के समकक्ष है, किन्तु एकाश्मक मौर्य शीर्ष-फलकों के विपरीत इसके दो भाग हैं:-फलक सहित घंटा और उस पर स्थित आकृति। फलक पर स्थित पशु आकृति का निरूपण मौर्य स्तम्भों पर अंकित पशु आकृतियों से भिन्न है। इसमें अंकित पशुओं में बैठा हुआ दो कुबड़वाला ऊँट[159] जो कि चार सिंहों से घिरा हुआ है तथा त्रिरत्न अथवा "श्रीवत्स" का चिन्ह उल्लेखनीय है। इसका समय द्वितीय शती ई0पू0 माना गया है।

(3) चुनार के बालुकाश्म की खड़े हुए घोड़े की आकृति, जिसका सिर और चारो पैरों के कुछ हिस्से गायब हैं। यह दार्नेदार तीन लड़ियों वाला हार पहनें हुए है।[160] यद्यपि ये कलाकृतियाँ भाव में मौर्ययुगीन प्रतीत होती हैं तथापि इस पर मौर्ययुगीन पालिश नहीं है।[161] इसका समय द्वितीय-प्रथम शती ई0पू0 माना गया है। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय कला के इतिहास में मौर्यकला के अवसान के बाद भी सीमित रूप में मौर्यकला तकनीक प्रचलित थी।

(VIII) **गढ़वा का चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य", कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त कालीन शिलालेख:**-गढ़वा से चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल के वर्ष 88 का एक लेख, एक तिथिविहीन लेख, कुमारगुप्त प्रथम के काल के दो लेख तथा स्कन्दगुप्त कालीन लेख प्राप्त हुए हैं। लेख एक प्रस्तर खण्ड पर उत्कीर्ण है, जो गढ़वा गाँव के दुर्ग की प्राचीर के भीतर बनें एक आधुनिक मकान में लगा था। इसका पता 1871-72 ई0 में राजा शिव प्रसाद नें लगाया था। प्रस्तर खण्ड 9 $^{1}/_{2}$" लम्बा, 4" चौड़ा तथा 2'6 $^{1}/_{2}$" ऊँचा है। वर्तमान समय में यह कलकत्ता संग्रहालय में संग्रहीत है।[162]

---

159 चित्रफलक क्रम संख्या 4(B), जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या A/36.

160 चित्रफलक क्रम संख्या 5(A), संख्या A/35.

161 राय, नीहाररंजन; मौर्य तथा मौर्योत्तर कला, (अनु0) गोरख प्रसाद पाण्डेय, दिल्ली 1979, पृष्ठ 76-77, शर्मा, जी0आर0; हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ 30-33.

162 गोयल, श्रीराम; गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984, पृष्ठ 109.

चन्द्रगुप्त द्वितीय के लेख प्रस्तुत पाषाण खण्ड के बायें पार्श्व पर 4"x1' $4^{1}/_{4}$" क्षेत्रफल में लिखे हुए हैं। प्रथम लेख में नौ पंक्तियाँ हैं, इसके ठीक नीचे दूसरा लेख लिखा है, जिसमें आठ पंक्तियाँ हैं। प्रथम लेख की पहली दो पंक्तियाँ अप्राप्य हैं, तथा दोनों लेखों की शेष पंक्तियों का उत्तरार्द्ध खण्डित है। इन लेखों को सर्वप्रथम कनिंघम नें आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वाल्यूम तीन, पृष्ठ 55 में शिलामुद्रण सहित प्रकाशित किया। तदुपरान्त फ्लीट नें इन्हें "कार्पस इन्सक्रप्शनम इन्डीकेरम", वाल्यूम तीन, पृष्ठ 36-39 में सम्पादित किया। इन दोनों लेखों में ही राजा का नाम अप्राप्य है, परन्तु द्वितीय लेख में संवत्सर 88 (=407 ई0) तिथि सूचक संख्या लिखी है, जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल में पड़ती है तथा 'परम भागवत' उपाधि पढ़ी जा सकी है, जिसे चन्द्रगुप्त द्वितीय नें धारण किया था। अतः यह लेख निश्चय ही चन्द्रगुप्त द्वितीय के काल के हैं। लेख ब्राह्मण धर्मावलम्बियों में दान के प्रति रूचि को स्पष्ट करते हैं। **प्रथम लेख के अनुसार**– सम्भवतः मातृदास नामक व्यक्ति नें दस दीनार (=सुवर्ण मुद्रायें) सदा चलनें वाले सत्र के ब्राह्मणों के लिये दान दी थी। **दूसरे लेख के अनुसार** इतना ही दान किसी गृहस्थ की भार्या नें सम्भवतः उसी सत्र को उसी उद्देश्य के हेतु दिया था। दूसरे लेख में पाटलिपुत्र का भी उल्लेख है।[163]

प्रस्तुत पाषाण खण्ड पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के लेख के ठीक नीचे कुमारगुप्त प्रथम का एक तिथिविहीन लेख उत्कीर्ण है, जिसे बीच में बनी हुई एक रेखा द्वारा पृथक किया गया है। इस लेख में कुल नौं पंक्तियाँ हैं। लेख में महाराजाधिराज कुमारगुप्त का उल्लेख है, परन्तु तिथिवाला अंश अप्राप्य है। इसका उद्देश्य दो दान का उल्लेख करना है, परन्तु उनके विषय में विस्तृत तथ्य अज्ञात हैं। इस लेख को सर्वप्रथम 1873 ई0 में कनिंघम नें अर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वाल्यूम तीन, पृष्ठ 55 पर शिला मुद्रण सहित प्रकाशित किया। तदुपरान्त फ्लीट ने इसे

[163] फ्लीट, जानफेथफुल; कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, इन्सक्रप्शनस ऑव दि अर्ली गुप्त किंग्स, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 36-39, गोयल, श्रीराम; गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984, पृष्ठ 109-111.

"कार्पस इन्सक्रप्शनम इन्डीकेरम", वाल्यूम तीन, पृष्ठ 39-40 में सम्पादित किया। गढ़वा से प्राप्त पाषाण-खण्ड के दाहिनें पार्श्व पर कुमारगुप्त प्रथम का तिथियुक्त लेख प्राप्त हुआ है। यद्यपि उसका नाम अवशिष्ट अंश में नहीं है, लेकिन इसमें वर्ष 98 (= 417 ई0) की तिथि दी गई है, जो कुमारगुप्त प्रथम के शासन-काल में पड़ती है। लेख में कुल नौं पंक्तियाँ हैं। इस लेख का पता पाषाण की प्राप्ति के समय नहीं चल पाया था। इसका प्रकाशन कनिंघम नें 1880 ई0 में, आर्क्योलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, वाल्यूम दस, पृष्ठ 9 पर शिलामुद्रण सहित किया। तदुपरान्त फ्लीट ने इसे "कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम", वाल्यूम तीन, पृष्ठ 40-41 में सम्पादित किया। लेख में किसी सत्र (अर्थात् दानगृह) को 12 दीनार दान दिये जानें का उल्लेख है।[164]

गढ़वा से स्कन्दगुप्त के समय का एक शिलालेख प्राप्त हुआ है। इस लेख का पता कनिंघम महोदय नें 1874-75 एवं 1876-77 ई0 में लगाया था। 1880 ई0 में उन्होंने आर्क्योलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, वाल्यूम दस, पृष्ठ ग्यारह में इसे प्रकाशित किया। 1882 ई0 में ई0 हुल्त्स नें इण्डियन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम ग्यारह (XI), पृष्ठ 311 में इस लेख का संशोधित अंग्रेजी अनुवाद किया। तदुपरान्त फ्लीट नें "कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम", वाल्यूम तीन, पृष्ठ 267-269 में इसे सम्पादित किया। लेख बालूदार शिलाखण्ड पर उत्कीर्ण है, जो कि विष्णु के दशावतार मन्दिर की फर्श में लगा हुआ था। लेख की अधिकांश पंक्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं।

---

164 फ्लीट, जॉनफेथफुल; कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 40-41, गोयल, श्रीराम; गुप्तकालीन अभिलेख, मेरठ, 1984, पृष्ठ 140-141

कुमारगुप्त प्रथम का तिथियुक्त लेख TEXT

1. [जित भगवता।। पर] मभ [।] गवत [महाराजाधि]-
2. [राज-श्री-कुमारगुप्त-राज्य-संवत्स] रे 90 (+) 8..
3. [अस्यां दिवस]- पूर्व्वायां पट्ट... ..
4 ... . ने (?) न = त्मपुण्योप [च] .
5. ..[य-र्त्थ] . . ..कालीयं सदासत् [त] र...
6. ....कस्य तलकनिवन्से (?)......
7 ....त्य (?) म दीनारा द्वादश
8. ... .र = यांकुरोदम् (?) स्त-च्छ
9. ....[सं] युक्त [:*] स्याद = इति। (।।)

यहाँ तक कि वह भाग जिसमें राजा का नाम उल्लिखित था, मिट गया है। लेख की तिथि गुप्त संवत् 148 (=467 ई0) है, जो स्कन्दगुप्त के शासनकाल की है। लेख के अनुसार किसी नागरिक नें अपनें धार्मिक लाभ के निमित्त गढ़वा के उक्त मन्दिर में भगवान अनन्तशायी (विष्णु) की मूर्ति की स्थापना की थी। सम्प्रति कलकत्ता संग्रहालय में संग्रहीत है।[165]

3. कानपुर

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों के अन्तर्गत कानपुर जिले में स्थित भीतरगाँव मन्दिर स्थापत्य को सम्मिलित किया गया है।

भीतरगॉव का ईटों से निर्मित मन्दिर-भारत की मन्दिर स्थापत्य कला में भीतरगाँव मन्दिर स्थापत्य[166] का विशिष्ट स्थान है। 1877 ई0 में अलेक्जेण्डर कनिंघम नें इस मन्दिर का पता लगाया था। उन्होंने 1875-76 तथा 1877-78 ई0 की अपनी सर्वेक्षण आख्या में, भीतरगाँव मंन्दिर के विषय में विस्तारपूर्वक वर्णन किया।[167] भीतरगाँव मन्दिर के विषय में 1908-09 ई0 की आर्कियोलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट में विवरण उपलब्ध है।[168] यह मन्दिर पूर्वमुखी है, जो ईटों का बना हुआ मृण्मूर्तियों से सुसज्जित है।[169] इसका गर्भगृह वर्गाकार 15 फीट है, जिसका ढका हुआ आयताकार प्रदक्षिणापथ (7 फीट 2 इंच x 4 फीट 4 इंच), वर्गाकार गूढ़भण्डप (7 फीट 4 इंच) की ओर जाता है। प्रदक्षिणापथ से गूढ़मण्डप तक

---

165 फ्लीट, जॉनफेथफुल; कार्पस इन्सक्रप्शनम इन्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 267-269, राय, उदयनारायण, गुप्तराजवंश तथा उनका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ 312-313

166 एनसाइक्लोपीडिया आवॅ इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, टेक्स्ट, (सं0) माइकल डब्लू मिस्टर, एम0 ए0 ढाकी, कृष्ण देव, AIIS, दिल्ली 1988, पृष्ठ 36-37, गुप्त, परमेश्वरी लाल; भारतीय वास्तुकला; वाराणसी; 1977, पृष्ठ 98, वर्मा, महेन्द्र, प्राचीन भारत की वास्तुकला, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 150-151, सहाय, सच्चिदानन्द; मन्दिर स्थापत्य का इतिहास, पटना, 1989, पृष्ठ 25-26, जहीर, मोहम्मद; दि टैम्पल ऑव भीतरगाँव, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 83-94, अग्रवाल, वासुदेव शरण; गुप्तआर्ट, वाराणसी, 1977, पृष्ठ 76-78, अग्रवाल, पृथ्वीकुमार; गुप्त टैम्पल आर्क्ट्रिक्चर, वाराणसी, 1968, पृष्ठ 46-49.

167 कनिंघम, अलेक्जेण्डर; आर्कियोलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, वाल्यूम XI, पृष्ठ 40-46.

168 आर्कियोलॉजिकल सर्वे आवॅ इण्डिया, एर्नुअल रिपोर्ट, 1908-09, कलकत्ता, 1912, पृष्ठ 5-16

169 चित्रफलक क्रम संख्या 5 (B)

छः सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। गूढ़मण्डप और सीढ़ियाँ कपिली दीवारों के अन्दर समायोजित हैं। गर्भगृह की भाँति गूढ़मण्डप की छत अन्दर से गुम्बद की भाँति कदलिकाकर्ण पद्धति से ईटों की बनी है। प्रदक्षिणापथ और सीढ़ियाँ गजपृष्ठाकृति पद्धति की छत से ढकी हैं। ये छतें कदलिकाकर्ण की स्वदेशी पद्धति का प्रयोग करके बनाई गई हैं।[170]

भीतरगाँव मन्दिर ऊँची जगती पर बनाया गया था (71x60 फीट से अधिक), जो अब मिट्‌टी से दब गई है। मन्दिर का वेदिबन्ध एक गोल समतल टीले पर हैं, जो कुम्भ, अन्तरपत्र और कपोतपालि से निर्मित है। गर्भगृह की दीवार मोटी है जिस पर कर्ण और भद्र कल्पनायें दिखायी देती हैं। जंघा चौकोर खोखले आलों से सजी है, जिन पर मृण्मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जिन्हें अलंकृत छोटे खम्भों के द्वारा अलग किया गया हैं प्रत्येक भद्र के मुख पर तीन आले बनें है, प्रत्येक ओर एक आला है एवं प्रत्येक कर्ण पर एक आला बना है। एक आला कपिली के मुख पर है।[171]

प्रत्येक छोटा खम्भा (4 फीट 3 इंच ऊँचा) अति उत्तम अलंकृत घट आधारित है। जिसका एक सिरा अष्टकोणीय वर्गाकार और गोलाकार खण्ड है, तथा इसके ऊपर सुन्दर उल्टें कमल ओर चक्राकार ऐंठें हुए माले चढ़े हुए हैं।[172] प्रत्येक भद्र पर चार खम्भें हैं और उनमें दो प्रत्येक कर्ण के मुख पर है। छोटे खम्भों के बीच ढालदार त्रिकोण टिके हैं और एक भारी कपोतपालि को आधार देते हैं, जिसके नीचे दो कर्ण नमूनें स्थित हैं। ऊपरी हिस्से में कई कपिशीर्षका उभरे हुए हैं जबकि निचले हिस्से में कमल की पंखुड़ियाँ उभरी हैं। कपोतपालि के ऊपर शुकनासा है, जो मृण्मूर्तियों के समूह से अलंकृत है। इसमें कपोतपालि में मृग बनें हुए हैं। शुकनासा के ऊपर दूसरी कपोतपालि है, जिससे कि जंघा तक का भाग पूरा हो जाता है।

---

170 एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्क्टिचर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, टेक्सट, (सं0) माइकल डब्लू मिस्टर, एम0ए0 ढाकी, कृष्ण देव, AIIS, दिल्ली, 1988, पृष्ठ–36

171 एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्क्टिचर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, टेक्सट, (सं0) माइकल डब्लू मिस्टर, एम0ए0 ढाकी, कृष्ण देव, AIIS, दिल्ली, 1988, पृष्ठ–36

172 चित्रफलक क्रमसंख्या 7

इसके निचले भाग में कमल के स्थान पर माला बनी हुई है। इस प्रकार यह शुकनासा जंघा को शिखर से अलग करती है।[173]

इस मन्दिर का शिखर अत्यधिक क्षतिग्रस्त है, लेकिन प्राप्त अवशेषों को देखनें पर यह स्पष्ट है कि वह सीढ़ीदार पिरामिड के समान बना हुआ है, जिसकी घटती हुई पंक्तियों के आलों को मृण्मयी मूर्तियों तथा फलकों के द्वारा सजाया गया है। आलों की पंक्ति भद्र और कर्ण पर आधारित है। बड़े आले सीधी रेखाओं से बने हुए अर्द्धआयताकार हैं, उसमें पूर्ण आकृतियाँ, मिथुन और ऐतिहासिक फलक रखे हुए हैं। छोटे आले अर्द्धवृत्ताकार हैं, जिनमें मस्तक व धड़ रखे हुए मिलते हैं।[174]

शिखर के प्रथम भद्र स्तर में पाँच बड़े देव-प्रकोष्ठ हैं, जो क्रमशः नीचे से ऊपर की ओर छोटे होते गए हैं।[175] इनके ऊपर पुनः छोटे आकार के देव प्रकोष्ठ हैं, जिनके ऊपर देव-प्रकोष्ठ की दूसरी बड़ी पंक्ति है। अन्य स्तर अधिकाशंतः नष्ट हो गए हैं। कर्णरथ पर देव-प्रकोष्ठों का आकार-प्राकार भिन्न हैं। आधार स्तर पर कोनों में अपेक्षाकृत बड़े देव प्रकोष्ठ हैं, दूसरी पंक्ति सामान्य आकार की हैं, जिसके ऊपर दो छोटे आकार के देव प्रकोष्ठ हैं। शिखर का उत्तरी और पश्चिमी मुख अधिक सुरक्षित है।

इस प्रकार सत्तर फीट ऊँचा पिरामिडि न शिखर वाला यह मन्दिर, गंगा-यमुना के निचले दोआब की स्थापत्य कला में अपनी विशेषताओं के कारण महत्वपूर्ण हैं। इसका समय लगभग पाँचवी शताब्दी ई0 माना गया है।[176] इस प्रकार यह गुप्तकालीन मन्दिर कहा जा सकता है।

---

173 एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्क्ट्रिचर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, टेक्सट, (सं0) माइकल डब्लू मिस्टर, एम0ए0 ढाकी, कृष्ण देव, AIIS, दिल्ली, 1988, पृष्ठ-36

174 एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्क्ट्रिचर, नार्थ इण्डिया, वाल्यूम II, पार्ट वन, टेक्सट, (सं0) माइकल डब्लू मिस्टर, एम0ए0 ढाकी, कृष्ण देव, AIIS, दिल्ली, 1988, पृष्ठ-37, चित्रफलक क्रम संख्या 6(B)

175 चित्रफलक क्रम संख्या 6(A)

176 अग्रवाल, पृथ्वी कुमार; गुप्त टैम्पल आर्क्ट्रिक्चर, वाराणसी 1968, पृष्ठ- 47

TEMPLE OF BHITARGAON
Foundation Walls
of Platform
गर्भ गृह
SANCTUM
Brick
Arch over
PORCH
Terra-cotta
Panels
GROUND PLAN
तल विन्यास
10 5 0 10 20
Feet
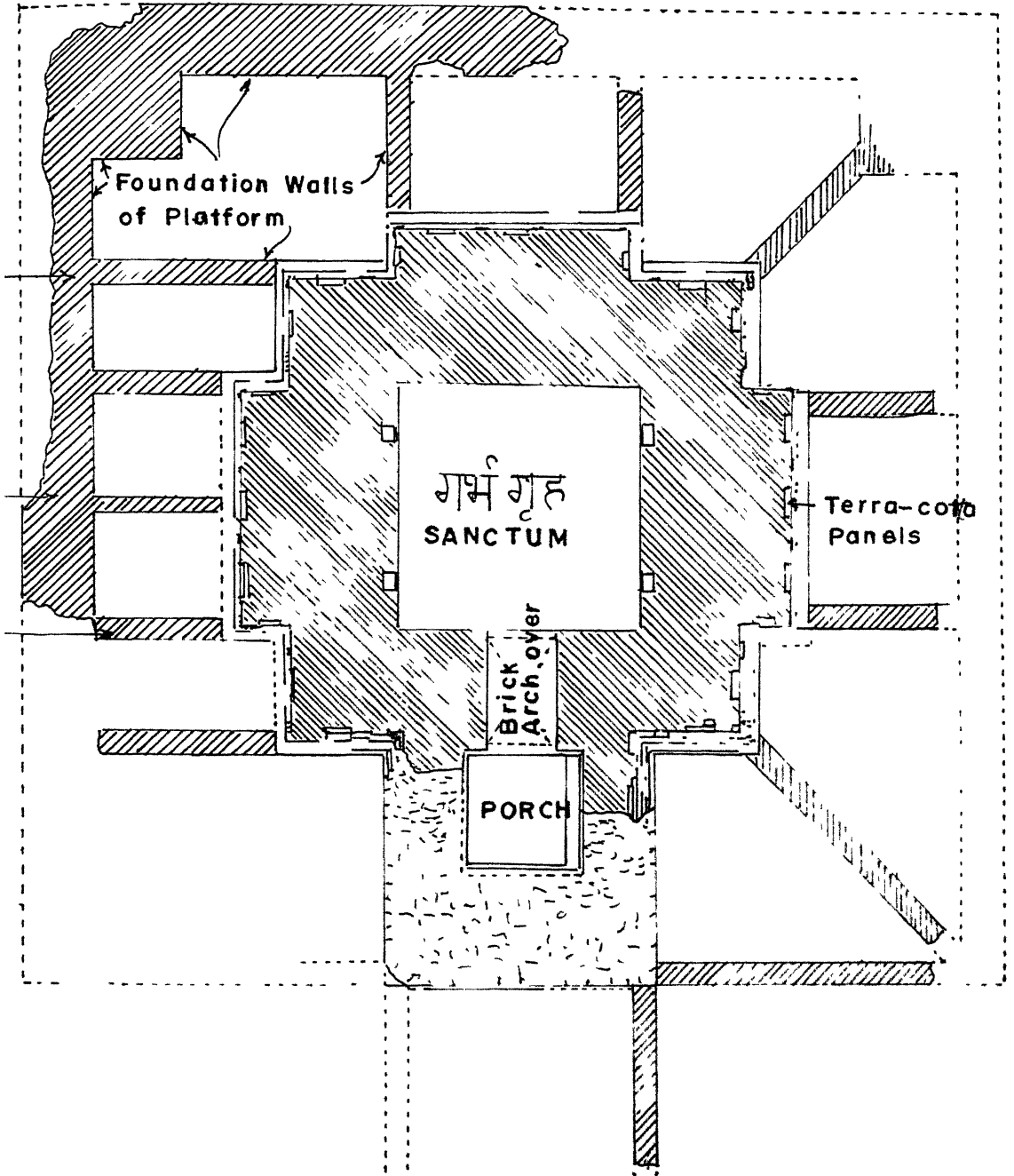
पंचम अध्याय

मूर्ति-शिल्प

पंचम अध्याय

मूर्ति-शिल्प

मूर्ति, प्रतिमा एवं प्रतिकृति वस्तुतः एक ही है। प्रतिमा विज्ञान के लिए अंग्रेजी में "आइकोनोग्राफी" शब्द प्रयुक्त होता है। "आइकन" शब्द का तात्पर्य उस देवता अथवा ऋषि के रूप से है, जो कला में चित्रित किया जाता है।[1] इसके माध्यम से देवताओं अथवा महान व्यक्तियों के मूर्तरूप अथवा प्रतिरूप को प्रस्तुत किया जाता है। समय-समय पर प्रतिमा के लिए अर्चा, तनु, विग्रह, रूप आदि अनेक अन्य शब्द भी प्रयुक्त हुए, जो प्रतिमा के रूप, आकार-प्रकार आदि का स्पष्ट उल्लेख करते हैं।[2] वैदिक काल में साक्षात् रूप से तो देवताओं की पूजा प्रतिमा के माध्यम से नहीं होती थी, किन्तु इसका उद्भव वैदिक काल में ही हो चुका था, इसका संकेत अनेक स्थानों पर मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर प्रतिमा शब्द का प्रयोग हुआ है। इसमें स्तोता यज्ञ की प्रतिमा और उसके माप के विषय में प्रश्न करता है।[3] कुछ विद्वानों का विचार है कि मूर्तिपूजा पूर्व-वैदिक भारतीय आर्यो के समय में भी विद्यमान थी। बोलेन्सेन और वेंकटेश्वर इस मत की पुष्टि में कतिपय ऋग्वेद के मन्त्रों को भी प्रस्तुत करते हैं, किन्तु मैक्समूलर, विल्सन और मैक्डानेल का विचार इसके विपरीत है, इनका मत है कि पूर्व वैदिक काल में भारतीय आर्य मूर्ति-पूजा के विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। जिन मंत्रों को बोलेन्सेन और वेंकटेश्वर ने अपने प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया है, उनके विषय में इन लोगों का विचार है कि देवताओं के विषय में उनकी उस प्रकार की कल्पना थी, साक्षात् रूप से प्रतिमा द्वारा पूजा का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है।[4] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वैदिक काल में स्पष्ट रूप से मूर्तियों का उल्लेख

---

1 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ-79

2 मिश्र, इन्दुमती; वही, पृष्ठ-49

3 ऋग्वेद 10/130/3

4 बनर्जी, जे0 एन0; दि डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, दिल्ली, 1974, पृष्ठ 42-47

नहीं मिलता है। उस समय केवल उनके रूप की कल्पना मात्र की गई थी, किन्तु वैदिक साहित्य में उपलब्ध साक्ष्यों से इस तथ्य का संकेत अवश्य मिलता है कि उस कल्पना को ही मूलाधार मानकर बाद में मूर्तियों का निर्माण किया गया होगा।

पुराणों में मूर्तिशास्त्र सम्बन्धी नितान्त उपादेय सामग्री उपलब्ध होती है। मूर्तिकला सम्बन्धी उल्लेखों की दृष्टि से अग्निपुराण[5] मत्स्यपुराण[6], विष्णुधर्मोत्तरपुराण[7], पद्मपुराण[8], तथा गरुड़ पुराण[9] का विशेष महत्व है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विष्णु की मूर्ति के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि विष्णु गरुड़ पर बैठे हुए, पीताम्बर, वक्षस्थल पर कौस्तुभ तथा अन्य आभूषणों को धारण किये हुए प्रदर्शित किये जानें चाहिये। उनका वर्ण जल से परिपूर्ण बादलों के सदृश हो। उनके चार मुख एवं आठ भुजाएं होनी चाहिये। पूर्व दिशा की ओर किया हुआ मुख सौम्य, दक्षिण की ओर मुख नृसिंह, पश्चिम की ओर मुख कपिल तथा उत्तर की ओर मुख वराह को सूचित करता है।[10] इस प्रकार की प्रतिमायें विश्वरूप प्रतिमायें कही जाती है। गुप्तकाल में निर्मित विष्णु मूर्तियों में इस प्रकार की प्रतिमायें मिलती हैं।[11] विष्णुधर्मोत्तरपुराण में विष्णु के नर-नारायण, नृसिंह, वराह, हयग्रीव, पद्मनाभ आदि रूपों की प्रतिमाओं का भी वर्णन किया गया है।[12] पद्मपुराण में विष्णु की मूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि शंख, चक्र गदा

---

5 अग्निपुराणम्, (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1976, श्री अग्निमहापुराणम्, क्षेमराज श्री कृष्णदासेन सम्पादित, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985

6 मत्स्यपुराणम्, (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, (समा0) पं0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988

7 विष्णुधर्मोत्तरपुराण, (तीनोखण्ड), क्षेमराज श्री कृष्णदासेन सम्पादित, नाग पब्लिशर्स दिल्ली, 1985

8 पद्मपुराण, श्री मन्महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यास विरचितम्, गुरुमण्डल ग्रन्थमात्रा, कलकत्ता, भाग 1-2, सन् 1957 ई0, भाग-3 सन् 1958 ई0, भाग 4-5 सन् 1959 ई0

9 गरुडमहापुराणम्, खेमराज श्री कृष्णदासेन सम्पादित, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1984

10 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 44, श्लोक 9-12

11 शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में गढ़वा से विश्व रूप विष्णु प्रतिमा प्राप्त हुई है। चित्रफलक क्रम संख्या 12(B)

12 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 78-81, 86

आदि विष्णु के आयुध का मूर्ति में प्रमाण के अनुसार ही विशेष रूप से निर्माण कराना चाहिये। विष्णु की चार भुआओं वाली, दो नेत्रों से युक्त, शंख, चक्र, पद्म और गदा धारण करनें वाली, पीताम्बर धारण करनें वाली, अत्यधिक शोभा से सम्पन्न, वनमाला धारिणी, वैदूर्यमणि से निर्मित, कुण्डलों से शोभायमान, मुकुट तथा कौस्तुभभणि से युक्त एवं समुद्भासित, स्वर्ण, रजत, ताम्र अथवा पीतल की मूर्ति का निर्माण परम वैष्णव द्विज श्रेष्ठों को कराना चाहिये।[13] इसी प्रकार पुराणों में ब्रह्मा, शिव, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय आदि देवताओं तथा लक्ष्मी, दुर्गा आदि देवियों की प्रतिमा-लक्षण का विस्तृत वर्णन हुआ है। प्रतिमा निर्माण करानें से अनेक पुण्यों की प्राप्ति होती है, किन्तु ठीक प्रतिमा न बनानें के कारण शिल्पकार को अनेक दुःखों का भी भागी होना पड़ता है। मत्स्य पुराण में इस तथ्य का समर्थन किया गया है।[14]

प्रतिमायें बहुमूल्य पत्थर, हीरा, जवाहरात, स्वर्ण, रजत, ताम्र, पीतल, पाषाण, काष्ठ एवं मिट्टी आदि अनेक पदार्थो से निर्मित की जाती थी।[15] श्रीमद्भागवत पुराण में आठ प्रकार की मूर्तियाँ शास्त्रोचित्त मानीं गयी हैं।[16] पद्मपुराण के एक स्थान पर पाषाण एवं धातुमयी दो प्रकार की मूर्तियों का उल्लेख किया गया है, जिसमें धातुमयी मूर्तियों के अन्तर्गत स्वर्ण, रजत, ताम्र और पीतल की गणना की गई है।[17] राव महोदय ने लकड़ी, पत्थर, मिट्टी, बहुमूल्य मणि तथा दो या दो से अधिक मिश्रित धातुओं को प्रतिमा के द्रव्य के रूप में स्वीकार किया है।[18]

---

13 पद्मपुराण, 6/82/21-24

14 मत्स्यपुराण, 259/15-22

15 पद्मपुराण, 6/76/5-42

16 शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती। मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता।। श्रीमद्भागवत पुराण 11/27/12

17 पद्मपुराण, 6/82/15-24

18 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ-53

भारत में मूर्तिकला के उदाहरण सैंधव सभ्यता के काल से प्राप्त होते हैं। लगभग 2500 ई0 पू0 में विकसित सैंधव सभ्यता के आद्यैतिहासिक स्थानों की खुदाई से प्रस्तर, धातु तथा मिट्टी की बहुसंख्यक मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। मोहनजोदड़ो से बारह प्रस्तर मूर्तियाँ मिली हैं, तथा हड़प्पा से दो प्रस्तर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। हड़प्पा की प्रस्तर मूर्तियों में एक मूर्ति, लाल बलुआ पत्थर से बनी हुई है। इसका मात्र धड़ प्राप्त हुआ है, हाथ पैर खण्डित हैं। मूर्ति के पीन स्कन्धों तथा संतुलित नितम्बों की रेखाओं से मूर्तिकला की विकसित अवस्था का ज्ञान प्राप्त होता है।[19] हड़प्पा की दूसरी मूर्ति, काले रंग के सलेटी पत्थर से निर्मित है, जिसमें नर्तक (अथवा नर्तकी) अपनें दाहिनें पैर पर खड़ा है।[20] मोहनजोदड़ो की प्रस्तर मूर्तियों में सिलखड़ी की बनी हुई खण्डित पुरुष मूर्ति है, जो तिपतिया अलंकरण से युक्त शाल ओढ़े है। इसकी दाढ़ी विशेष सँवारी हुई है। दाढ़ी के बाल पत्थर में लकीर काटकर बनाये गए हैं तथा मूंछें साफ है।[21] मोहनजोदड़ों की धातु मूर्तियों में नर्तकी की कांस्य मूर्ति विश्व-विख्यात है। सहज भाव से नृत्य करती हुई युवती मूर्ति का कंधे से कलाई तक चूड़ियों से भरा हुआ बाँया हाथ, आगे को झुके बायें घुटनें पर टिका हुआ है। बाजूबन्द और कलाई में दो चूड़ियों से युक्त दाहिना हाथ कटि पर अवलम्बित है।[22] सैंधव मृण्मूर्तियों में मातृदेवी की मूर्तियों का प्रमुख स्थान है। मनुष्य (स्त्री एवं पुरूष) तथा पशुओं (बैल, भैंसा, भेड़ा, हाथी, गैंडा, भालू, सुअर, खरगोश इत्यादि) की मृण्मूर्तियां भी प्राप्त हुई हैं।[23]

भारतीय कला का सुदृढ़ और सम्पन्न इतिहास मौर्य युग से प्रारम्भ होता है।[24] चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक के तत्त्वावधान में इसी समय काष्ठ शिल्प की जगह पाषाण शिल्प नें ली।[25] कला के क्षेत्र में देश के अनेक केन्द्रों में पाषाण

---

19 पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–13

20 पाण्डेय, जय नारायण; वही, पृष्ठ–13

21 पाण्डेय, जय नारायण; वही, पृष्ठ–12

22 पाण्डेय, जय नारायण; वही, पृष्ठ– 13-14

23 पाण्डेय, जय नारायण; वही, पृष्ठ–14-16

24 पाण्डेय, सुशील कुमार; प्राचीन मृण्मयी मूर्तिकला, वाराणसी, 1997, पृष्ठ–13

25 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ–125

घटित शिल्प और स्थापत्य का व्यापक प्रचार हुआ। शुंगकाल में स्तूप, तोरणवेदिका और मूर्तियों की रचना के लिए पत्थर का प्रयोग सामान्य बात हो गई। भरहुत, साँची तथा अमरावती जैसे महाचेतिय या बड़ें स्तूप इसी समय बने। जनसाधारण में यक्ष, नाग आदि लोक देवताओं के लिए जो धार्मिक मान्यता और बौद्ध धर्म के प्रति जो आस्था थी उसका अंकन एक साथ पत्थर पर किया जाने लगा और उसमें कलात्मक सौन्दर्य और विशिष्ट नई शोभा की सृष्टि की गई।[26] शुंगकाल में यक्ष–यक्षी मूर्तियों का प्राधान्य था, क्योंकि उस समय तक न तो ब्राह्मण देवताओं की मूर्तियों की परिकल्पना की गई थी और न ही बुद्ध और तीर्थकर मूर्तियों की। अतः प्राचीन परम्परा के अनुसार यक्ष मूर्तियां ही पूजा में थी।[27] कुषाणकाल में इन्हीं की अनुकृति बोधिसत्व–बुद्ध और विष्णु मूर्तियों में पायी जाती है।[28]

भारतीय धर्म एवं कला में कुषाण युग महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उसी समय बौद्ध मत की नई शाखा 'महायान' की उत्पत्ति हुई।[29] प्रारम्भ में बौद्ध धर्म पूर्णतया आचारमार्गी तथा सिद्धान्तपरक था। बुद्ध को महापुरुष के रूप में स्वीकार किया गया था। कला में उनका अंकन प्रतीकों यथा– पादुका, बोधिवृक्ष, धर्मचक्र स्तूप आदि के द्वारा किया गया। भरहुत तथा साँची के बौद्ध शिल्पों में इनका प्रदर्शन इन्हीं प्रतीकों के रूप में मिलता है।[30] सांची के तोरणों पर बुद्ध के जीवन की पाँच घटनाओं– जाति (जन्म), महाभिनिष्क्रमण, सम्बोधि, धर्मचक्रप्रवर्तन तथा निर्वाण का अंकन प्रतीकों के माध्यम से किया गया है।[31] बुद्ध जन्म का अंकन कमल या पूर्ण घट से जन्म लेते हुए पद्मों के रूप में किया गया है। कुछ दृश्यों में माया देवी पूर्ण विकसित कमल के ऊपर दिखाई गई हैं। कुछ में आसन्न–प्रसवा खड़ी हुई माया

---

26 वही, पृष्ठ 131

27 वही, पृष्ठ 127

28 वही, पृष्ठ 127

29 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ–188

30 पाण्डेय, आर0 एन0; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–698

31 पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–66

देवी का अंकन है।[32] महाभिनिष्क्रमण का अंकन जीन कसे हुए खाली घोड़े के रूप में किया गया जिसके ऊपर छत्र का अंकन है। सम्बोधि का चित्रण पीपल के वृक्ष के नीचे आसन अथवा कभी-कभी केवल पीपल के पेड़ के द्वारा किया गया है।[33] सम्बोधि के कुछ दृश्यों में उपासक पूजा के उपहार चढ़ा रहें हैं; अथवा कुछ विशेष दृश्यों में मारधर्षण का भी अंकन है।[34] धर्मचक्रप्रवर्तन का प्रतीक चक्र के रूप में अंकित मिलता है। चक्र को यदा-कदा आसन पर और कभी-कभी स्तम्भ के ऊपर बनाया गया है। महापरिनिर्वाण का प्रमुख प्रतीक स्तूप है जिसका अंकन अनेक रूपों में मिलता है। प्रायः उपासकों को स्तूप की पूजा करते हुए अंकित किया गया है।[35]

प्रथम शती ईसवी पूर्व में भागवत धर्म का भक्ति आन्दोलन मथुरा में वेग से था, जिसमें भगवान वासुदेव (विष्णु) और संकर्षण (बलराम) की पूजा मुख्य थी। इसकी सूचना प्रथम शती ई0 पू0 के महाक्षत्रप शोडास के कई लेखों से होती है। मोरा गाँव के कुएँ से प्राप्त शोडास के लेख में पञ्चवृष्णि वीरों (वृष्णीनां पञ्चवीराणाम्) का उल्लेख आया है। वायुपुराण के अनुसार पञ्चवृष्णि वीरों के नाम ये हैं- बलराम, कृष्ण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध और साम्ब।[36] विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, सप्तमातृकाएं, कार्तिकेय आदि की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ मथुरा से मिलती है।[37] इसका प्रभाव बौद्ध धर्म पर भी पड़ा। यद्यपि समाज में बुद्ध के प्रतीकों का समादर होता रहा और प्राणी मात्र उनकी पूजा (आदर) करते रहे किन्तु भक्ति भावना के कारण बौद्ध मत में बुद्ध आराध्य देव मान लिये गए तथा उनकी प्रतिमायें पूजा के निमित्त तैयार होनें लगी। महायान कला में बुद्ध एवं बोधिसत्त्व की प्रस्तर आकृतियाँ

---

32 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-164

33 पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद, 1989 पृष्ठ-66

34 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-164

35 पाण्डेय, जय नारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्त्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ-66

36 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-243, जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ-189, एन्शियन्ट इण्डिया; 24, सं0 27

37 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-223

तथा मूर्तियाँ पाई जाती है।[38] मथुरा से प्राप्त बहुसंख्यक बुद्ध की मूर्तियों में एक भी कनिष्क से पूर्वकाल की नहीं है।[39] मूर्ति के लिये जैसा आग्रह मथुरा में था वैसा ही मथुरा से बाहर सारनाथ[40] और कौशाम्बी[41]में भी था। मूर्ति निर्माण को प्रबल बनानें के लिये यह सोचा गया कि बुद्ध की जो मूर्तियाँ बनायी जाए उन्हें बोधिसत्त्व की मूर्ति कहा जाए बुद्ध की नहीं, जैसा कि सारनाथ और कौशाम्बी[42] की कुछ मूर्तियों पर लिखा है।

कुषाणकालीन मथुरा की बुद्ध कला का गुप्त कलाकारों ने पूर्णतः अनुकरण नहीं किया। उनका वास्तविक स्रोत साहित्यिक चेतना रही। कलात्मक दृष्टि से, कुषाणकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में जहाँ स्थूलता तथा भारीपन दिखाई देता है, वहीं गुप्तयुग की बुद्ध मूर्तियों में कोमलता, मधुरता, अन्तःकरण की शक्ति, चिन्तन एवं मनन की अभिव्यक्ति की गई है। भारतीय कला के अन्तर्गत ईसवी सन् की चौथी शती से लेकर मध्ययुग तक ऐसी बुद्ध प्रतिमायें तैयार की गई जिसे सारनाथ परम्परा का नाम दिया गया है।[43]

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति के पुनरूत्थान का भी काल माना जाता है। गुप्त नरेश परम वैष्णव तथा आर्दशवादी थे।[44] गुप्तकला में पौराणिक देवी-देवताओं को प्रमुख स्थान मिला। पंचायतन पूजा में विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति तथा गणेश इन पाँच देवों की प्रतिमायें मुख्य रूप से बनाई गई। इसके अतिरिक्त विष्णु की विभिन्न अवतार-प्रतिमायें एवं शिव की मुख-लिङ्ग मूर्तियाँ तैयार

---

38 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-64 एवं 188

39 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 244

40 अग्रवाल, वासुदेव शरण; वही, पृष्ठ- 245, चित्र 374, स्थानक बोधिसत्व (सारनाथ)

41 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ-61, क्र0 सं0 85, प्लेट XXXVII

42 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ-61, क्र0 सं0 85, प्लेट XXXVII

43 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ-68

44 उपाध्याय, वासुदेव; वही, पृष्ठ-65

की गई, जो कलात्मकता की दृष्टि से विशिष्ट मानी गयी हैं।[45] इस प्रकार मूर्तिशास्त्र के अध्ययन में गुप्तकाल, ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन तीनों धर्मों की कलाकृतियों के तुलनात्मक विभाजन एवं उनके अंग-प्रत्यंगों के वैज्ञानिक विश्लेषण के लिए एक सशक्त सीढ़ी है।[46] यहाँ यह कहना युक्तिसंगत होगा कि यदि समस्त कलात्मक नमूनों का परीक्षण किया जाए तो ज्ञात होता है कि मिट्टी; काष्ठ; प्रस्तर तथा धातु का प्रयोग प्रतिमा निर्माण के लिए कलाकारों ने समयानुसार किया था। इन वस्तुओं के प्रयोग की कोई निश्चित तिथि निर्धारित नहीं की जा सकती, परन्तु यह कहना युक्तिसंगत होगा कि मिट्टी का प्रयोग लोक कलाकार सदैव करते रहे हैं। लोक कला की प्रारम्भिक अवस्था में मातृदेवी, यक्ष तथा नाग की आकृतियाँ तैयार की गई।[47] मिट्टी की मूर्तियां यद्यपि एन0 बी0 पी0 के पहले की चित्रित धूसर संस्कृति के काल से मिलने लगती है लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है।[48] एन0 बी0 पी0 संस्कृति के काल में मृण्मूर्तियों के निर्माण के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी।[49] पुरातात्विक साक्ष्यों की दृष्टि से छठ्वीं शताब्दी ई0 पू0 उत्तरी काली चमकीली पात्र-परम्परा का एन0 बी0 पी0 का काल था। एन0 बी0 पी0 का समय सामान्यतः 600 ईसवी पूर्व से द्वितीय- प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व के बीच में माना जाता है। हाथी, घोड़े, बृषभ, कुत्ते, भेड़ा तथा हिरण आदि पशुओं और कच्छप तथा सर्प आदि सरीसृपों एवं चिड़ियों की हस्त-निर्मित मूर्तियाँ मिलती हैं। पशुओं की मृण्मूर्तियों को छोटे-छोटे गोलों के ठप्पे लगाकर, गहरे रेखांकन तथा किसी चीज से दबाकर बनायी गयी पत्तियों के द्वारा सजाया-सँवारा गया है। हस्तनिर्मित मानव-मृण्मूर्तियों में हाथों एवं पाँवों का निर्माण स्टम्प या डण्डे के रूप में किया

---

45 उपाध्याय, वासुदेव; वही, पृष्ठ-70

46 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन दिल्ली, 1992, पृष्ठ 114

47 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृष्ठ 26

48 गौड़, आर0 सी0; एक्सकेवेशनस ऐंट अतरंजीखेड़ा, दिल्ली, 1983, पृष्ठ-118

49 पाण्डेय, जय नारायण; पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ-415

गया है। स्त्री-मृण्मूर्तियों को भव्य शिरोवेषभूषा, कर्णाभरण एवं हारावती से अलंकृत किया गया है।[50]

तीसरी-दूसरी शती ई0 पू0 के लगभग इकहरे साँचे काम में आने लगे। साँचों को 'संचक' या 'मातृका' भी कहते हैं क्योंकि साँचों से ही बहुत से ढार या नमूनें तैयार किये जाते थे।[51] साँचा चिपटा तथा छिछला होता था जिसमें स्त्री या पुरुष की बनावट खुदी रहती थी। वस्त्र, आभूषण, सिरे का भाग प्रस्तर की खुदाई की तरह साँचे में तैयार किये जाते थे। शरीर पर भारी आभूषण तथा सिर पर लम्बी पुष्पित बनावट दिखलाई पड़ती है। पैर के कड़े तथा कमर की करधनी विशेषतया उल्लेखनीय हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि शुंगकाल से साँचे का पूर्ण प्रयोग मिट्टी की मूर्तियों को बनाने के लिए होनें लगा जिसमें मूर्ति का अर्द्धभाग उभर आता जो भ्रांतिवश पूरा मालूम पड़ता था। कुषाणकाल में प्राय. सिर साँचे में ढाला जाता और सिर से नीचे का धड़ हाथ से तैयार किया जाता था। गुप्तयुग से इस बनावट में परिवर्तन आ गया। इस काल में सिर के दो भाग किए जातेः-अगला तथा पिछला। दोनों अलग-अलग साँचे में ढाले जाते और मिलाकर एक सुन्दर सिर तैयार हो जाता।[52] गुप्तकालीन ईटों से निर्मित भीतरगाँव मन्दिर की सम्पूर्ण बाह्य दीवारों पर मृण्मूर्तियां प्रदर्शित है।[53] उनमें गंगा-यमुना[54], अनन्तशायी विष्णु,[55] शिव पार्वती,[56] और गणेश के फलक विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार यहाँ यह कहा जा सकता है कि शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक प्रस्तर एवं मृण्मूर्तियों तथा फलकों का विशाल भण्डार प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त हुआ है। जिन पर अंकित

---

50 पाण्डेय, जय नारायण; पुरातत्व विमर्श, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ-416

51 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-323

52 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृष्ठ-183

53 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ- 86

54 आर्किलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908-1909, पृष्ठ-9

55 मार्ग, अंक 22, सं0 2, पृष्ठ-13, चित्र 4

56 वही, पृष्ठ 13, चित्र-5

दृश्यों से तत्कालीन संस्कृति तथा समाज के विषय में भी समुचित जानकारी मिलती हैं।[57]

विभिन्न सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की प्रतिमाएं, उनकी विशेषताओं इत्यादि का विस्तृत अध्ययन करनें के लिए इनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया है।

1. बौद्ध प्रतिमायें।
2. जैंन प्रतिमायें।
3. ब्राह्मण प्रतिमायें।
4. अन्य प्रतिमायें – जिसमें सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, लक्ष्मी तथा यक्ष आदि की स्वतन्त्र प्रतिमाओं का उल्लेख किया गया है।

5– मृण्मूर्तियाँ – मृण्मूर्तियों में देवी–देवताओं की मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त मनुष्य तथा पशुओं की मृण्मूर्तियाँ तथा मृण्शिर आते हैं।

1. बौद्ध प्रतिमायें

छठी शताब्दी ई0 पू0 में वैदिक कालीन धर्म में हिंसा तथा अन्धविश्वासों, कर्मकाण्डों की प्रतिक्रियास्वरूप अहिंसा के समर्थक बौद्ध धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप में पूजा एवं प्रतिमा पूजा का कोई स्थान नहीं था, कालान्तर में बुद्ध के महानिर्वाण के उपरान्त बौद्ध धर्म के सुदीर्घकालीन इतिहास में तीन प्रधान प्रवृत्तियां प्रस्फुटित हुईः–

(I) हीनयान;

(II) महायान;

---

57 शोध प्रबन्ध के उत्खनित पुरास्थलों में कौशाम्बी, श्रृंग्वेरपुर, भीटा, झूँसी, गढ़वा, भीतरगाँव आदि स्थलों से विभिन्न सम्प्रदाय के देवी–देवताओं की मृण्मूर्तियों का विशाल भण्डार प्राप्त हुआ है जिसका विस्तृत विवरण आगे 'मृण्मूर्तियां' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

(III) वज्रयान।[58]

(I) हीनयानः– बुद्ध के मूल उपदेशों पर अवलम्बित रहनें वाला मार्ग हीनयान कहलाया। ई0 पू0 पहली शती तक हीनयान की प्रधानता भारत में रही और इससे सम्बन्धित कला (ईसवी पूर्व) में बुद्ध के जीवन-घटनाओं को प्रतीक रूप में प्रदर्शित किया गया।[59] भरहुत, बोधगया, साँची में बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं मिली है।[60] बुद्ध का प्रदर्शन प्रतीकों यथा- गज, अश्व, बोधिवृक्ष, धर्मचक्र तथा स्तूप इत्यादि के द्वारा किया गया है जो क्रमशः जन्म, गृहत्याग, ज्ञान, प्रथम प्रवचन (धम्म चकक पवतन) [illegible] [illegible] एवं निर्वाण के सूचक हैं।[61] **हीनयान से सम्बन्धित कौशाम्बी के घोषिताराम से प्राप्त शुंगकालीन प्रस्तर फलक पर भी बुद्ध के जन्म से सम्बन्धित घटना का प्रदर्शन प्रतीक रूप में किया गया है।** इस फलक में विषय-वस्तु एवं शैली दोनों ही दृष्टियों से नवीन आदर्शों की समायोजना दिखायी पड़ती है।[62] फलक में माया देवी को शालवृक्ष के तने का सहारा लिये हुए खड़ी मुद्रा में दर्शाया गया है। बायें कर से वृक्ष की शाखा को पकड़े हुए हैं। दायीं भुजा कट्यावलम्बित है। इनका वाम पाद किंचित् मुड़ा हुआ है। माया देवी के सामने तीन पुरुष आकृतियाँ हैं जिनमें सबसे आगे वाली सम्भवतः इन्द्र की है। जिनकी भुजायें नवजात शिशु को ग्रहण करनें के लिए उद्धत है जो कि वस्त्र में लिपटे हुए शिशु को लिये हुए है। माया देवी के मध्य चंवर एवं छत्र, उनके (बुद्ध के) चक्रवर्तित्व का द्योतन करते हैं। ऊपर के भाग में अप्सराओं के गायन वादन का सुन्दर अंकन इसमें मिलता है। इस फलक पर अंकित आकृतियों में रेखाओं के प्रवाह द्वारा गतिमयता एवं सजीवता का

---

58 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ; भारतीय वास्तुशास्त्र प्रतिमा विज्ञान, 1956, पृष्ठ–132

59 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृष्ठ–187

60 अग्रवाल, वासदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ– 244

61 पाण्डेय, आर0 एन0; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ–698

62 शर्मा, जी0 आर0; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ–29 बायां चित्र, जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या ई। 27

बोध कराया गया है। कौशाम्बी से प्राप्त शुंगकालीन स्तम्भ पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित दृश्य का अंकन प्रतीक रूप में किया गया है।[63] इसमें मायादेवी कमल पुष्प के ऊपर खड़ी है तथा दो हाथी उनका अभिषेक कर रहे हैं।

(II) महायानः—कुषाण नरेश कनिष्क प्रथम के समय में बौद्ध मत की नई शाखा महायान की उत्पत्ति हुई और अगले छ सौ वर्षो तक (छठी शती तक) महायान का भारत में प्रचुर प्रचार रहा।[64] भक्ति भावना के कारण बुद्ध आराध्य देव मान लिए गए तथा उनकी प्रतिमाएँ पूजा हेतु निर्मित की गई। बुद्ध के साथ ही उनके काल्पनिक प्रारम्भिक स्वरूप बोधिसत्त्व का भी मूर्तन हुआ। बोधिसत्त्व को मुख्यतः पद्मपाणि, अवलोकितेश्वर, मैत्रेय, लोकेश्वर, मंजुश्री आदि रूपों में दिखाया गया।[65] बोधिसत्त्व प्रतिमाओ को हाथ में स्थित प्रतीक के द्वारा पहचाना जाता है। अवलोकितेश्वर या पद्मपाणि बोधिसत्त्व के हाथ में कमल पुष्प रहता है। मंजुश्री के बाएं हाथ में पुस्तक तथा दाहिनें में तलवार प्रदर्शित मिलती है। पुस्तक से ज्ञान प्रसार तथा तलवार से अंधकार के विनाश की अभिव्यक्ति होती है। मैत्रेय को बौद्ध साहित्य में भावी बुद्ध (भविष्य में अवतरित होनें वाले) के रूप में वर्णित किया गया है। उनके हाथ में अमृत पात्र विभूषित है।[66] ये बोधिसत्त्व समस्त प्राणिमात्र के कल्याण हेतु आतुर हैं। अतः प्रथम सदी के प्रारम्भ से महायान कला में बुद्ध एवं बोधिसत्त्व के स्वरूप को प्रस्तर शिल्प में मूर्तिमान किया जानें लगा।[67]

---

63 जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या ई। 8, स्तम्भ पर कमल पुष्प युक्त वल्लरी के ऊपर स्थानक मायादेवी का अंकन है। स्तम्भ से पृष्ठ भाग में एक प्राकार में स्तूप है। इसके ऊपर बोधिवृक्ष है, जिसमें चतुर्दिक वेदिका बनी है, प्रकार के अन्दर बोधिवृक्ष के पार्श्व में अवान्मुख पद्म शीर्षयुक्त स्तम्भ है। जिस पर सिंह आसीन है।

64 उपाध्याय, वासुदेव प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-188

65 बाजपेयी, सतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 146

66 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-55 तथा 199-203

67 उपाध्याय, वासुदेव; वही, पृष्ठ-188

(III) वज्रयान :– ईसा की छठी शताब्दी से बौद्ध धर्म में मन्त्रों तथा तांत्रिक क्रियाओं द्वारा मोक्ष प्राप्त करने का विधान प्रस्तुत किया गया जिससे वज्रयान नामक नए सम्प्रदाय का उदय हुआ।[68] वज्रयान (काल चक्रयान) में आदि बुद्ध की कल्पना की गई। इसी आदि बुद्ध से पंचध्यानी बुद्ध उत्पन्न हुए, जिनसे ही वज्रयान के सारे देवी–देवता उद्भूत हुए।[69] ये पाँच ध्यानी बुद्ध वैरोचन, रत्नसम्भव, अमिताभ, अमोघसिद्धि तथा अक्षोभ्य है। बाद में वज्रसत्त्व को भी इस सूची में जोड़ दिया गया।[70] ध्यानी बुद्ध के साथ उनकी शक्ति तारा की कल्पना की गई। इनकी युगल मूर्ति को 'यव यम' की संज्ञा दी गई।[71] सभी ध्यानी बुद्ध के दैवी पुत्र बोधिसत्त्व के नाम से जाने गए तथा इन्हें भी कला में स्थान मिला।[72] मध्ययुगीन कला में प्राय. छः सौ वर्षो तक (700 ई0–1300ई0) इन देवताओं की प्रतिमाएँ बनती रहीं।[73] सभी पंचध्यानी बुद्धों की प्रतिमाएँ उनकी मुद्राओं, वाहनों तथा वर्ण के द्वारा पहचानी जाती हैं।[74]

कला में, बुद्ध की प्रारम्भिक मूर्तियाँ मथुरा कला के अन्तर्गत प्राप्त होती हैं, किन्तु इन्हें बुद्ध की मूर्ति नही, अपितु बोधिसत्त्व की मूर्ति कहा गया है। मथुरा कला

---

68 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988 पृष्ठ 204

69 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ 313

70 भट्टाचार्या, बी0, दि इंडियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1968, पृ0–47

71 उपाध्याय, वासुदेव,प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृ0–189

72 उपाध्याय, वासुदेव; वही, पृ0–196

73 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृ0–190

74 श्रीवास्तव, ब्रजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा–विज्ञान एवं मूर्ति कला, वाराणसी, 1990, पृ0– 197, सिन्हा, ऊषा, बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी इन उत्तर प्रदेश (ई0 300 से 1200), वाराणसी, 1995, पृ0–14

ध्यानी बुद्ध	वर्ण	मुद्रा	वाहन	चिन्ह
अमिताभ	रक्त	समाधि	मयूर	कमल
अक्षोभ्य	नील	भूस्पर्श	गजयुगल	वज्र
वैरोचन	श्वेत	धर्मचक्र	नागयुगल	चक्र
अमोघसिद्धि	हरित	अभय	गरुड़युगल	विश्ववज्र तथा सप्तफण युक्त नागराज
रत्नसंभव	पीत	वरद	सिंहयुगल	रत्न
वज्रसत्त्व	......	ध्यान	....	वज्र और घण्टा

में निर्मित सारनाथ की बोधिसत्त्व मूर्ति[75] कौशाम्बी की बोधिसत्त्व मूर्ति[76] तथा कटरा या अन्योर से प्राप्त बोधिसत्त्व की पद्मासन में बैठी हुई मूर्ति[77] को विद्वानों नें आरम्भिक मूर्तियों का उदाहरण माना है। ये मूर्तियाँ सुविदित लक्षणों के अनुसार बुद्ध की हैं, परन्तु उसकी चौकी पर उसे बोधिसत्त्व कहा गया है। मूर्ति का निर्माण करते समय भिक्षु और शिल्पी दोनों के समक्ष यह प्रश्न आया होगा कि बोधिसत्त्व के कौन से स्वरूप की अनुकृति मूर्ति में की जाए अर्थात् वस्त्र, अलंकार सहित या अलंकार रहित। यह सुविदित है कि बुद्ध नें 29 वर्ष की आयु में सन्यास लेकर वस्त्रालंकार का त्याग कर दिया तथा त्रिचीवर (संघाटी, अंतरवासक एवम् उत्तरासंग) पहन लिया था।[78] अतः यही आदर्श बुद्ध मूर्तियों के लिये माना गया जिसमें वह राजकीय वस्त्र और अलंकारों का त्याग कर चुके थे।[79] तब यह निश्चय किया गया कि सालंकार मूर्तियों को बोधिसत्त्व और निरंलकृत मूर्तियों को बुद्ध की प्रतिमायें माना जाए।[80]

कला के अन्तर्गत बुद्ध एवं बोधिसत्त्व की मूर्तियाँ दो प्रकार की हैः-

(I) आसन (बैठी) मूर्ति;

(II) स्थानक (खडी) मूर्ति।

बैठी हुई प्रतिमायें कला की दृष्टि से योगी एवं मुनियों की मुद्रा में बनायी गयीं। खड़ी हुई मूर्तियों में यक्ष मूर्तियों का अनुकरण मिलता है।[81] महापुरुष के रूप में बुद्ध के शरीर पर बत्तीस लक्षण मानें गए, यथा-उष्णीष, भ्रूमध्य में ऊर्णा,

---

75 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-245, चित्र 374

76 चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूज़ियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 61, क0 सं0 85, प्लेट XXXVII

77 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 248-249 चित्र 379 एवं चित्र 380

78 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 249

79 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 249

80 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 249

81 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, 1987, पृष्ठ 247, सरस्वती, एस0के0; ए सर्वे आर्वे इण्डियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1975, पृष्ठ 65-66

प्रलम्बकर्णपाश, आजानुबाहु, जालाङ्गुलिकर इत्यादि। योगी के आदर्श स्वरूप से नासाग्र-दृष्टि, ध्यानमुद्रा, पद्मासन आदि लक्षण लिये गए। चक्रवर्ती के आदर्श से भीकुद्द लक्षण अपनाये गए, दो चामरग्राही पार्श्वचर तथा छत्र। प्रारम्भ से ही मस्तक के पीछे स्थित प्रभावमण्डल बुद्ध मूर्ति का लक्षण माना गया। यह लक्षण ईरान के धार्मिक देवताओं से अपनाया गया प्रतीत होता है। कनिष्क के सिक्कों पर ईरानी तथा भारतीय देवताओं का अंकन करनें वालों के सम्पर्क में आये भारतीय कलाकारों ने इस लक्षण को अपनी कला में अपना लिया।[82] बुद्ध प्रतिमाओं का निर्माण विभिन्न मुद्राओं में किया गया यथाः-अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, भूमिस्पर्शमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा तथा ध्यानमुद्राओं में प्रतिमायें बनायी गई। इनमें अभयमुद्रा तथा वरदमुद्रा अधिकांशतः खड़ी मूर्तियों में प्रदर्शित मिलती हैं, जबकि भूमिस्पर्शमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा तथा ध्यानमुद्रा बैठी हुई मूर्तियों में बनायी गई।[83]

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में कौशाम्बी बुद्ध के काल से ही एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बौद्ध केन्द्र था। कौशाम्बी और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में बौद्ध धर्म की लोकप्रियता लगभग पाँचवी शती ईसवी तक रही, इसके अभिलेखीय तथा प्रतिमापरक साक्ष्य अधिसंख्यतः प्राप्त हुए हैं।[84] कौशाम्बी स्थित घोषिताराम बौद्ध विहार के उत्खनन से बुद्ध एवं बोधिसत्त्वों की प्रतिमायें प्रभूत संख्या में प्राप्त हुई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँचवीं शती के पश्चात सम्पूर्ण प्रयाग परिक्षेत्र में बौद्ध धर्म की अवनति होनें लगी थीं। इस अनुमान की पुष्टि चीनी यात्री फाह्यान तथा ह्वेनसांग (ख्वान्-च्वांग) के विवरणों[85] से होती है। गुप्तकाल में फाह्यान कौशाम्बी आया था। उसनें यहाँ स्थित घोषिताराम बौद्ध विहार का उल्लेख किया है। यह उस

---

82 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, पृष्ठ 247-248

83 मुद्राओं का विस्तृत वर्णन छठें अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

84 कौशाम्बी तथा उसके आसपास स्थित पुरास्थलों यथा-भीटा, मानकुँवार आदि स्थलों से अनेक बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं जो विभिन्न संग्रहालयों यथा-जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद संग्रहालय, राज्य संग्रहालय लखनऊ इत्यादि में संग्रहीत है।

85 लेग्गे, ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान; आर्क्सफोर्ड, 1886, पृष्ठ 72, वाटर्स, ऑन ख्वान् च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (A.D 629-645), लंदन,1905, 1, पृष्ठ 368

समय अच्छी दशा में था,[86] परन्तु ह्वेनसागं का विवरण इससे भिन्न है। उनके विवरण के अनुसार, नगर के अधिकांश विहार ध्वस्त हो चुके थे तथा यहाँ रहनें वाले भिक्षुओं की संख्या पहले की अपेक्षा बहत कम हो गई थी।[87] ह्वेनसांग के आगमन का समय सातवीं शताब्दी ईसवी माना जाता है। उसके समय में कौशाम्बी हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित थी।[88] अतएव यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि गुप्तों के पश्चात् कौशाम्बी में बौद्ध धर्म का ह्रास होना प्रारम्भ हो गया था।

कौशाम्बी से कुषाणकालीन मथुरा शैली में निर्मित अनेक बौद्ध प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। इनमें **अभिलेखयुक्त बोधिसत्त्व प्रतिमा,** जो मथुरा के लाल चित्तीदार प्रस्तर से निर्मित है तथा कनिष्क के राज्यकाल के दूसरे वर्ष में भिक्षुणी बुद्धमित्रा के द्वारा स्थापित की गई है, (कदाचित 80 ई0), उल्लेखनीय है।[89] मूर्ति का शिरोभाग तथा दायीं भुजा खण्डित है। अन्य विशेषताओं में :- पारदर्शक अन्तरवासक, जो कि घुटनें तक है, संघाटी से बायाँ कन्धा और भुजा ढकी हुई है, कमर पर एक फीता सदृश वस्त्र का कटिबन्ध बंधा है जिसके ढीले किनारे जाँघ पर स्थित हैं। बायें हाथ से उत्तरीय के छोर को पकड़े हुए है। पैरों के मध्य कमल कलियों का गुच्छा प्रदर्शित किया गया है। बाँये पार्श्व में लटकते उत्तरीय छोर के नीचे एक अंजलि मुद्रा में वामनाकृति है। इस प्रकार की आकृति किसी भी अन्य मूर्तियों में नहीं मिलती। मूर्ति के वर्गाकार आधार पर अभिलेख अंकित है।[90] यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है।

---

86 लेग्गे, ट्रेवेल्स ऑफ फाह्यान, आर्क्सफोर्ड, 1886, पृष्ठ 72

87 वाटर्स, य्वान च्वांग ट्रेवल्स इन इण्डिया (A D 629-645) लंदन, 1905, 1, पृष्ठ-368.

88 राय, उदय नारायण, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, इलाहाबाद,1998, पृष्ठ-106

89 चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 61, क्रम संख्या 85, प्लेट XXXVII, इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 69 चित्रफलक क्रम संख्या 8 (A)

90 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 62, क्रम संख्या 85, प्लेट XXXVII, इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 69 चित्रफलक क्रम संख्या 8 (A)
प्रथम पंक्ति- [म] ह [आ] राजस्य कनिकष्य सम्व (त्स) रे 2 दिवस 8 बोधिसत्त्व (त्वम्) प्र [ति]
द्वितीय पंक्ति-[ष्ठात] पयति भिक्खुनी बुद्धमित्रा त्रिपिट [इ] का भगवतो बुद्धस्य च [म] कम

कौशाम्बी से भिक्षुणी बुद्धमित्रा द्वारा स्थापित दो अन्य बुद्ध मूर्तियों की अभिलेखांकित पाद पीठिकायें प्राप्त हुई है।[91] ये मथुरा के लाल प्रस्तर से निर्मित हैं। सम्भवत इन सभी मूर्तियों का निर्माण मथुरा में हुआ था और मथुरा से ही इनको लाकर कौशाम्बी में स्थापित किया गया था। कौशाम्बी में मथुरा से आयातित अन्य बहुसंख्यक मूर्तियों के भग्नावशेष मिलें हैं, जो कुषाण युग में मथुरा के साथ उसके घनिष्ठ व्यापारिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों के सूचक हैं।

कौशाम्बी की शिल्प कृतियों में तीन अन्य बुद्ध मूर्तियां उल्लेखनीय है[92] इन मूर्तियों की विशिष्टता है कि आसनस्थ बुद्ध के वस्त्रों में उभरी हुई धारियाँ प्रदर्शित हैं। दोनों स्कन्ध ढके हुए हैं और उत्तरीय का ऊपरी सिरा वक्ष पर माला के समान दिखायी दे रहा है। उठे हुए बायें कर से उत्तरीय के छोर को पकड़े हुए है।[93]

बुद्ध की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थानक मूर्ति (51x26 सेमी0) कुषाण एवं गुप्तकाल के संक्रान्ति काल की प्राप्त हुयी है जोकि आयताकार फलक पर अंकित है। बुद्ध का दायाँ हाथ अभय मुद्रा में उठा हुआ है एवं हथेली पर धर्मचक्र

---

91 जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0-एस0 405, तथा आई-57, शर्मा, जी0 आर0, हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ-35, नीचे का चित्र

92 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0 1128 तथा 1120, आर0 सी0 शर्मा0, बुद्धिस्ट आर्ट आफ मथुरा 1984, चित्र 127, 128, इन दोनों के अतिरिक्त एक का आनुभाग शेष है। चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम पृ0 63, 64, प्लेट XLI, चित्र 89, ये गाढ़े गुलाबी रंग के बालुकाश्य से निर्मित है। इसमें किसी अज्ञात संवत् के 83वें वर्ष एवं भद्रमद्य नामक शासक का उल्लेख है।

93 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0 1128 तथा 1120, इन मूर्तियों से प्रमाणित होता है कि द्वितीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक कौशाम्बी के बुद्ध मूर्ति निर्माता की मूल प्रेरणा मथुरा की बुद्ध मूर्तियां थी। कौशाम्बी की प्रस्तुत मूर्तियां मथुरा संग्रहालय सं0 56-4241, 2831, राज्य संग्रहालय लखनऊ की सं0 बी 5 के समान है।

प्रतीक का अंकन है।[94] पारदर्शक संघाटी पहने हुए एवं बायें हाथ से संघाटी के छोर को पकड़े हुए हैं। इस प्रतिमा की संघाटी गुप्त युग की पारदर्शिता से युक्त है किन्तु मुखमण्डल में प्रदर्शित भाव एवं अंग-विन्यास, प्रभामण्डल में अंकित मालाधारी विद्याधर, बोधिवृक्ष एवं बुद्ध के पैरों के दायें-बायें दो उपासक (भक्त) आदि लक्षण कुषाणयुगीन कला के प्रभाव को इंगित करते हैं।

वस्तुत· कौशाम्बी से प्राप्त इस मूर्ति को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों शिल्पी कुषाणयुगीन स्वरूप को न तो पूर्णतया त्याग पा रहा था और न ही शनैः शनैः विकसित होने वाली गुप्तयुगीन विशिष्टताओं को पूर्णरूपेण स्वीकार कर पा रहा था। विद्वानों का मत है कि तृतीय सदी ई0 तक सारनाथ कलाकेन्द्र मथुरा कला की विशेषताओं को संग्रहीत कर कलात्मकता की दृष्टि से उससे बहुत आगे पहुँच गया था। यही तथ्य कौशाम्बी कला केन्द्र के ऊपर भी लागू किया जा सकता है, क्योंकि चौथी शताब्दी से छठी शताब्दी ई0 तक के यहाँ के कलावशेषों पर मथुरा का प्रभाव नगण्य है। ये कलाकृतियाँ सारनाथ की विशेषताओं से अधिक प्रभावित हैं। डा0 स्टेला क्रेमरिश ने पाँचवी शताब्दी में सारनाथ के प्रभाव को मथुरा में भी व्याप्त माना है।[95]

गुप्तकालीन बौद्ध प्रतिमाओं में मानकुँवार (जिला इलाहाबाद) से प्राप्त मथुरा शैली की अभय मुद्रा में बैठी हुई बुद्ध मूर्ति उल्लेखनीय है।[96] बुद्ध पद्मासन मुद्रा में सिंहासन पर बैठे हैं। उनके सिर के केश बिल्कुल सादे दिखाई पड़ते हैं। प्रभामण्डल अनलंकृत है। दोनों ओर बोधिसत्त्व खड़े है। मूर्ति की अन्य विशेषताओं में बलिष्ठ

---

94 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0 88। एस0, दोनों पैरों के नीचे दायें-बायें अंजलिमुद्रा में भक्त (उपासक) बैठे हुये हैं एवं प्रभामण्डल पर मालाधारी विद्याधर-विद्याधरी का जोड़ा है।

95 क्रेमरिश,स्टेला; इण्डियन स्कल्पचर, दिल्ली, 1981, पृष्ठ-63

96 फ्लीट, कार्पस इन्स्क्रप्शनम इन्डीकेरम, वाल्यूम-III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 45-47, कुमारस्वामी, आनन्द के0; हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965, पृष्ठ 74, एवं 84-85, चित्रफलक क्रमसंख्या 8(B)

शरीर, तनी हुई आकृति आदि है, परन्तु नासिका पर टिकी हुई मूर्ति की अर्द्धनिमीलित आँखें, मुख पर आध्यात्मिक कान्ति और होठों पर करुणामयी मुस्कान आदि गुप्तकालीन कलात्मक विशेषताओं के परिचायक हैं। प्रतिमा की आधार पीठ पर अंकित लेख से ज्ञात होता है कि यह प्रतिमा गुप्त शासक कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल में गुप्त संवत् 129 अर्थात् 448 ई0 में भिक्षु बुद्धमित्र के द्वारा स्थापित की गई थी।[97] यह लेख भगवान बुद्ध की पूजा से प्रारम्भ होता है (नमो बुद्धानम्)। इस अभिलेख में सम्पूर्ण दुःख के दूरीकरण के निमित्त प्रार्थना की गई है (सर्वदुख-प्रहानात्थर्म्)।[98] सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है (सं 0.70)।

कौशाम्बी से प्राप्त गुप्तकालीन बौद्ध मूर्तियों में बुद्ध की दो स्थानक मूर्ति[99] एवं एक आसीन बुद्ध मूर्ति उल्लेखनीय है। प्रथम स्थानक बुद्ध प्रतिमा[100], अंग-विन्यास एवं भावबोध दोनों दृष्टियों से गुप्तयुगीन विशेषताओं से युक्त है। मूर्ति के सम्पूर्ण पृष्ठ भाग में प्रभामण्डल बनाया गया है। वस्त्र पारदर्शक बनाए गये हैं। मूर्ति का बायाँ स्कन्ध ही उत्तरीय से ढका हुआ है। इस मूर्ति की विशिष्टता यह है कि यह वरदमुद्रा[101] में है।

बुद्ध की दूसरी स्थानक प्रतिमा लघु फलक पर धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में अंकित है।[102] बुद्ध के दोनों कन्धें पारदर्शक संघाटी से ढके हैं तथा भुजाओं पर गहरी

---

97 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृष्ठ-355

98 राय, उदय नारायण, गुप्त राजवंश तथा उसका युग, इलाहाबाद, 1983, पृष्ठ 267

99 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0।1, इंडियन आर्कियोलाजी; ए रिव्यू, 1956-57, पृ0 29, प्लेट 37 ए, जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, सं0-एच 62 (बुद्ध की आवक्ष तक बनी लघु मूर्ति)।

100 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0 ई।1

101 सीधे हाथ का पंजा नीचे की ओर रखकर भक्त पर प्रसन्नता से वरदान देती मुद्रा को वरद मुद्रा कहते हैं। विस्तृत वर्णन छठें अध्याय के अन्तर्गत हुआ है।

102 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं0 एच0।62

रेखाओं की संख्या द्वारा चुन्नटें प्रदर्शित की गयी हैं। अंग-विन्यास के कोमल भावयुक्त यह प्रतिमा कौशाम्बी की अद्वितीय कृति प्रकट होती है।

कौशाम्बी से प्राप्त आसनस्थ बुद्ध मूर्ति भूमिस्पर्श मुद्रा[103] में प्रदर्शित है। मूर्ति की भुजायें किंचित खण्डित है। बांयी भुजा गोद में रखी है दायीं भूमि का स्पर्श करती हुई प्रदर्शित है। बायाँ कंधा पारदर्शक संघाटी से ढका है। बुद्धासन पर नारी मूर्तियां अंकित हैं जो स्पष्टतः मार की पुत्रियाँ हैं। उल्लेखनीय तथ्य यह है कि बुद्ध की यह मुद्रा (भूमि-स्पर्श मुद्रा) सारनाथ में लोकप्रिय थी,[104] किन्तु सारनाथ तथा मथुरा से एक भी गुप्तकालीन मूर्ति इस मुद्रा में नही मिलती।

पांचवी सदी ई0 की बौद्ध प्रतिमाओं में भीटा से प्राप्त बुद्ध मस्तक[105] भी उल्लेखनीय है। इसके शीर्ष पर उष्णीष का अंकन है जो घुमावदार गुंजलक के रूप में बनाया गया है। सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है।

इन बौद्ध मूर्तियों के विवरण से यह स्पष्ट होता है कि कुषाणकाल की तुलना में गुप्तकाल में निर्मित बुद्ध प्रतिमायें कला के श्रेष्ठ सौन्दर्य से युक्त हैं यथाः-

(1) कुषाणकाल की मथुरा शैली की बुद्ध मूर्तियों में शारीरिक गुरुता या भारीपन है वही गुप्तकालीन प्रतिमाओं में कोमलता मुखमण्डल पर शान्ति और आध्यात्मिक तेज है।

(2) कुषाणकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में संघाटी की तहें गहरी उत्कीर्ण है तथा किनारी सादी बनायी गई है। गुप्तकालीन प्रतिमाओं के वस्त्र पारदर्शी है। संघाटी की परतों को उभारकर दिखाया गया है तथा इसके किनारे झालरदार अलंकृत बनाये गए हैं।

---

103 जी0 आर0 शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, सं0 — 1270, शर्मा, जी0 आर0; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृ0-40, दायाँ चित्र।

104 भिक्षु धर्मरक्षित, सारनाथ का इतिहास, 1961, पृ0 224

105 त्रिपाठी, ऋषिराज, मास्टर पीसेज इन इलाहाबाद म्यूजियम, इलाहाबाद, 1984, पृ0-12; इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 229, चित्रफलक क्रमसंख्या 9

(3) कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों के नेत्र खुले तथा वर्तुलाकार हैं वही गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों के नेत्र लम्बें तथा अर्द्धनिमीलित हैं। कुषाणकालीन बुद्ध प्रतिमाओं के सिर पर केश का अभाव (मुण्डित सिर) है। गुप्तकालीन बुद्ध प्रतिमाओं के सिर पर छोट-2 घुंघराले बालों का गोलार्द्ध बनाया गया दिखायी देता है।

(4) कुषाणकाल की बुद्ध मूर्तियों में भौहों के मध्य ऊर्णा का चिन्ह मिलता है। गुप्तकालीन बुद्ध मूर्तियों में इस चिन्ह का प्रायः अभाव है।

(5) कुषाणकालीन बुद्ध मूर्तियों में प्रभामण्डल सादा, किनारों पर कटाव लिये हुए बनाया गया है जबकि गुप्तकाल में कमल के चित्रण से सज्जित प्रभामण्डल मिलता है जिसमें मणिक्यमाल, पत्रावली आदि का भी मनोरम अलंकरण किया गया है।[106]

कौशाम्बी से गुप्तकालीन कतिपय बोधिसत्त्व प्रतिमायें भी प्राप्त हुई हैं जिसमें से अधिकांश खण्डित दशा में हैं अतः विशिष्ट लक्षणों की अनुपस्थिति के कारण इनकी पहचान करना कठिन है। इन प्रतिमाओं की रचना-शैली सुन्दर एवं परिष्कृत है। शरीर के अवयवों का अनुपात आदर्श रूप में प्रस्तुत किया गया है। बोधिसत्त्व प्रतिमाओं में एक बोधिसत्त्व प्रतिमा[107] का सिर खण्डित है। इसे त्रिभंग मुद्रा[108] में खडे हुए प्रदर्शित किया गया है। प्रतिमा आभूषणों से युक्त है। दूसरी बोधिसत्त्व प्रतिमा[109] के दोनों हाथ खण्डित हैं। तीन अन्य बोधिसत्त्व प्रतिमाओं[110] के अवशेष मिले हैं, जिनका शरीर सौष्ठव आनुपातिक है एवं आभूषण-युक्त है।

---

106 अग्रवाल, वासुदेव शरण; गुप्त आर्ट, 1977, पृष्ठ 21-22, अग्रवाल, पृथ्वी कुमार; गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, 1994, पृष्ठ-27-28, बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यत्मक अध्ययन, 1992, पृष्ठ 145

107 जी० आर० शर्मा०, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं० के० ए० V जी 2, शर्मा, जी० आर०, हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ 39 (दायां चित्र)

108 मस्तक, कटि और पैर इन तीनों अंगों से बलखाती प्रतिमा को त्रिभंगी मुद्रा कहते है। विस्तृत विवरण षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत है।

109 जी० आर० शर्मा०, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं० 70 शर्मा, जी० आर०; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ 39 (बायां चित्र)

110 जी० आर० शर्मा०; मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं० 293। एस, जी० आर० शर्मा, मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं० 138। एस०, जी० आर० शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय सं० 239

हारीति :—बौद्ध प्रतिमाओं के अन्तर्गत हारीति नामक बौद्ध देवी की प्रतिमाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। हारीति को कुबेर जम्भल या पांचिक की पत्नी माना जाता है। आरम्भ में वह राजगृह में जरा नाम की राक्षसी और कुरुक्षेत्र में उलूखल-मेखला नाम की यक्षी के रूप में जानी जाती थी। यह मांस-शोणित से तृप्त होती थी। किन्तु बौद्ध धर्म के साँचें में ढलकर वह शिवात्मक बन गई और मगध से गांधार तक बच्चों की रक्षक देवी के रूप में सर्वत्र फैल गई।[111] हिन्दू ग्रंथों में वर्णित षष्ठी देवी हारीति का ही परिवर्तित रूप है।[112]

हारीति से सम्बन्धित कथानक रत्नकूट में मिलता है।[113] यक्षी के रूप में जन्म लेनें से पूर्व वह राजगृह में एक चरवाहे की पत्नी थी। एक बार गर्भावस्था के समय उसे बलपूर्वक एक उत्सव में नृत्य करने को कहा गया जिससे उसका गर्भपात हो गया। फलतः उसने प्रतिज्ञा ली कि वह राजगृह के समस्त बच्चों का भक्षण करेगी।[114]

विनयपिटक (सर्वास्तिवाद शाखा) के चीनी अनुवाद के अनुसार उसने राजगृह में हुआंशी[115] (संस्कृत नन्दा या नन्दिनी) के नाम से पुनर्जन्म लिया तथा 500 बच्चों की माँ बनी। किन्तु पूर्वजन्म में ली गई प्रतिज्ञा के अनुसार उसने राजगृह के बच्चों को चुराना एवं खाना प्रारम्भ किया। बच्चों को हरण करने, चुरानें के कारण उसका नाम 'हारीति' पड़ा। राजगृह के निवासी दुःखी होकर भगवान बुद्ध की शरण में गए। बुद्ध ने उसे इस दुष्कृत्य से विरत करनें के लिए उसके सबसे छोटे और

---

111 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 345

112 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-207

113 वही, पृष्ठ-207

114 सहाय, भगवंत, आइकोनोग्राफी ऑव माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डिटिज, दिल्ली, 1975, पृष्ठ-253

115 वही, पृष्ठ-253

प्रिय पुत्र को छिपा दिया। हारीति अपनें शिशु को ढूँढ्ती तथा रोती बुद्ध के समीप गई। बुद्ध नें उसे अहिंसा एवं प्रेम की शिक्षा दी तथा हारीति नें बच्चों से प्रेम करनें की प्रतिज्ञा की। उसकी संतानों के लिए अधिक मात्रा में अन्न की व्यवस्था की गई। इस कथानक की पुष्टि इससे भी होती है कि इत्सिंग ने हारीति की प्रतिमा राजगृह के भोजनालय एवं मठ में देखी थी।[116]

कला में हारीति की मूर्तियाँ दो रूपों में प्राप्त हुई हैं-

(I) **एकाकी मूर्ति** :- इस प्रकार की मूर्ति में हारीति के साथ बच्चे दिखाये गए है, जिन्हें वह गोद में या कन्धों पर लिये हुए है।

(II) **युग्म मूर्ति** :- इसमें हारीति के साथ पंचिक या कुबेर की प्रतिमा मिलती है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में **कौशाम्बी के घोषिताराम, विहार के उत्खनन में हारीति का एक मन्दिर प्राप्त हुआ था,**[117] **जहाँ से हारीति की मिट्टी तथा प्रस्तर से निर्मित प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं।** इस मन्दिर में हारीति की मिट्टी से निर्मित बड़े आकार की सुन्दर प्रतिमा गजलक्ष्मी तथा कुबेर के साथ स्थापित थी।[118] सम्प्रति यह इलाहाबाद विश्वविद्यालय संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में सुरक्षित है। देवी स्टूल पर बैठी है। उनकी शिरोभूषा अलंकृत है, मस्तक पर टीका, कान में लटकते सुन्दर कुण्डल, गले में ग्रैवेयक तथा हार स्पष्ट है। उनके हाथ में केयूर, वलय तथा पैरों में पायल है। देवी के दोनों हाथ घुटनों पर स्थित हैं।

---

116 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, 1970, पृष्ठ-207

117 इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954-55, पृष्ठ-17

118 शर्मा, जी0 आर0, हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ-48 चित्रफलक क्रम संख्या-10

यहाँ से प्राप्त हारीति की प्रस्तर मूर्ति में देवी कुबेर के बायीं तरफ प्रदर्शित हैं।[119] उनके शिरोभाग के ऊपर छत्र है। बायें हाथ से वह एक शिशु को पकड़े हैं, जबकि दाहिनें हाथ में पुष्प का गुच्छा है। वह ग्रैवेयक, हार इत्यादि धारण किये हुए हैं। कौशाम्बी से हारीति की एक अन्य प्रस्तर प्रतिमा प्राप्त हुई है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है।[120]

कौशाम्बी के अतिरिक्त श्रृंग्वेरपुर के उत्खनन से कतिपय ऐसी मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं जिसकी पहचान प्रो० बी० बी० लाल[121] ने देवी के गोद में बालक तथा भारतीय नाकनक्श के आधार पर 'हारीति' अथवा 'षष्ठी' से की है। इन मृण्मूर्तियों की विशेषता यह है कि ये पूर्णतया हाथ से डौलियाकर बनाई गयी हैं, जिसमें हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अंगों को अलग से बनाकर जोड़ा गया है। देवी गले में हार, हाथ में चूड़ी तथा कड़ा इत्यादि धारण किये हुए है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि गंगा-यमुना के निचले दोआब के कतिपय स्थलों में बौद्धधर्म छठी शताब्दी ई० तक उन्नत स्थिति में पहुँच गया था, जिसके परिणामस्वरूप कलाकारो नें सुन्दर बुद्ध एवं बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का निर्माण किया। इन प्रतिमाओं पर मथुरा कला शैली के साथ ही सारनाथ कलाशैली का भी प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। कौशाम्बी की बुद्ध मूर्तियों को देखनें से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वहाँ के शिल्पियों नें एक विशिष्ट शैली अविष्कृत की जिसका स्वरूप कई शताब्दियों तक निखरता रहा।

---

119 शर्मा, जी० आर०; मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे आव इण्डिया, नं० 74, पृष्ठ 76, प्लेट 49ए, कुषाणकालीन प्रतिमा है। सम्प्रति जी० आर० शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत है।

120 राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या 79.16, चित्रफलक क्रम संख्या- 11(A)

121 लाल, बी० बी०; एक्सकेवेशन ऍट श्रृंग्वेरपुर (1977-86), वाल्यूम I, दिल्ली, 1993, पृष्ठ-118-120, प्लेट XCVB, XCVA तथा XCVI ।

2. जैन प्रतिमायें

ईसा पूर्व छठी शताब्दी, परिवर्तनों, मान्यताओं एवं विविध मत-मतान्तरों से पूर्ण उथल-पुथल का काल था। भारत की सामाजिक संस्कृति में धर्म की सदा ही महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती रही है। इस कालावधि में अनेक दार्शनिक विचारधाराओं तथा नयें-नयें सम्प्रदायों का जन्म हुआ। इनमें बौद्ध तथा जैन धर्म सम्प्रदायों नें भारतीय-समाज, धर्म तथा परिवेश को समग्र रूप से प्रभावित किया। जैन धर्म की प्राचीनता आद्यैतिहासिक काल से स्वीकार की जाती है। अनेक विद्वानों नें मोहनजोदड़ों से प्राप्त योगी की मूर्ति को आदि तीर्थंकर ऋषभदेव की मूर्ति माना है।[122] ऋग्वेद में एक स्थल पर 'ऋषभ' शब्द आया है[123] जिसे ऋषभदेव के साथ समीकृत किया जाता है। ऋषभवेद का उल्लेख यजुर्वेद तथा श्रीमद्भागवत[124] में भी हुआ है। परन्तु युक्तियुक्त प्रमाणों के अभाव में इन कथनों को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। जैन धर्म का वास्तविक प्रवर्तन एवं विकास छठी शताब्दी ई0पू0 में इस धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर के समय में हुआ, जिन्होंने अपने विचारों तथा शिक्षाओं द्वारा इसे सामान्य सम्प्रदाय से ऊपर उठाकर भारत के एक विशिष्ट धर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया। महावीर के पश्चात् जैन धर्म दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गयाः- श्वेताम्बर तथा दिगम्बर, श्वेत वस्त्र धारण करनें वाले श्वेताम्बर कहलाए, तथा जो निर्वस्त्र रहते थे दिगम्बर कहे गए। श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों के ग्रंथों में जैन देवकुल का विकास बाह्य दृष्टि से समरूप है, केवल उनके नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के संदर्भ में दोनों परम्पराओं में भिन्नता दृष्टिगत होती है।[125] जैन

---

122 पाण्डेय, आर0 एन0; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ-104

123 ऋग्वेद; 1/89/6, श्रीवास्तव, एम0 पी0; प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ-250

124 श्रीमद्भागवत; 5/28, श्रीवास्तव, एम0 पी0; प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ-250

125 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, पृष्ठ 249

साहित्य में चौबीस तीर्थकरों की सूची है।[126] तीर्थकर वीतराग और सभी इन्द्रियों के विजेता हैं इसलिए उन्हें "जिन" भी कहा जाता है और यह धर्म जैन धर्म कहलाता है। बृहत्संहिता (वराहमिहिरकृत) में तीर्थंकर प्रतिमा की लाक्षणिक विशेषताएँ निरूपित की गई हैं। इसके अनुसार घुट्ने तक लट्कते हुए हाथ (आजानुबाहु), छाती में श्रीवत्स का चिन्ह, तरुण, सुन्दर, शान्त अर्हत देव की प्रतिमा ध्यानस्थ निर्मित होनी चाहिए।[127] 'रूपमण्डन' का छठां और अन्तिम अध्याय जैन प्रतिमा लक्षण से सम्बन्धित है।[128] चतुर्विंशति तीर्थकरों की प्रतिमाओं की पहचान मुख्यतः तीन आधार पर की जाती है:- ध्वज[129] (लांछन), अभिलेख एवं शासनदेवता[130]। ये प्रतिमाएँ दो मुद्राओं :- कायोत्सर्ग (खड़ी) एवं आसन (बैठी) में मिलती हैं।

बौद्ध तथा ब्राह्मणकला के समान जैन कला को भी प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा में मिली। मथुरा की जैन शिल्प सामग्री में आयागपट्ट[131], जिन मूर्तियां, सर्वतोभद्रिका प्रतिमा, जिनों के जीवन से सम्बन्धित दृश्य एवं कुछ अन्य मूर्तियाँ प्रमुख हैं।[132] मथुरा की जिन मूर्तियाँ संवत् 5 से संवत् 95 (83-173ई0) के

---

126 ऋषभनाथ, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयाशनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर।

127 आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च।
दिग्वासास्तरूणो रूपवांश्च कार्योअर्हता देवः।। (बृहत्संहिता, 57, 45)

128 श्रीवास्तव, बलराम (सम्पादक), रूपमण्डन, वि0स0-2021, पृष्ठ-96

129 जिनों से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षण यथा महावीर का लांक्षन सिंह तथा ऋषभनाथ का वृषभ है। इसी प्रकार अन्य तीर्थकरों के लाछंन है।

130 जैन परम्परा में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई जो सम्बन्धित जिन के चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव हैं।

131 आयागपट्ट को पूजा या अर्पण की तख्ती कहा जा सकता है। अनेक शिलोत्कीर्ण लेखों के अनुसार अर्हतों की पूजा के लिये ऐसी शिलाएँ मन्दिर में रखी जाती थी। ये आयागपट्ट कला की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है, इनमें चारों ओर विभिन्न अलंकरणों के मध्य भाग में पद्मासन तीर्थकंरों की आकृतियाँ खुदी होती है।

132 मथुरा की जैन मूर्तियों का अधिकांश भाग राज्य संग्रहालय लखनऊ, एवं पुरातत्व संग्रहालय मथुरा में सुरक्षित है।

मध्य की है जो कि कुषाणकाल की मानी जाती है।[133] ये प्रतिमाएँ चार प्रकार की हैं:-

(I) खड़ी हुई या कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) मुद्रा में, जिनमें दिगम्बरत्व लक्षण स्पष्ट है।

(II) पद्मासन में आसीन मूर्तियां।

(III) प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या खड़ी हुई मुद्रा में चौमुखी मूर्तियाँ।

(IV) प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या बैठी हुई मुद्रा में प्राप्त हुई हैं।

मथुरा से कम से कम दस आयागपट्ट मिले है जिन पर जैन प्रतीक या प्रतीकों के साथ तीर्थकर प्रतिमा उत्कीर्ण है।[134] कुषाणकाल में सर्वप्रथम मथुरा में ही जिन मूर्तियों के साथ प्रातिहार्यो, धर्मचक्र, मांगलिक चिन्हों एवं उपासकों का अंकन प्रारम्भ हुआ। तीर्थकरों की हथेलियों, चरणों एवं उंगलियों पर धर्मचक्र एवं त्रिरत्न जैसे मांगलिक चिन्ह भी उत्कीर्ण किए गए। अधिकांश प्रतिमाओं के पीछे प्रभामण्डल तथा सिर के ऊपर छत्र भी प्रदर्शित मिलता है।[135]

गुप्तकाल में जिन प्रतिमाओं के निर्माण में महत्वपूर्ण विकास परिलक्षित होता है। जिनों के साथ लांछ्नों, यक्ष-यक्षी युगल एवं अष्ट प्रातिहार्यो का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[136] धर्मचक्र एवं उनके उपासकों का चित्रण पूर्ववत होते हुए भी कहीं-कहीं तीर्थकर प्रतिमाओं के बगल में मृग को प्रदर्शित किया गया। बौद्ध प्रतिमाओं में इस प्रकार से मृगों का चित्रण भगवान बुद्ध के मृगदाव में प्रथम धर्मोपदेश का प्रतीक माना गया है। संभव है कि जैन कला में भी इस अलंकरण नें स्थान पा लिया तथा आगे चलकर इसे (मृग) तीर्थकर शान्तिनाथ का विशेष चिन्ह मान लिया

---

133 तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद; जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, पृष्ठ 48

134 वही, पृष्ठ-47, मथुरा से प्राप्त तीन आयागपट्ट, क्रमशः पटना संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली तथा बुडापेस्ट (हंगरी) संग्रहालय में सुरक्षित है। अन्य आयागपट्ट पुरातत्व संग्रहालय मथुरा एवं राज्य संग्रहालय लखनऊ में है।

135 तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद; जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, पृष्ठ-47

136 वही, पृष्ठ-81

गया।[137] गुप्तकालीन मथुरा शैली की जैन कला में अष्टग्रहों, मालाधारी गंधर्वों तथा नेमिनाथ के साथ वासुदेव, बलराम आदि की भी मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।[138]

इस प्रकार पाँचवी शती ई0 के अन्त तक जैन देवकुल का मूल स्वरूप निर्धारित हो गया था, जिसमें 24 जिन, इनके उपासक, शासन देवता, वृक्ष तथा लांछन निश्चित कर दिए गए। कुषाणकाल की जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ जहाँ मथुरा एवं चौसा से मिलती हैं, वही गुप्तकालीन जैन मूर्तियां मथुरा तथा चौसा के अतिरिक्त राजगिरि, विदिशा, उदयगिरि, अकोटा, कहौम और वाराणसी आदि क्षेत्रों से भी मिली है, परन्तु इनका उल्लेख प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की परिधि के परे है। गंगा-यमुना के निचले दोआब के स्थानों में कौशाम्बी, पभोसा तथा प्रयाग आदि में जैन धर्म की लोकप्रियता तथा प्राचीनता प्रथम शताब्दी ई0 पू0 तक जाती है, जिसके अभिलेखीय तथा प्रतिमापरक साक्ष्य प्राप्त हैं।

प्रसिद्ध जैन ग्रंथ तिलोयपण्णत्ति में कौशाम्बी का उल्लेख भगवान पद्मप्रभ की जन्मभूमि के रूप में किया गया है जो कि जैंन धर्म के छठें तीर्थंकर माने जाते हैं। उनकी माता सुसीमा तथा पिता धरण थे।[139] यह उल्लेख आ0 रविषेणकृत 'पद्मपुराण' 98/145, आ0 जटासिंहनन्दीकृत 'वराङ्गचरित' 27/82, तथा आ0 गुणभद्र कृत 'उत्तरपुराण' 52/18 में भी प्राप्त होता है।[140] तिलोयपण्णत्ति ग्रंथ उनकी ज्ञान प्राप्ति का भी विवरण प्रस्तुत करता है, जिसके अनुसार-भगवान पद्मप्रभ नें कौशाम्बी के मनोहर उद्यान में जाकर दीक्षा ली और छः माह के घोर तप के बाद

---

137 श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी 1990, पृष्ठ-165-166

138 घोष, ए0 (सम्पादक); जैन आर्ट एण्ड आर्क्टिक्चर, भाग-एक, पृष्ठ-107-177, दिल्ली 1974, जोशी, एन0 पी0; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, पटना, 1977, पृष्ठ 210 से आगे।

139 जैन, बलभद्र; भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग); बम्बई, 1974, पृष्ठ-142
अस्सजुद किण्ह तेरसिदिणम्मि पउमप्पहो अचित्तासु।
धरणेण सुसीमाए कोसंविपुरवरे जादो (4/531)

140 वही, पृष्ठ-142

इसी उद्यान में उन्हें कैवल्यज्ञान प्राप्त हुआ। बाद में यह उद्यान पभोसा (प्रभासगिरि) के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[141]

पभोसा के जैन मन्दिर में पद्मप्रभ की प्रतिमा हल्के बादामी रंग की पद्मासन मुद्रा में है, जो मूलनायक प्रतिमा के नाम से जानी जाती है। इस प्रतिमा की विशेषता यह है कि दिन के अलग-अलग पहर में इसका रंग बदलता रहता है। सूर्योदय के समय इसका रंग हल्का लाल, दोपहर में गहरा लाल, अपराह्न में कत्थई और सूर्यास्त के समय अपने वास्तविक बादामी रंग का हो जाता है। संभव है कि यह परिवर्तन पाषाण की विशेषता हो किन्तु ऐसी मान्यता है कि सूर्य की किरणें मन्दिर के अंदर प्रतिमा तक नहीं पहुँच पातीं इसलिए प्रतिमा का यह रंग परिवर्तन दैवी चमत्कार समझा जाता है।[142] यह प्रतिमा ईसा पूर्व दूसरी या प्रथम सदी की प्रतीत होती है। 17 मार्च 1999 को मूर्ति चोरों नें इस प्रतिमा को मन्दिर से गायब कर दिया।[143] इस प्रतिमा के बाईं ओर भगवान नेमिनाथ की भूरे रंग की पद्मासन मुद्रा की प्रतिमा है। पादपीठ पर शंख का चिन्ह अंकित है। नीचे बायीं ओर गोमेद यक्ष और दायीं ओर अम्बिका देवी यक्षी है। यक्ष सुखासन में आसीन है। उसके तीन मुख और चार भुजाएँ है जिनमें मुद्गर, दण्ड, फल और वज्र है। यक्षी की गोद में प्रियंकर पुत्र है। इनसे ऊपर दोनों ओर चामरधारी हैं। उनसे ऊपर दो पद्मासन अरहन्त प्रतिमायें बनी हुई हैं। शिरोभाग में दो गज दिखाई पड़ते हैं। ऊपर दो खड्गासन अरहन्त प्रतिमायें बनी हुई हैं। एक देवी पुष्पमाल लिए और एक देव तीन छत्र लिये हुए है। यह मूर्ति संवत् 1508 की है। यह इसके लेख से प्रकट होता है।[144] **कौशाम्बी से चौथी-पाँचवी शताब्दी ई० की पद्मप्रभ की प्रतिमा (131x83सेमी^{2}) पद्मासन मुद्रा में बैठी हुई प्राप्त हुई है।[145] सम्प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, संग्रहालय में प्रदर्शित**

---

141 वही, पृष्ठ-142

142 वही, पृष्ठ 149-151

143 दैनिक जागरण, जागरण विविध, इलाहाबाद, 15 जून 2000

144 जैन, बलभद्र; भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग), बम्बई, 1974, पृष्ठ-149

145 शर्मा, जी0 आर0; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृ0 43, इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू 1953-54, पृष्ठ-9

है। कौशाम्बी से छठी शताब्दी ई0 का पार्श्वनाथ का मस्तक[146] मिला है तथा भीटा से भी आठवीं शती ई0 के कतिपय जिन मस्तक प्राप्त हुए हैं।[147] इलाहाबाद संग्रहालय में कौशाम्बी तथा पभोसा से प्राप्त दसवीं से बारहवीं शती ई0 के मध्य की जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। इनमें चन्दप्रभ, शान्ति एवं जिन चौमुखी मूर्तियाँ हैं।[148]

इस प्रकार इन स्थलों से प्राप्त तीर्थंकर प्रतिमाओं के विवरणोपरान्त यह कहा जा सकता है कि इन स्थानों में जैन धर्म की प्राचीनता ई0 पू0 प्रथम शती तक जाती है। इस संदर्भ में पभोसा से प्राप्त एक लेख में आषाढ़सेन के द्वारा अर्हतों के लिए गुफा निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है जो कि प्रथम शती ई0 पू0 का है। यहाँ से एक आयागपट्ट भी मिला है जिसके अनुसार सिद्ध राजा शिवमित्र के राज्य के बारहवें वर्ष में स्थविर बलदास के उपदेश से शिवनन्दी के शिष्य शिवपालित नें अरहन्त पूजा के लिए आयागपट्ट स्थापित किया।[149] ये विवरण यह सिद्ध करते है कि प्रथम शताब्दी ई0 पू0 में इन क्षेत्रों में प्रचलित जैन धर्म वर्तमान समय में भी यहाँ प्रतिष्ठित है जिसकी पुष्टि यहाँ से प्राप्त जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं द्वारा भी होती है।

3. ब्राह्मण प्रतिमायें

वैदिक धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की प्रतिमायें ब्राह्मण प्रतिमाएँ या हिन्दू प्रतिमायें कही जाती है। प्राचीन काल के प्रचलित धर्मो में बौद्ध तथा जैन धर्मो के समान ब्राह्मण (वैदिक) धर्म का भी प्रमुख स्थान है। वैदिक धर्म के विषय में

---

146 कृष्णदेव एवं एस0 डी0 त्रिवेदी (समा0); स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम (वाल्यूम-II), दिल्ली, 1996, पृ0 55 चित्र 196

147 वही, पृष्ठ 56 चित्र 197 तथा 198

148 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूयिजम, AIIS (पब्लिकेशन नं02) पूना, 1970, पृ0 138, 142-144, 147, 153, 158

149 जैन, बलभद्र; भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ (प्रथम भाग), बम्बई, 1974, पृष्ठ-150-151
'सिद्धं राज्ञो शिवमित्रस्य संवघटे..... ....रवमाहकिय........... .. ....
स्थविरस लदासस निवर्तन श................ .. .शिवनंदिस अन्ते-
वासिस शिवपालित आयागपट्टे थापयति अरहतो पूजायै।'

जानकारी वैदिक साहित्य से होती है जिसके अन्तर्गत संहिताएँ, ब्राह्मणग्रंथ, आरण्यक तथा उपनिषद आते है।[150] ऋग्वेद में अनेक देवताओं की सत्ता का उल्लेख मिलता है। पुराणों में भी विभिन्न देवी-देवताओं का वर्णन मिलता है जिसमें पंच देवों:-शिव, विष्णु, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश की उपासना का उल्लेख है।[151] पौराणिक काल में वैदिक देवताओं को नवीन रूप दिया गया जिसमें ब्रह्मा, विष्णु और महेश को त्रिदेव माना गया तथा उन्हें विश्व का कर्त्ता, धर्त्ता और संहर्ता कहा गया।[152] विष्णुपुराण के अनुसार भगवान ब्रह्मारूप से विश्व की रचना करते है; विष्णु रूप से पालन करते हैं तथा शिव रूप से संहार करते हैं।[153] इसमें विष्णु तथा शिव की लोकप्रियता अधिक रही। पौराणिक उपाख्यानों में भी विष्णु तथा शिव की प्रधानतया वर्णित मिलती हैं।[154] धर्म की प्रवृत्ति के लिए एवं अन्याय तथा अत्याचार का नाश करने हेतु विष्णु बार-बार अवतार लेते हैं।[155] महाभारत काल में वासुदेव कृष्ण को वैदिक विष्णु का अवतार माना गया। महाभारत के शान्तिपर्व में युधिष्ठिर कृष्ण का गुणगान करते हुए उन्हें विष्णु के रूप में देखते हैं।[156] इस प्रकार कृष्ण तथा विष्णु की प्रधानता तथा उनकी अभिन्नता से भागवत धर्म का विकास हुआ। प्रथम शती ईसवी पूर्व में भागवत धर्म का भक्ति आन्दोलन मथुरा में वेग से था, जिसमें भगवान वासुदेव

---

150 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ-155

151 श्रीवास्तव, एम0पी0, प्राचीन अद्‌भुत भारत की सांस्कृतिक झलक, इलाहाबाद, 1988, खण्ड क, पृष्ठ-236

152 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1982, पृष्ठ-159

153 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृष्ठ-77

154 उपाध्याय, वासुदेव; वही, पृष्ठ-78

155 यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे।।- गीता 4/7-8

156 महाभारत शान्तिपर्व, अध्याय 43, सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देवप्रतिमायें, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ-27

और संकर्षण (बलराम) की पूजा मुख्य थी[157], तथा इनके उपासक भागवत कहे गए।[158] भागवतों ने षड्गुणों (ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य, तेजस्) के आधार पर 'चतुर्व्यूह' की कल्पना की तथा वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध परमदेव विष्णु के व्यूह अथवा उद्भूत रूप मानें गए।[159] इनमें वासुदेव में सभी गुण हैं। संकर्षण में ज्ञान और बल, प्रद्युम्न में ऐश्वर्य और वीर्य तथा अनिरुद्ध में शक्ति और तेजस् की प्रधानता है।[160] धीरे-धीरे इन व्यूहों की संख्या बढ़ती गई और गुप्तकाल के अन्त तक चार से चौबीस होकर 'चतुर्विंशति' व्यूह की कल्पना का अवतरण हुआ।[161] यह क्रम अग्निपुराण[162] में उल्लिखित है।

द्वितीय-प्रथम शताब्दी ई0 पू0 के कतिपय अभिलेख भी भागवतों को वासुदेव एवं संकर्षण की आराधना से सम्बन्धित करते हैं।[163] इसमें बेसनगर (मध्यप्रदेश के विदिशा जिले में) अभिलेख में वासुदेव को 'देवदेवस' (देवताओं का देवता) तथा उनके उपासक हेलियोडोरस (तक्षशिला का यवन राजदूत) को भागवत कहा गया है।[164] प्रथम शती ई0 पू0 के घोसुन्डी अभिलेख में भागवत नरेश सर्वतात के द्वारा नारायण वाटिका में संकर्षण एवं वासुदेव के पूजा स्थान के चारो

---

157 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 243

158 सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ-28

159 जायसवाल, सुवीरा, वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ-61. श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1990. पृष्ठ-19

160 (समा0) बलराम श्रीवास्तव, रूपमण्डन, वाराणसी, वि0 सं0 2021, पृष्ठ-49

161 चतुर्विंशति व्यूह :- वासुदेव, केशव, नारायण, माधव, पुरुषोत्तम, अधोक्षज, संकर्षण, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, अच्युत, उपेन्द्र, प्रद्युम्न, त्रिविक्रम, नरसिंह, जनार्दन, वामन, श्रीधर, अनिरुद्ध, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर, हरि एवं कृष्ण।

162 अग्निपुराण/अध्याय 48/7-15

163 जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ-38

164 सरकार, डी0 सी0; सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली 1991, पृष्ठ 88-89, भण्डारकर, डी0 आर0; जर्नल ऑव दि बॉम्बे ब्रान्च ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, XXIII, पृष्ठ 104, ल्यूडर्स, लिस्ट नं0 669

ओर पत्थर की दीवार के घेरे के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है।[165] इसी प्रकार मथुरा के जुनसुटी गाँव से बलराम की मूर्ति प्राप्त हुई है। यह शुंगकालीन है।[166] इन उदाहरणों से ऐसा प्रतीत होता है (पुरातात्विक साक्ष्यों के द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है) कि बौद्ध तथा जैन धर्मो के समान ब्राह्मण-धर्म सम्बन्धी देवी-देवताओं को पूर्ण अभिव्यक्ति सर्वप्रथम मथुरा कला के अन्तर्गत मिली। ब्राह्मण प्रतिमाओं में त्रिमूर्ति अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश (शिव) प्रतिमाओं की प्रधानता दिखाई देती है। इनके साथ ही सूर्य, गणेश, कार्तिकेय, दुर्गा, लक्ष्मी आदि देवी-देवताओं की भी प्रतिमायें मिलती हैं। **ब्रह्मा की प्रतिमाओं में उनका चतुर्मुख, कमलासन पर आसनस्थ, हंसवाहित रथ तथा प्रजापति स्वरूप मिलता है।**[167] प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों के उत्खनित पुरास्थलों से अभी तक ब्रह्मा की स्वतंत्र मूर्ति नहीं प्राप्त हुई है। अधिकांश उदाहरणों में वह विष्णु के साथ प्रदर्शित हैं। कानपुर के निकट भीतरगाँव मन्दिर से प्राप्त मृण्मय फलक में विष्णु शेषनाग की शय्या बनाकर लेटे हुए हैं। उनकी नाभि से प्रादुर्भूत कमल पर ब्रह्मा का अंकन मिलता है, तथा पैर के पास मधु और कैटभ नामक दो दैत्य प्रदर्शित हैं।[168] ब्राह्मण प्रतिमाओं में विष्णु प्रतिमायें कौशाम्बी, झूंसी, भीटा, शृंग्वेरपुर, भीतरगाँव आदि स्थलों से प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख विष्णु-प्रतिमाओं के अन्तर्गत किया गया है।

---

165 सरकार, डी0 सी0, सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस, बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली 1991, पृष्ठ 90-91, एपिग्राफिया इण्डिका XVI, पृष्ठ- 27

166 अग्रवाल वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 243, चित्र 370

167 मत्स्य पुराण, अध्याय 260, श्लोक 40-44

168 बनर्जी, जितेन्द्र नाथ; दि डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, कलकत्ता, 1956, पृष्ठ-407

विष्णु प्रतिमाऐं

वैदिक देवताओं में प्रमुख विष्णु का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वैदिक काल में विष्णु का उल्लेख एक वैदिक देव के रूप में मिलता है[169] तथा इनका सम्बन्ध इन्द्र से स्थापित किया जाता रहा है।[170] उत्तरवैदिक काल में विष्णु का महत्व क्रमशः बढ़ता गया।[171] यह मुख्यतः यज्ञ के साथ उनकी तद्रूपता के कारण हुआ।[172] शतपथ ब्राह्मण में उन्हें यज्ञ स्वरूप माना गया है,[173] और प्रारम्भिक सूत्रग्रंथों में भी वह एक महत्वपूर्ण देवता हैं, जिन्हें अनेक "श्रौत एवं गृह्य" यज्ञों में आहुतियाँ दी जाती हैं।[174] नारायण के साथ उनके एकीकरण ने उनके उत्थान में अधिक योगदान दिया और लगभग चौथी-पाँचवीं शताब्दी तक विष्णु एक प्रमुख देवता के रूप में स्थापित हुए।[175] विष्णु के रूप-अभिज्ञान एवं उनके रूपायन का विधिवत् विवेचन विष्णुधर्मोत्तरपुराण के तृतीय खण्ड के अध्याय 44, 46, 47, 60 और 85 में प्राप्त होता है। विष्णु पुराण में विष्णु की मूर्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि मुख प्रसन्न हों, जिसे देखते ही उपासक का मन प्रफुल्लित हो जाये। कमल के सदृश सुन्दर नेत्र, भरे हुए कपोल, चौड़ा माथा, कान कुंडलों से विभूषित, शंख के समान सुग्रीवा, श्री वत्सांकित वक्षस्थल, त्रिवली युक्त उदर, आठ या चार भुजायें, स्वस्थ जँघायें, मनोहरचरणारविन्द, शुभ पीताम्बर, किरीट, हार, केयूर, रत्नमयी मुद्रिका, हाथों में धनुष, शंख, गदा, खड्ग, चक्र, अक्षमाला तथा वरद और अभय

---

169 पाण्डेय, राजबली; हिन्दू धर्म कोष, उ0 प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1988, पृष्ठ 591
170 सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, प्रथम खण्ड, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 26
171 त्रिपाठी, गया चरण; वैदिक देवता, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1982, पृष्ठ-591
172 हरिवंश पुराण, क्षेमराज श्री कृष्णदास द्वारा सम्पादित, पुनर्मुद्रण राजेन्द्र शमण, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, अध्याय 33, श्लोक 3, पृष्ठ-66
173 शतपथ ब्राह्मण, 1.9.3.9; कल्चरल हेरिटेज आव इण्डिया, खंड चार, प्र0 रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट आव कल्चर, कलकत्ता, 1937-56, पृष्ठ-110
174 राम गोपाल, इण्डिया आफ वैदिक कल्पसूत्राज, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1959, पृष्ठ 466
175 जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ-47

मुद्राओं से युक्त विष्णु का दिव्य रूप हो।[176] वराह, वामन, नारद, ब्रह्मा, मत्स्य और भागवत पुराणों में भी विष्णु को विशेष महत्व दिया गया है। वराह पुराण (4/2; 48/17-22), मत्स्यपुराण (285/6) अग्निपुराण (2-16), पद्मपुराण (6/43/13-15) आदि में विष्णु के अवतारों की विभिन्न सूचियाँ उपलब्ध होती हैं, किन्तु लोकप्रिय एवं सर्वमान्य सूची में विष्णु के दस अवतारों के जो नाम मिलते हैं, उनमें कुछ स्थानों पर बुद्ध के स्थान पर बलराम को विष्णु का एक अवतार मानते हैं। दस अवतारों के नाम कुछ इस प्रकार प्राप्त होते हैं- (1) मत्स्य (2) कूर्म (3) वराह (4) नृसिंह (5) वामन (6) परशुराम (7) दशरथिराम (8) कृष्ण (9) बुद्ध (10) कल्कि। शतपथ तथा तैतरीय ब्राह्मण में वामन, वराह एवं मत्स्यावतार के कथानक मिलते हैं।[177] अग्निपुराण में इन दशावतारों की प्रतिमाओं के लक्षण इस प्रकार दिये गए हैं कि मत्स्यावतार की मत्स्य रूप वाली, कूर्म की कूर्म रूप वाली, वराह की मनुष्य के अंग वाली, हाथों में गदा लिये हुए, नृसिंह की विवृत मुख वाली, वाम जंघा पर दानव को धारण किये, उसके वक्ष को फाड़ते हुए प्रतिमा बनाई जानी चाहियें। इसी प्रकार वामन, राम, परशुराम, बलराम, बुद्ध और कल्कि की प्रतिमाओं के लक्षण भी दिये गए हैं।[178] इन अवतारों का पूजन अर्चन ईसा पूर्व से आरम्भ हुआ, जिसका गुप्तकाल में पूर्ण विकास हुआ।

कला में वासुदेव-विष्णु की प्रतिमायें दूसरी-प्रथम शती ई0 पू0 से प्राप्त होनें लगती है।[179] वासुदेव शरण अग्रवाल ने "कैटलॉग ऑव दि ब्राह्मिनकल इमेजेज इन मथुरा आर्ट" (मथुरा कला में ब्राह्मणीय प्रतिमाओं की सूची) में वासुदेव-विष्णु की

---

176 विष्णुपुराण; 6/7/80-85

177 उपाध्याय वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ-86 एवम् 81 शतपथ ब्राह्मण 4/2/11, तैतरीय ब्राह्मण 7/1/5/1

178 अग्निपुराण, 49/1-28

179 कृष्णदत्त बाजपेयी ने मल्हार से प्राप्त अभिलेखयुक्त वासुदेव की एक चतुर्भुजी प्रतिमा प्रकाशित की है, जिसे अभी तक वासुदेव की प्राचीनतम प्रतिमा के रूप में स्वीकार किया गया है। बाजपेयी, के0 डी0; कल्चरर हिस्ट्री आव इण्डिया, वाल्यूम I, मध्य प्रदेश, दिल्ली, 1985, पृष्ठ-94

चौदह प्रतिमायें गिनाई हैं, जो उनके अनुसार कुषाण काल की हैं।[180] प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में **भीटा की खुदाइयों**[181] से एक बड़ी संख्या में मिट्टी की मुहरें तथा ठप्पे प्रकाश में आए हैं, जिससे स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म की लोकप्रियता गुप्तों के शासनकाल में सबसे अधिक रही। मार्शल द्वारा सूचीबद्ध मुहरों में इक्कीस (21) सील[182] वैष्णव धर्म से सम्बन्धित हैं। इनमें से एक[183] में चक्र जैसे प्रतीक के साथ 'नमो भगवते वासुदेवाय' मुद्रालेख है। जैसा कि मार्शल कहते है[184] कि गुप्तकाल में भीटा में निश्चय ही वासुदेव का कोई मन्दिर रहा होगा। एक अन्य सील[185] पर एक पुरुष का चित्र है जो विष्णु के रूप में पहचाना गया है। चार सीलों[186] पर श्रीलक्ष्मी का चित्रांकन है, जिनमें से एक में पूर्वीय गुप्त लिपि में [illegible]। **महादंडनायक विष्णुरक्षित** (जिसका अर्थ हुआ वह जो विष्णु द्वारा रक्षित है) का उल्लेख है।[187] दो अन्य पर विष्णु के कच्छप एवं हंस अवतारों का चित्रण है।[188] झूँसी से भी वैष्णव धर्म से सम्बन्धित अनेक मुहरें प्राप्त हुई हैं, जो इलाहाबाद संग्रहालय में संग्रहीत हैं, इनमें मुहर संख्या 374 में श्रीवत्स, गदा, शंख और चक्र अंकित मिलता है।[189] इसी प्रकार गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' की अश्वारुढ़ प्रकार की मुद्राओं तथा रजत मुद्राओं के ऊपर उसकी

---

180 अग्रवाल, वी0 एस0; ए कैटलॉग ऑव दि ब्राह्मिनकल इमेजेज इन मथुरा आर्ट, यू0 पी0 हिस्टॉरिकल सोसाइटी, लखनऊ, 1951, पृष्ठ-4 एवं आगे

181 मार्शल, सर जॉन, एक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, ऍनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृष्ठ 47 एव आगे।

182 मार्शल, सर जॉन; वहीं, सं0 2, 3, 6, 7, 21, 32, 33, 34, 35, 36, 41, 42, 43, 47, 53, 81, 87, 88, 89, 90 92 कुल 21 सील।

183 मार्शल, सर जॉन; वही, छाप संख्या 21, पृष्ठ 50

184 मार्शल, सर जॉन; वही, पृष्ठ 50

185 मार्शल, सर जॉन; वही, छाप संख्या 22

186 मार्शल, सर जॉन; वही, छाप संख्या 32, 34, 35 और 42

187 मार्शल, सर जॉन; वही, छाप संख्या 32

188 मार्शल, सर जॉन; वही, क्रमशः छाप संख्या 2 तथा 53

189 पुरातत्त्व, बुलेटिन ऑव दि इंडियन आर्कियोलॉजिक्ल सोसाइटी, 1969-70, नं0 3, पृष्ठ-53

उपाधि 'परम भागवत' अंकित मिलती है।[190] इसी प्रकार कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त की मुद्राओं पर भी मुद्रालेख क्रमशः- 'परमभागवत महाराजाधिराज श्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्यः तथा 'परमभागवतमहाराजाधिराज- श्री स्कन्दगुप्तक्रमादित्य' प्राप्त होता है, जो उनके वैष्णव मतानुयायी होनें का प्रबल प्रमाण है।[191]स्कन्दगुप्त कालीन गढवा शिलालेख में यहाँ (गढ़वा) स्थित प्राचीन विष्णु मन्दिर (दशावतार मन्दिर) में अनन्तस्वामिन् की एक प्रतिमा की स्थापना का उल्लेख है (अनन्तस्वामी पादं प्रतिष्ठाप्य)।[192] इस लेख में भगवान विष्णु को चित्रकूट स्वामी भी कहा गया है। चित्रकूट स्थान दशरथ पुत्र राम से सम्बन्धित है, जो विष्णु के अवतार मानें जाते हैं[193] इन उल्लेखोपरांत यह कहा जा सकता है कि गुप्तकाल में गुप्त नरेशों का संरक्षण, पुरोहित वर्ग का समर्थन तथा संहितिमूलक सहिष्णु रूख का अपनाना, इन तीनों बातों ने मिलकर वैष्णव धर्म की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा में अभूतपूर्व वृद्धि की,[194] जिसके परिणामस्वरूप इस काल में विष्णु के नाना रूपों तथा उनके अवतारों की मूर्तियां इतनी कलात्मकता के साथ बनाई गयी कि कला का पारखी उन्हें देखकर आत्मविस्मृत हो जाता है।

विष्णु प्रतिमायें तीन प्रकार की मिलती हैः-

(I) आसन (बैठी) प्रतिमा;

(II) स्थानक (खड़ी) प्रतिमा;

(III) शयन (लेटी) प्रतिमा।

---

[190] राय, उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, द्वितीय संस्करण, 1983, इलाहाबाद, पृष्ठ-240

[191] राय उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, द्वितीय संस्करण, 1983, पृष्ठ-289 तथा 326

[192] फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनस इन्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, संख्या 66, प्लेट XXXIXD, पृष्ठ- 267-268

[193] राय, उदय नारायण; गुप्त राजवंश तथा उसका युग, द्वितीय संस्करण, 1983, इलाहाबाद, पृष्ठ-313

[194] जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ- 192

इन प्रतिमाओं के अन्तर्गत भी चार उप-भाग हो जाते हैं- योग, भोग, वीर तथा आभिचारिक। इन सभी रूपों की विभिन्न उद्देश्यों से पूजा की जाती है। जिसमें योग प्रतिमा योग प्राप्ति के लिये, भोग प्रतिमा धन तथा वैभव के लिये, वीर प्रतिमा शक्ति के लिये तथा आभिचारिक प्रतिमा शत्रु-नाश के लिए पूजी जाती है।[195] रूपमण्डन[196] तथा अपराजितपृच्छा[197] में विष्णु की कई विशिष्ट प्रकार की मूर्तियों का विवेचन मिलता है, जिनमें वैकुण्ठ, अनन्त, त्रैलोक्यमोहन तथा विश्वरूप विष्णु प्रतिमायें आती हैं। डा0 द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल के अनुसार वैष्णव मूर्तियों को सात भागों में विभाजित किया जा सकता हैः- साधारण मूर्तियाँ, विशिष्ट मूर्तियाँ, ध्रुवबेर, दशावतार मूर्तियाँ, चतुर्विंशति मूर्तियाँ, क्षुद्र मूर्तियाँ तथा गरुड़ एवं आयुध मूर्तियाँ।[198] साधारण मूर्तियां विष्णु की चतुर्भुज मूर्तियाँ हैं। इसमें देवी साहचर्य नहीं है। विशिष्ट मूर्तियों में अनन्तशायी, नारायण, वासुदेव, त्रैलोक्य मोहन आदि की गणना की जाती है। ध्रुवबेराओं का सम्बन्ध मुख्यतः विष्णु की स्थानक, आसन तथा शयन तीन मुद्राओं के अनुरूप प्रतिमाओं से है। मन्दिरों में प्रतिष्ठित विष्णु प्रतिमा को प्रायः ध्रुवबेर का नाम दिया गया है। यह अचल या स्थायी मूर्ति है। दशावतार मूर्तियों में विष्णु के दस अवतारों एवं चतुर्विंशति मूर्तियों में चौबीस अवतारों के रूपों का वर्णन है। क्षुद्र मूर्तियों में पुरुष, कपिल, व्यास, धर्म, मन्मय आदि की गणना की जाती है। गरुड़ एवं आयुध पुरुष मूर्तियों में गरुड़ और सोलह आयुधों से युक्त मूर्तियां आती हैं। इन मूर्तियों में दो भुजाओं वाली, चार भुजाओं वाली, छः भुजाओं वाली तथा आठ भुजाओं वाली मूर्तियों के अनुसार भी भेद किया गया है। प्रायः विष्णु की चार भुजाओं वाली मूर्ति का उल्लेख अधिक मिलता है, लेकिन इनमें स्थित आयुधों की विलक्षणता के कारण यह मूर्तियाँ अनेक नामों से पुकारी जाती हैं।

---

195 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0 सं0 2026, पृष्ठ-92, तथा पृष्ठ 89, राव टी0 ए0 गोपीनाथ; एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, संख्या 1, भाग1, भूमिका, पृ0 18, मिश्र, इंदुमती; प्रतिमा विज्ञान, 1972, भोपाल, पृ0 71

196 (समा0) बलराम श्रीवास्तव; रूपमण्डन, वाराणसी, वि0 सं0 2021, पृ0 57 तथा 58

197 दूबे, लालमणि; अपराजितपृच्छा, ए क्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, 1987, पृष्ठ 314 एवं 318

198 शुक्ल, द्विजेन्द्रनाथ; भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, 1968, पृष्ठ 474-75

प्रारम्भ में कुषाणकालीन विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमाओं में दाहिना हाथ अभय मुद्रा में तथा बायें हाथ में अमृत-घट दिखाया गया है। दो अन्य हाथों में गदा और चक्र है। यदि इस प्रतिमा के दो हाथ (जिनमें गदा तथा चक्र है) हटा दिए जाए तो यह बोधिसत्त्व मैत्रेय की प्रतिमा के समान दिखती है। सम्भवत· यह समानता एक साथ, एक ही समय में दोनों धर्मो में प्रतिमा निर्माण प्रारम्भ होनें के फलस्वरूप दृष्टिगत होती है।[199]

गुप्तकालीन विष्णु प्रतिमाओं में कतिपय मूर्ति विधानीय विशेषताएं परिलक्षित होती हैं। इस काल की चतुर्भुज विष्णु प्रतिमाओं में उनके आयुध प्रायः शंख, चक्र, गदा और पद्म मिलते है। गुप्तकाल में सर्वप्रथम विष्णु के आयुधों का मानवीकरण कर उन्हें आयुध पुरुषों के रूप में प्रदर्शित किया गया। गुप्तकला में विष्णु प्रतिमाओं में शंख पुरुष, चक्र पुरुष तथा गदादेवी का मूर्तन मिलता है। इन आयुध प्रतिमाओं का आकार विष्णु प्रतिमा की अपेक्षा छोटा बनाया गया है। गुप्तकाल से विष्णु के वाहन गरुड़ (सुपर्णा नामक वैदिक देवता, जिसे पुराणों में गरुड़ के रूप में विष्णु का अनुचर कहा गया है) का भी मानवीय रूपांकन प्रारम्भ हुआ। गरुड़ की आँखें मनुष्याकार तथा चोंच व पंख पक्षी जैसे बनाये गए, कलाकृतियों में विष्णु के साथ लक्ष्मी तथा भूदेवी का भी अंकन मिलता है।[200] इलाहाबाद, लखनऊ, बड़ौदा, ग्वालियर, मथुरा, जोधपुर, पटना, कलकत्ता आदि स्थानों के संग्रहालयों तथा राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली में विष्णु की अनेक सुन्दर प्रतिमाएँ संग्रहीत हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों के उत्खनित पुरास्थलों से विष्णु के निम्न प्रकार की प्रतिमाएं पाई गई हैं।

---

199 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ- 266 तथा 340

200 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ-120 एवं 121

(I) आसन (बैठी) प्रतिमा :–विष्णु की एकाकी आसन (बैठी) मूर्ति अत्यन्त अल्प संख्या में मिलती है।[201] मथुरा संग्रहालय में कुषाणकालीन विष्णु की कई आसनस्थ प्रतिमायें देखनें को मिलती हैं। ये प्रतिमायें चतुर्भुजी है तथा किरीट, हार, भुजबन्ध, वनमाला आदि से सज्जित है।[202]

(II) स्थानक (खड़ी) प्रतिमा :–विष्णु की स्थानक मूर्तियाँ चतुर्भुजी हैं। उन्हें शंख, चक्र, गदा और पद्म लिए हुए बनाया गया है। कुषाणकालीन चतुर्भुज विष्णु प्रतिमाओं में विष्णु के हाथ में कमल का अभाव है, किन्तु गुप्तकाल और उसके बाद की विष्णु प्रतिमाओं में उनके हाथ में कमल दिखलाई पड़ने लगता है।[203] साहित्यिक ग्रंथों में विष्णु के इन आयुधों का प्रतीकात्मक महत्व दिया गया है। 'स्कन्द पुराण' में वर्णन है कि :

ज्ञानाहङ्कारकेश्वर्य शब्द ब्रह्मासि केशव।

चक्रपद्मगदाशङ्ख परिणामानि धारयन्।।[204]

किन्तु चक्र, पद्म, गदा, शंख को ज्ञान, अहंकार, ऐश्वर्य और शब्द के अतिरिक्त सत्त्व, रजस, तमस् और अहंकार का भी प्रतीक कहा गया है।[205] गुप्तकाल में स्थानक चतुर्भुज प्रतिमाओं के अतिरिक्त कतिपय द्विभुजी तथा अष्टभुजी विष्णु प्रतिमायें भी निर्मित की गई। विष्णु की अष्टभुजी प्रतिमा के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण[206] में वर्णन है कि उनके दायें हाथों में क्रमशः खड्ग, गदा, बाण और कमल तथा बायें हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र होना चाहिये। गुप्तकालीन स्थानक विष्णु प्रतिमाओं में विष्णु रूपों, मानवीकृत स्वरूपों, आयुधों और आयुध रूपों का प्रथम बार प्रस्तुतीकरण किया गया। इसके अतिरिक्त प्रभामण्डल सहित किरीट का

---

201 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0 स0 2026, पृ0 92

202 सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमाएं, दिल्ली, 1982, पृष्ठ-44

203 शुक्ल, विमल चन्द्र; भारतीय कला के विविध आयाम, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-69

204 स्कन्दपुराण, विष्णुखण्ड, 10/32

205 (समा0) बलराम, श्रीवास्तव; रूपमण्डन, वाराणसी, वि0सं0 2021, पृष्ठ-54

206 मत्स्य पुराण, 257.7 8, बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ-118.

अलंकृत स्वरूप, सिंहमुख, मकर, मुक्ताजाल आदि का अलंकरण भी प्रारम्भ हुआ। आभूषणों तथा वस्त्रों के अलंकरण में नवीन अभिव्यक्ति प्रस्तरों में हुई।[207]

गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से विष्णु की स्थानक चतुर्भुज प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं, जिसमें झूंसी तथा भीटा से प्राप्त प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं। ये प्रतिमायें इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। झूंसी से प्राप्त (इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 952)[208] चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमा प्रारम्भिक पांचवी शती ई0 के लगभग की मानी जाती है। इस प्रतिमा का प्रभामण्डल गोलाकार छोटा पर किरीट सहित मालाओं से अलंकृत है। प्रतिमा वनमाला, एकावली आदि धारण किये हुए है। प्रतिमा के ऊपर के दाहिनें हाथ में फल है तथा बायाँ हाथ शंख को किनारे से पकड़े हुए है। नीचें के हाथों में बायाँ पाद-पीठिका पर रखा हुआ चक्र के ऊपर रहा होगा क्योंकि यह हाथ क्षतिग्रस्त है, इसमें चक्र की अट्ठारह तीलियाँ स्पष्ट दिखायी देती हैं, जबकि दाहिना हाथ गदा की ऊपरी मूठ पर विराजमान है।[209]

भीटा से प्राप्त (इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 440)[210] विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमा बहुत ही क्षतिग्रस्त अवस्था में है। फिर भी आभूषणों में गले में हार, कुण्डल, भुजबन्ध आदि उल्लेखनीय है। सिर पर किरीट सुशोभित है। विष्णु के ऊपर के बायें हाथ में चक्र, नीचे के हाथ में शंख और ऊपर के दाहिनें हाथ में गदा है, जिसकी मूठ ऊपर की ओर उठी हुई है। सामने के दाहिनें हाथ में सम्भवतः फल लिये हुए हैं। यह प्रतिमा लगभग चौथी शताब्दी ई0 के अन्तिम चरण की मानी जाती है।[211]

इसी प्रकार इलाहाबाद के निकट ऊँचडीह (इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 857) से प्राप्त विष्णु प्रतिमा मूर्तिकला की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। यह

---

207 सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ-43

208 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, 1970, पृष्ठ-88, प्लेट Lxii, चित्रफलक क्रमसंख्या 12(A)

209 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ-88.

210 चन्द्र, प्रमोद; वही, पृष्ठ 72, प्टेल L

211 चन्द्र, प्रमोद; वही, पृष्ठ 72.

प्रतिमा ज्यादा खडित नहीं है। विष्णु ऊपरी बायें हाथ में शंख को किनारे से पकड़े हुए हैं। नीचे का हाथ चक्रपुरुष के सिर पर है। गुप्तकालीन विष्णु प्रतिमाओं में आयुध-पुरुष का यह प्रथम अंकन माना गया है।[212]

कौशाम्बी से विष्णु की अष्टभुजी प्रतिमा प्राप्त हुई है, जो राज्य संग्रहालय लखनऊ में (राज्य संग्रहालय लखनऊ, संख्या 49.247) प्रदर्शित है।[213] यह प्रतिमा मथुरा संग्रहालय की संख्या 50.3550 तथा संख्या 15 1010, प्रतिमाओं के समान होती है। प्रतिमा किरीट, कुण्डल, भुजबन्ध इत्यादि से सज्जित है। इसका समय लगभग दूसरी शती ई0 माना जाता है। विष्णु की एक मृण्मयी अष्टभुजी प्रतिमा कानपुर के भीतरगांव से प्राप्त हुई है।[214] यहाँ विष्णु दो आयुध पुरुषों के बीच में खड़े हैं। उनके दाहिनी तरफ गदा देवी और बायीं तरफ चक्रपुरुष है। दोनों का सिर खडित हो चुका है। विष्णु यहाँ सभी आभूषणों से सुसज्जित हैं।

उपर्युक्त प्रतिमाओं के अतिरिक्त, विष्णु की शयन प्रतिमायें तथा विश्व रूप विष्णु प्रतिमायें भी प्राप्त हुई है :-

(iii) शयन (लेटी) प्रतिमा :- विष्णु की शयन प्रतिमाओं में उनका नवीन एवं विलक्षण रूप प्राप्त होता है। विष्णु के अतिरिक्त अन्य किसी भी देवता की जलशायी अथवा शेषशायी रूप की प्रतिमायें नहीं प्राप्त होती हैं।[215] शेषनाग पर शयन करनें से शेषशायी और क्षीरसागर जल में शयन करनें से उन्हें जलशायी कहा गया है। इसी प्रकार अनन्त काल तक शयन करनें से वे अनंतशायी भी कहे गये हैं।[216] इसलिए विष्णु की शयन प्रतिमायें जलशायी अथवा शेषशायी विष्णु प्रतिमाओं के नाम से भी जानीं जाती हैं। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में विष्णु के शेषशायी रूप को पद्मनाभ

---

212 सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 36.

213 जोशी, एन0पी0, कैटलॉग ऑव दि बाह्मिनकल स्कल्पचर इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, 1972, पृष्ठ-80, चित्रफलक क्रम संख्या 11(B)

214 मार्ग नं0 22/2, फलक 8

215 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा-विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ-250.

216 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0, भारतीय शिल्प संहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 107.

कहा गया है। इसके अनुसार-जल के मध्य स्थित शेषनाग के शरीर की बनी हुई शय्या पर चार भुजा वाले पद्मनाभ शयन करते हैं:-

जलमध्यगतः कार्यः शेषः पन्नगदर्शनः।
फणपुञ्जमहारत्नदुर्निरीक्ष्यः शिरोधरः।।
देवदेवस्तु कर्त्तव्यस्तत्र सुप्तश्चतुर्भुजः।[217]

प्रभु का एक पैर लक्ष्मी जी की गोद में तथा दूसरा शेषशय्या पर रखा रहता है। उनकी चारों भुजाओं में से, एक भुजा घुटनें तक फैली रहती है, एक नाभि तक जाकर स्थित रहती है, एक हाथ को वे अपनें सिर के नीचे रखकर सिर को थामें रहते हैं और एक हाथ में उनके संतान मञ्जरी रहती है। नाभि प्रदेश से ऊपर उठे हुए कमल से ब्रह्मा उत्पन्न होकर वहीं विराजमान रहते हैं[218], तथा कमल नाल के समीप मधु और कैटभ दैत्य रहते हैं। विष्णु के सभी अस्त्र तथा आयुध, शेष के समीप पुरुष रूप में बनाये जाते हैं।[219] शिल्परत्न, पद्मपुराण तथा अपराजितपृच्छा आदि ग्रंथों में भी इस रूप का उल्लेख हुआ है।[220] रूपमण्डन का विवरण इस प्रकार है कि:- जलशायी विष्णु शेष की शैय्या पर सोये हैं। दाहिने हाथ में या तो दण्ड है या उस पर उनका सिर टिका है। बाएं हाथ में पुष्प है। उनकी नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा हैं और उनके चरणों के पास श्री और भूमि हैं। दोनों पार्श्व में मधु और कैटभ तथा निधि और अस्त्र आदि स्वरूप है[221]:-

सुप्तरूपं (सुप्तरूपः) शेषतल्पे दक्षो
दण्ड भुजोऽस्य तु [दक्षेदण्डोभुजेऽस्य तु]।
शिरोधरो वा वामस्तु सपुष्पोऽयं जलेशयः।।
तन्नाभिपंङ्कजे धाता श्री भूमि-
वशिरोन्थिगे [श्री भूमिचरणान्तिके]।
निध्यस्रादिस्वरूपाणि पार्श्वयोर्मधुकैटभो।।

---

217 विष्णुधर्मोत्तरपुराण 81/2-3.
218 विष्णुधर्मोत्तरपुराण 81/1, 3-7, मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 253 तथा 254.
219 विष्णु धर्मोत्तर पुराण 81/8 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 254.
220 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ-251.
221 (समा0) बलराम श्रीवास्तव; रूपमण्डन, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 140, श्लोक 29-30.

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में विष्णु के शेषशायी स्वरूप की मृण्मयीमूर्ति अलेक्जेण्डर कनिघंम को कानपुर के भीतरगांव मन्दिर से प्राप्त हुई है।[222] सम्प्रति यह कलकत्ता संग्रहालय में संग्रहीत है। यह विष्णु की द्विभुजी प्रतिमा है, जिसमें वह शेषनाग के गुंजलकों पर लेटे हुए प्रदर्शित हैं। उनकी नाभि से एक कमल खिला है, जिसके ऊपर ब्रह्मा जी बैठे हैं, तथा उनके चरणों के निकट दो राक्षस मधु और कैटभ युद्ध मुद्रा में दिखाये गए प्रदर्शित हैं। यह मन्दिर लगभग पांचवी शताब्दी ई0 के उत्तरार्द्ध का माना जाता है।[223] इसी मन्दिर की पश्चिम दीवार के बीचों बीच विष्णु के वराह अवतार का चित्रण है, जिसके आधार पर कनिंघम ने यह कहा था कि यह मन्दिर विष्णु को समर्पित था।[224]

(IV) विश्वरूप विष्णुः—विष्णु के 'विश्वरूप' को उनके विराट स्वरूप की संज्ञा दी जाती है। ऋग्वेद के अनुसार विष्णु के इस स्वरूप में सम्पूर्ण सृष्टि समाहित है।[225] विष्णु पुराण में उल्लिखित है कि अखिल विश्व उनकी शक्ति से व्याप्त है।[226]

यस्माष्टमिदं विश्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।

तस्मात्स प्रोच्यते विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात्।।

विष्णुधर्मोत्तर पुराण में[227] विष्णु के विश्वरूप की कल्पना चारमुख (प्रमुख चार अवतार) तथा आठ भुजाओं वाले सर्वशक्तिसम्पन्न देव के रूप में प्राप्त होती हैं।[228]

---

[222] कनिंघम, अलेक्जेण्डर, अर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वाल्यूम XI, पृष्ठ 45, सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 54

[223] बनर्जी, जे0एन, दि डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, कलकत्ता 1956, पृष्ठ-407, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908-09, पृष्ठ-11.

[224] कनिंघम, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, XI, पृष्ठ 42

[225] ऋग्वेद, 1.154.2.

[226] विष्णुपुराण, 3:2:5.

[227] विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 44:11, 12, 13.

[228] सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 46

मुखाश्च कार्याश्चत्वारो बाहवो द्विगुणास्तथा।
सौम्यं तु वदनं पूर्व नारसिंहम् तु दक्षिणम्।।
कपिलं पश्चिमं वक्त्रं तथा वराहमुत्तरम्।
तस्य दक्षिण हस्तेषु बाणाक्षमुसलादयः।।

इसके अनुसार विष्णु प्रतिमा निर्माण के समय पूर्व की ओर का, सामने का मुख सौम्य और स्मित भाव लिये हुए, दाहिना मुख नृसिंह, पृष्ठ भाग कपिल तथा बायीं ओर वराह का मुख होना चाहिये। इसे वैकुण्ठ विष्णु के नाम से भी जाना जाता है। रूपमण्डन में विश्वरूप विष्णु की बीस भुजायें बनाने का विधान बतलाया गया है।[229]

कला में विष्णु की विश्वरूप प्रतिमायें गुप्तकाल से मिलती है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में गढ़वा से लगभग पाँचवी शताब्दी ई0 की षड्भुजी विश्वरूप विष्णु की प्रतिमा एक पाषाण खण्ड (लम्बाई में 13 फुट से अधिक) पर उत्कीर्ण मिली हैं। यह प्रतिमा सर अलैक्जैण्डर कनिंघम को प्राप्त हुई थी, परन्तु उन्होंने इस प्रतिमा की अभिव्यक्ति को समझनें में अपनी असमर्थता प्रकट की थी, परन्तु यह स्वीकार किया था कि यह प्रतिमा ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित है।[230] सम्प्रति यह राज्य संग्रहालय लखनऊ (संख्या 223 बी एवं सी) में प्रदर्शित है। यह विष्णु की स्थानक प्रतिमा है, जिसमें दाहिनी तरफ सिंह की मुखाकृति और बायीं तरफ वराह की मुखाकृति स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। बीच का मुख क्षतिग्रस्त है, इसलिए निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि यह पुरुष मुखाकृति है अथवा अश्वमुखाकृति है।[231] प्रतिमा में विष्णु को ग्यारह रुद्रों, बारह आदित्यों, बलराम, इन्द्र, सरस्वती आदि से घिरा हुआ दिखाया गया है।[232]

---

[229] (समा0) बलराम श्रीवास्तव, रूपमण्डन, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 58.
[230] कनिंघम, आर्कियोलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, वाल्यूम X, पृष्ठ 14.
[231] जोशी, एन0पी0; कैटलॉग आफ दि ब्राह्मिनिकल स्कल्पचर इन स्टेट, म्यूजियम, लखनऊ, 1972, पृष्ठ 85, चित्रफलक क्रम संख्या 12(B)
[232] वही, पृष्ठ 85, बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन, मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 130.

गढ़वा से प्राप्त लगभग पांचवी शताब्दी ई० के एक द्वार-खण्ड पर भीम-जरासंध के युद्ध का दृश्य प्रदर्शित है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ (सं० एच 88) में संग्रहीत है।[233] इसमें कृष्ण तथा अर्जुन भी अंकित किये गए हैं। कृष्ण चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा लिए हुए हैं किन्तु उनके हाथ में पद्‌म का अभाव है। कृष्ण के पीछे अर्जुन अपनें दाहिनें हाथ में बाण और धनुष को लिये हुए हैं। सबसे आगे भीम और जरासंघ की लड़ाई हो रही है। भीम अपने हाथों से जरासंध की गर्दन को पकड़े हुए हैं तथा उसे नीचे पटकनें ही वाले हैं। सबसे पीछे स्त्रियों का अंकन है जो इस युद्ध को आश्चर्य से देख रही हैं। यह फलक इस तथ्य की पुष्टि करता है कि गुप्तकाल में ही सर्वप्रथम कृष्ण और कृष्ण से सम्बन्धित विविध कथानकों का मार्मिक अंकन कला में प्रारम्भ हुआ और अपनी चरम सीमा तक परिष्कृत भी हुआ।[234] गुप्तकाल में कृष्ण की बाल–लीला ही अधिक प्रसिद्ध रही।[235] इनमें नन्द के द्वारा कृष्ण को गोकुल पहुंचाना, कालिया नाग का दमन, तथा कृष्ण के द्वारा गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण करना आदि कथानक लोकप्रिय रहे। कृष्ण के गोवर्धनधारी रूप की एक पाषाण प्रतिमा इलाहाबाद जिले के कड़ा नामक स्थान से प्राप्त हुई है। सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है।[236] यह प्रतिमा लगभग पांचवी शताब्दी ई0 के उत्तरार्द्ध की मानी जाती है। इसमें कृष्ण की मुखाकृति क्षतिग्रस्त है। वह अपने बायें हाथ की हथेली पर पर्वत को ऊपर उठाये हुए हैं। दाहिना हाथ केहुनी के नीचे से टूट गया है। दायीं ओर सिंह की आकृति है। आभूषणों में गले में दो लड़ियों का हार तथा कमर में कटिबंध है।[237] गंगा–यमुना के निचले दोआब के अनेक क्षेत्रों में कृष्ण–लीला के समान ही राम की लीला भी

---

[233] राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या एच 88, चित्रफलक क्रम संख्या13(A) एवं 13(B)

[234] सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, प्रथम खण्ड, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 86.

[235] देसाई, कल्पना; आइकोनोग्राफी ऑव विष्णु, दिल्ली, 1973, पृष्ठ 124.

[236] चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 89, प्लेट LXIII, इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 259.

[237] चन्द्र, प्रमोद; वही, पृष्ठ 89, सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली,1982,पृ084 तथा 85.

पर्याप्त लोकप्रिय रही। इसका प्रमाण श्रृंग्वेरपुर से प्राप्त लगभग पाँचवी शती ईसवी का वह पाषाण खण्ड है, जिस पर वानर सखाओं के साथ राम तथा लक्ष्मण की मूर्ति उत्कीर्ण है।[238] सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है।[239]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों के उत्खनन से ज्ञात विष्णु प्रतिमायें, कलात्मकता की दृष्टि से अनुपम है। इनमें से अधिकांश प्रतिमायें देश के विभिन्न संग्रहालयों में प्रदर्शित मिलती हैं।

शिव प्रतिमायें

वैदिक धर्म के महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय देवता शिव का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। शिव के दो रूप मानें जाते हैं:-शिव तथा रुद्र। शिव का सम्बन्ध कल्याणकारी एवं मंगलमय कार्यो से है तथा रुद्र संहार कार्य एवं विश्व के प्रलय से सम्बन्धित मानें जाते हैं।[240] वैदिक काल में शिव का रुद्र रूप ही अधिक लोकप्रिय रहा।[241] यजुर्वेद के शतरुद्रीय अध्याय तथा तैतिरीय आरण्यक में समस्त जगत रुद्र रूप बतलाया गया है।[242] रुद्र, सर्व, उग्र, अशनि, भव, पशुपति, महादेव तथा ईशान में प्रथम चार उनके उग्र रूप तथा अन्तिम चार उनके मंगलरूप के द्योतक हैं।[243] पाणिनि के सूत्रों में रुद्र के भव, शर्व, मूढ़ आदि नामों का उल्लेख है।[244] पंतजलि ने रुद्र तथा शिव आदि रूपों को 'पशुना रुद्रं यजेत्'[245] या 'शिवां रुद्रस्य भिषजी'[246] कहकर अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया है। महाभारत में शिव के लिए अनेक

---

238 पाण्डेय, संगम लाल; श्रृंग्वेरपुरगौरवम्, इलाहाबाद, 1994, पृष्ठ 124
239 इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 261.
240 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 110
241 ऋग्वेद 6/4/10, 4/12/16, 9/13/3, मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 260.
242 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-122.
243 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 260.
244 पाणिनि की अष्टाध्यायी, 4/1/49, वही, पृष्ठ 260.
245 कीलहार्न, महाभाष्य, भाग 3 पृष्ठ 331.
246 कीलहार्न, महाभाष्य, भाग 3, पृष्ठ 403.

नाम प्रयुक्त हुए हैं यथाः-शंकर, ईशान, शर्व, नीलकण्ठ, त्रयम्बक, धूर्जटि, नन्दीश्वर, शिश्विन्, व्योमकेश, महादेव तथा शितिकण्ठ।[247] रामायण में भी शिव का उल्लेख प्राप्त होता है।[248] रूपमण्डन में शिव के सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईश, मत्युञ्जय, किरणाक्ष, श्रीकण्ठ, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, सदाशिव और त्रयम्बक इन द्वादश नामों की सूची दी गई है।[249]

भारत में शिवोपासना की प्राचीनता का निश्चित अनुमान करना तो कठिन है, परन्तु शिव तथा उनसे सम्बन्धित धर्म की प्राचीनता प्रागैतिहासिक युग तक जाती है। मोहनजोदड़ो से प्राप्त एक मुहर पर सिर पर सींग धारण किये हुए, चौकी पर पद्मासन मुद्रा में बैठे हुए पुरुष को सर जॉन मार्शल ने ऐतिहासिक काल के पशुपति-शिव से समीकृत किया है।[250]

शिव पूजा के पुरातात्विक प्रमाण स्पष्ट रूप से शुंग काल से मिलनें लगते हैं। भीटा से प्राप्त अभिलेखयुक्त पंचमुखी शिवलिंग ई0पू0 दूसरी शती का माना जाता है।[251] मार्शल को भीटा की खुदाई में[252] बड़ी संख्या में मिट्टी की मुहरें तथा ठप्पे प्राप्त हुए हैं, जिन पर शिव प्रतीक : नन्दी, त्रिशूल इत्यादि अंकित हैं, जो यह प्रमाणित करते हैं कि इस क्षेत्र में शैव धर्म लोकप्रिय था। मुहर संख्या-4, 14, 15, 16, 23, 30, 31, 37, 38, 45, 46, 47, 48, 49, 52, 54, 76, 77, 79, 80, 82, 83, 93 तथा 112 शैव धर्म से सम्बन्धित मानी जाती हैं।[253] मुहर संख्या चार में शिव के वाहन नन्दी के साथ 'रुद्राचार्य' लेख अंकित है।

---

[247] मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 261

[248] रामायण 2/17/12, मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा-विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ-260-261

[249] रूपमण्डन, (समा0) बलराम श्रीवास्तव; वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 60-63

[250] श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र; भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ 166, पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 18-19

[251] जोशी, एन0पी0; कैटलॉग ऑव दि ब्राहम्नीकल स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम, प्रथम भाग, लखनऊ, 1972, पृष्ठ 99-101.

[252] सर जॉन मार्शल; आर्कियोलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृष्ठ 47-60.

[253] मार्शल, वही, पृष्ठ 47-60.

मुहर संख्या चौदह पर त्रिशूल तथा मुद्रालेख 'कालेश्वर प्रीयताम्' अंकित है। मुहर संख्या तेइस पर मुद्रालेख 'भगवतो महेश्वरस्य' मिलता है तथा मुद्रा संख्या तीस पर 'महादेव्याः श्री रुद्रमत्या'' लेख अंकित है। इसी प्रकार अन्य मुहरें भी लेख तथा शिव प्रतीक से शैव धर्म से सम्बन्धित मानी जाती हैं। कुषाण शासक विम कैडफिसिस के सिक्कों पर शिव तथा उनके वाहन नन्दी का अंकन प्राप्त होता है।[254] विम कैडफिसस के पश्चात् कनिष्क प्रथम से लेकर प्रायः अन्तिम कुषाण शासकों के सिक्कों पर शिव का अंकन हुआ है। इनके सिक्कों पर प्राय ओएसो लेख अंकित मिलता है। कुषाणों के पश्चात् उत्तर भारत में भारशिव नागों का प्रभुत्व स्थापित हुआ। वे अपने कंधों पर शिवलिङ्ग वहन करते थे। इसलिए वे भारशिव कहलायें।[255] इनके समय में मथुरा, पद्मावती, विदिशा आदि स्थानों में शैव धर्म का बहुत विकास हुआ।[256]

गुप्त राजाओं के शासनकाल में वैष्णव धर्म के समान शैव धर्म की लोकप्रियता एवं प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई। गुप्तकालीन अभिलेखों में शिव के ईश, महाभैरव भूतपति, हर, जयेश्वर, कपालेश्वर, कोकमुखस्वामी, महेश्वर, पशुपति, पिनाकी, शंभु, शर्ब, शिव, स्थाणु, शूलपति, शूर, भोगेश्वर, त्रिपुरान्तक, भवस्तज आदि नाम मिलते है।[257] इस काल के साहित्य में भी शिव के चरित्र, महिमा और गुणों का वर्णन हुआ है। कालीदास ने 'कुमारसम्भव' में शिव-महिमा का गुणगान किया है। इस काल के पुराण भी शिव माहात्म्य का प्रतिपादन करते हैं।[258] वायुपुराण में शिव को अन्य देवों में महान कहा गया है तथा 'महादेव' के नाम से अभिहित किया गया है।[259] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के तृतीय खण्ड के अध्याय 44, 48, 55 तथा

---

[254] मार्शल, वही, पृष्ठ 53, मुहर संख्या 37(b)
[255] सरकार, डी0सी0, सेलेक्ट इन्स्क्रप्शन्स, बिअरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन, वाल्यूम I, दिल्ली, 1991, पृष्ठ 443.
''असभारसनिवेशितशिवलिगोद्वहनशिवसुपरितुष्टसमुत्पादितराजवशाना'
[256] बाजपेयी, कृष्णदत्त; ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख, जयपुर, 1992, पृष्ठ 48.
[257] सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ-19
[258] श्रीवास्तव, के0सी0; भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ 168.
[259] वायु पुराण, 5/41

59 में पृथक-पृथक दृष्टि से शिव के स्वरूप एवं उनकी प्रतिमा निर्मिति का विशद् विवेचन किया गया प्राप्त होता है। गुप्त शासकों में सर्वप्रथम समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में शिव का उल्लेख हुआ है। यहां पशुपति अर्थात् शिव के जटाजूट से गंगा के निकलने की बात कही गई है।[260] उदयगिरि गुहा लेख से विदित होता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का मंत्री वीरसेन शैव था तथा उसने उदयगिरि पहाड़ी पर एक शैव गुफा का निर्माण कराया था।[261] कुमारगुप्त प्रथम के समय में भी करमदण्डा तथा खोह में शिवलिङ्गों की स्थापना की गई थी।[262] इस प्रकार गुप्त काल में विष्णु के समान शिव भी प्रमुख देवता रहे।

कला में शिव प्रतिमायें दो रूपों में प्राप्त होती हैं:-

(I) लिङ्ग के रूप में,

(II) मानवीय प्रतिमाओं के रूप में।

(I) लिङ्ग के रूप में:-'लिङ्ग पुराण' की परिभाषा के अनुसार 'प्रलयकाल' में सारी सृष्टि जिसमें लीन होती है और पुनः 'सृष्टिकाल' में जिससे सृजन होता है, उसे लिङ्ग कहते हैं:-

लयं गच्छन्ति भूतानि संहारे निखिलं यतः।
सृष्टिकाले पुनः सृष्टिस्तस्माल्लिङ्गमुदाहृतम्।।[263]

रूपमण्डन में लिङ्ग की प्रशंसा में कहा गया है कि:-

'लिङ्ग नान्याश्रितं लिङ्गमाश्रिताः सर्वदेवताः।'[264]

अपराजितपृच्छा में शिव तथा शक्ति दोनों को लिङ्ग का प्रतीक माना गया है

---

[260] सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 19.
[261] फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम इन्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, सं0 6, पृष्ठ 34-36, 'भक्त्या भगवतश्शम्भो-र्गुहामेतामकारयत्
[262] श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, इलाहाबाद, 1988, पृष्ठ 168
[263] रूपमण्डन, (समा0) बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 69, लिंङ्ग पुराण 99/8
[264] वही, पृष्ठ 69.

तथा यह कहा गया है कि यह सृष्टि इन्ही दोनों के संयोग से उत्पन्न हुई है।[265] लिङ्ग की स्थापना शैव मंदिरों के गर्भगृह में की जाती है। विष्णुधर्मोत्तर पुराण[266] में शिव प्रतीक लिङ्ग के तीन भाग कहे गये हैं :-

(क) भोगपीठ;

(ख) भद्रपीठ;

(ग) ब्रह्मपीठ;

लिङ्ग का सबसे ऊपरी भाग गोलाकार बनता है, जो भोगपीठ कहलाता है। भोगपीठ की पूजा की जाती है इसलिए इसे 'पूजाभाग' या 'रुद्रभाग' भी कहते हैं। इसके नीचे का भाग आठ कोणों वाला भद्रपीठ अथवा 'विष्णुभाग' कहलाता है तथा उसके नीचे का भाग चौकोर रहता है, जिसे ब्रह्मपीठ या 'ब्रह्माभाग' कहते हैं। शिल्प ग्रन्थों में तीन प्रकार के लिङ्गों का वर्णन हुआ है जो क्रमशः निष्कल, सकल तथा मिश्र है।[267] रूपमण्डन[268] के अनुसार लिङ्ग दो प्रकार के होते है :-

(अ) चल लिङ्ग;

(आ) अचल लिङ्ग।

प्रसिद्ध विद्वान गोपीनाथ राव नें भी लिङ्ग को इन्हीं दो प्रमुख प्राकारों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया है।[269]

(अ) चल लिङ्ग :- यह आकार में छोटे होते हैं तथा सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाये जा सकते हैं, तथा कहीं पर भी स्थापित करके इनकी उपासना की जा सकती है। इलाहाबाद संग्रहालय में झूँसी से प्राप्त मृण्मय चतुर्मुखी

---

[265] मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 262, अपराजितपृच्छा, 196/61-62

[266] विष्णुधर्मोत्तर पुराण, खण्ड 3, अध्याय 74/2-5

[267] मिश्र. इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972 पृष्ठ 263

[268] रूपमण्डन, (समा0) बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 69,

[269] राव, टी0ए0 गोपीनाथ; एलीमेन्ट्स आव हिन्दू आइकोनोग्राफी, वाल्यूम - II, भाग-1, मद्रास, 1914, पुनर्मुद्रण, दिल्ली, 1985 पृष्ठ -74

शिवलिङ्ग संख्या 3388 ऊँचाई 5 सेण्टीमीटर इसी श्रेणी का है।[270]

चल लिङ्गों के निर्माण में प्रयोग की जाने वाली सामग्री के अनुसार इनके छः प्रकार बताये गये हैं[271] :- (1) मृण्मय; (2) लौहज ; (3) रत्नज; (4) दारुज; (5) शैलज; (6) क्षणिक। रूपमण्डन[272] में रत्नज, शैलज, मृण्मय और दारुज चललिङ्गों का ही विवेचन है।

(आ) अचल लिङ्ग :- अचल लिङ्गों की कोटि में सुप्रभेदागम (शैवागम) के अनुसार स्वायम्भु, दैवत, गाणपत्य, असुर, पुराण, राक्षस, मानुष और बाण लिङ्ग आते हैं। रूपमण्डन में केवल बाण और मानुष लिङ्ग की ही विशेष चर्चा है।[273] इसमें बाणोपासना की महत्ता का विशेष वर्णन है। बाणलिङ्ग के विषय में यह प्रचलित है कि जो तिरपन बार तुला पर तौले जाने पर भी सामान्य भार नहीं व्यक्त करता अर्थात हर बार उसका भार घटता-बढ़ता रहता है। वही बाणलिङ्ग है, क्योंकि ईश्वर का प्रतीक बाणलिङ्ग ईश्वर की ही तरह अमेय है। सूत्रधार-मण्डन के अनुसार वाराणसी, प्रयाग, कुरुक्षेत्र, सरस्वती, नर्मदा, अन्तर्वेदी, केदार, प्रभास आदि बाणलिंग के उत्पत्ति स्थल हैं और यहां बाणोपासना का विशेष महत्व है।[274]

रूपमण्डन में विविध प्रकार के द्रव्य से बने लिङ्गों के प्रासादों के विषय में मत है कि काष्ठलिङ्ग के लिये प्रासाद या तो काष्ठ का हो या ईटों का, परन्तु धातु और पत्थर के लिङ्गों के लिए क्रमश. धातु और पत्थर का बना प्रासाद

---

[270] काला, एस0सी0; टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, दिल्ली, 1980, पृष्ठ 104, प्लेट 291

[271] राव, टी0ए0, गोपीनाथ; एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, वाल्यूम -II, भाग - 1, मद्रास, 1914, पुर्नमुद्रण दिल्ली, 1985, पृष्ठ - 78, मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ - 264

[272] रूपमण्डन, (सम्पा0) बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ - 70

[273] वही, पृष्ठ 70

[274] वही, पृष्ठ 71

समीचीन है।[275]

मानुष लिङ्ग की विभिन्न श्रेणियों में मुखलिङ्ग भी एक अलग श्रेणी में आता है।[276] इस श्रेणी के लिङ्ग में एक से लेकर पांच मुख तक बनानें का विवरण मिलता है।[277] विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार[278] शिव के पाँच मुख – सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरूष तथा ईशान क्रमश· पृथ्वी, जल, तेजस्, वायु एवं आकाश के प्रतीक हैं :–

सद्योजांत वामदेवमघोरं महाभुज।
तथा तत्पुरुषं ज्ञेयमीशानं पञ्चमंमुखम्।।[279]

रूपमण्डन के अनुसार मुखलिङ्ग एक, तीन और चार मुखों वाले ही बनाने चाहिये। एकमुखी लिङ्ग में मुख सामने की ओर, तीन मुख लिङ्ग में एक मुख बीच में और दोमुख अगल–बगल बनायाजाना चाहिये। चतुर्मुख लिङ्ग में चार मुख चार दिशाओं के क्रम में बनते हैं जिसमें पश्चिम की ओर का मुख शुभ्र, उत्तर का लाल, दक्षिण का काला और भयंकर तथा पूर्व की ओर के मुख की दीप्ति अग्नि सदृश रहती है। ये चारों मुख क्रमशः सद्योजात, वामदेव, अघोर और तत्पुरूष के प्रतीक हैं। रूपमण्डन में द्विमुख और पंञ्चमुख शिवलिङ्गों का विधान नहीं बताया गया है। इसके अनुसार पाँचवा मुख जो ईशान का प्रतीक है, योगियों के लिए भी अगोचर है और यह व्यक्त नहीं होता, अदृश्य रहता है, अतः मुखलिङ्ग का निर्माण करते समय

---

275 रूपमण्डन, (समा0) बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, संख्या 2021, पृष्ठ – 73

276 राव, टी0ए0, गोपीनाथ; एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, वाल्यूम II, भाग 1, मद्रास, 1914, पुनर्मुद्रण, दिल्ली,1985,पृष्ठ 97

277 दूबे, लालमणि; अपराजितपृच्छा, एक्रिटिकल स्टडी, इलाहाबाद, 1985, पृष्ठ 266

278 विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 48/1.

279 विष्णु धर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 48/1.

पाँचवा मुख नहीं बनाना चाहिये।[280]

पञ्चमञ्च तथैशांन योगिनाभप्यगोचरम्।[281]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में इलाहाबाद जिले में स्थित भीटा से अभिलेख-युक्त पंचमुखी शिवलिंग प्राप्त हुआ है, जो सम्प्रति लखनऊ के राज्य संग्रहालय में सुरक्षित है।[282] प्रारम्भिक ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण यह शिवलिङ्ग लगभग ई0 पू0 द्वितीय शती का माना जाता है। लिङ्ग के शीर्ष भाग पर द्विभुजी शिव आकृति बनी हुई प्रतीत होती है, यद्यपि इस आकृति के दाहिनी तरफ का कुछ हिस्सा अब टूट गया है किन्तु दोनों कानों में कुण्डल तथा केश-विन्यास स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। दाहिना हाथ कंधे तक अभय-मुद्रा में है, जिसमें हाथों की अंगुलियाँ तथा अँगूठी अब भी शेष है तथा दृष्टव्य है। बायाँ हाथ लगभग वक्ष तक है। दोनों हाथों मे कंगन स्पष्टतः परिलक्षित होते हैं। इस आकृति के बायें कन्धे से दाहिनी तरफ नाभि के ऊपर से, एक दोहरी लकीर जाती हुई दिखाई पड़ती है जो पवित्र सूत्र अर्थात् यज्ञोपवीत के समान प्रतीत होती है।

इस शीर्ष शिव आकृति के नीचे लिङ्ग में चार मुख चार कोनों पर बने हुए हैं। जिसमें सामने की तरफ के मुखों में, एक मुख में नुकीली मूछें तथा होठों के किनारे से निकले हुए दो लम्बे दाँत दिखाई पड़ते हैं। आभूषणों में गले में हार तथा कानों में कुण्डल सुशोभित है।[283] दूसरी मुखाकृति सामान्य भाव लिये हुए हैं तथा आभूषणों से सुसज्जित है।[284]

इस लिङ्ग के पीछे के हिस्से पर भी दो मुखाकृतियां दिखाई देती हैं। इसमें

---

280 रूपमण्डन, (समा0) बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ-76

281 वही, पृष्ठ 76, रूपमण्डन 4/94.

282 जोशी, एन0पी0, कैटलॉग ऑफ दि ब्राहमनीकल स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम, प्रथम भाग, 1972, पृष्ठ-99-100, आकृति संख्या 24-27, चित्रफलक क्रमसंख्या 14.

283 चित्रफलक क्रम संख्या 15(A).

284 चित्रफलक क्रम संख्या 15(B)

पहली मुखाकृति शान्त भाव वाली है तथा पूर्ववर्णित प्रकार के आभूषणों से अलंकृत है।[285] इसके सिर के शीर्ष भाग पर गाँठ जैसी बनावट दिखाई देती है जो सम्भवतः शिव के 'कपर्द' को प्रदर्शित करती है। इसके बाद की मुखाकृति मुंडित सिर वाली है और कानों में तथा गले में कोई आभूषण भी नहीं पहने हुए हैं।[286]

इस लिङ्ग पर उत्कीर्ण लेख का पाठ इस प्रकार है.-

खजहुती पुतनं (f) लंगो पतिथापितो।

वासठी पुतेन नाग सिरीना पियतं देवता।।

अर्थात् भगवान को प्रसन्न करनें के लिए खजहुती का लिङ्ग वासठी के पुत्र नागश्री के द्वारा बनवाया गया है।[287]

भीटा से लगभग छठी शताब्दी ई0 के एकमुखीलिङ्ग का उदाहरण भी प्राप्त हुआ है, जो सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है (संख्या 701)[288]। यह त्रिनेत्र युक्त है जिसके शिरोभाग पर जटाजूट, कानों में कुण्डल, गले में हार इत्यादि का अंकन है।

कौशाम्बी से चतुर्मुख लिङ्ग के दो उदाहरण प्राप्त हुए हैं, जो सम्प्रति लखनऊ तथा इलाहाबाद संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। लखनऊ संग्रहालय का कौशाम्बी से प्राप्त चतुर्मुख लिङ्ग (संख्या एच0 3) लगभग पांचवी शताब्दी ई0 का है। शिव के चतुर्मुखों में दक्षिण भाग की मुखाकृति टेढ़ी भौहों, लम्बे और बड़े दाँतों तथा मूंछों से युक्त

---

[285] चित्रफलक क्रम संख्या 16(A)

[286] चित्रफलक क्रम संख्या 16(B)

[287] जोशी, एन0पी0; कैटलॉग ऑव दि ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम, प्रथम भाग, लखनऊ, 1972, पृष्ठ 99-100, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट 1909-10, पृष्ठ 147-48

[288] स्टोन स्कल्पचर्स इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, वॉल्यूम II, (सम्पा0) कृष्ण देव एवं एस0डी0 त्रिवेदी, दिल्ली, 1996, पृष्ठ-35.

है।[289] यह शिव के अघोर अथवा रौद्र रूप को दर्शाती है। शेष तीन मुख शान्त मुद्रा में है जिसमें एक मुख स्त्री का है।[290] स्त्री मुख को छोड़कर शेष तीनों मुखों पर तृतीय नेत्र का अंकन है। इस प्रकार इन चतुर्मुखों में दक्षिण का मुख भैरव, पश्चिम का मुख नन्दि,[291] उत्तर का मुख उमा तथा पूर्व का मुख[292] महादेव कहलाता है।[293] कौशाम्बी से प्राप्त चतुर्मुख लिङ्ग का दूसरा उदाहरण इलाहाबाद संग्रहालय (संख्या 636) में देखा जा सकता है।[294] इसमें दक्षिण का अघोर मुख खण्डित है। यह द्वितीय शताब्दी ई0 का है।

फतेहपुर जिले में स्थित रेह नामक गॉव से, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग को 1979 ईसवी में अभिलेखयुक्त एक प्रस्तर खण्ड प्राप्त हुआ है, जिसकी आकृति शिवलिङ्ग से मिलती है।[295] इसकी समता मथुरा–संग्रहालय में सुरक्षित शिवलिङ्ग से की जा सकती है।[296] इसके निम्नोक्त भाग स्पष्ट किये जा सकते हैं, लिंगाकार शिरोभाग, मध्यवर्ती भाग, वर्त्तुलाकार स्तम्भ तथा सम्भावित आधारभूत भाग जो खण्डित हो चुका है। लेख में कुल चार पंक्तियाँ हैं, जिसमें तीन सुरक्षित अवस्था में है तथा चौथी अंशतः सुरक्षित हैः–

1. महाराजस राजराजस;
2. महांनतस त्रातारस धांमी;
3. कस जयनतस च अ प्र;
4. (जितस) मीनादरस।[297]

---

[289] चित्रफलक क्रम संख्या 17(A)

[290] चित्रफलक क्रम संख्या 17(B).

[291] चित्रफलक क्रम संख्या 18(A)

[292] चित्रफलक क्रम संख्या 18(B)

[293] बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ–132

[294] चन्द्र, प्रमोद; स्टोन, स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS पब्लिकेशन नं0 2, बम्बई, 1970,पृ0 63, प्लेट XXXVIII तथा XXXIX

[295] राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 179.

[296] वही, पृष्ठ 188, म्यूजियम उपकरण, क्रमसंख्या 15 652.

[297] शर्मा, जी0आर0; **रेह इंसक्रप्शन ऑव मिनेण्डर एण्ड दि इण्डोग्रीक इनवेजन ऑव दि गंगा वैली**, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ–7.

अभिलेख की अन्तिम पंक्ति में उल्लिखित मीनादरस शब्द का समीकरण हिन्द-यवन शासन मिनेण्डर से स्थापित किया जा सकता है।[298] जिसने मध्यदेश अर्थात आधुनिक गंगा घाटी तक अभियान (शासन) किया था। मुद्रा साक्ष्यों के द्वारा भी इसकी पुष्टि होती है। लगभग 1904 ईस्वी में विन्सेन्ट स्मिथ नें उत्तर प्रदेश के हमीरपुर जिले में स्थित पंचकुरा नामक गाँव से उपलब्ध हिन्द-यवनों की एक मुद्रा-निधि प्रकाशित की, जिसमें 98 मुद्रायें सम्मिलित थी। सबसे अधिक संख्या मिनेण्डर के सिक्कों की थी (40 मुद्रायें)। इन मुद्राओं का प्राप्ति स्थान पंचकुरा रेह से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। अतः इस बात की सम्भावना व्यक्त की जाती है कि उक्त जय स्तम्भ हिन्द-यवन शासक मिनेण्डर का ही है,[299] जिसका समय लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 माना जाता है।[300]

(II) मानवीय प्रतिमाओं के रूप में:-कला में मानवीय रूप में शिव का अंकन गुप्तकाल से पर्याप्त रूप में प्राप्त हुआ है। शिव की अधिकांश प्रतिमाओं को मन्दिरों की भित्ति पर अलंकरण के रूप में प्रदर्शित किया गया है। शिव प्रतिमाओं को रूपगत तथा भावगत विशेषताओं यथा-भुजा, आयुध और मुख की विभिन्नताओं के आधार पर दो वर्गो में विभक्त किया जा सकता है:-[301]

(क) घोर प्रतिमायें (रौद्र रूप की प्रतिमायें);

(ख) अघोर प्रतिमायें (सौम्य रूप की प्रतिमायें)

घोर प्रतिमायें संहार मूर्तियों के नाम से भी जानी जाती हैं। जिसमें देव संहार (रौद्र) रूप में राक्षसों का विनाश करते हुए विकराल भावों सहित प्रदर्शित होते हैं। कला में शिव की घोर प्रतिमायें भयंकर मुखाकृति, गोल आँखें, बड़ी मूँछे, लम्बे दाँत, सिरोभाग पर कंकाल, गले में मुण्डमाल तथा विनाशक आयुधों सहित

---

[298] राय, एस0एन0, भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-180

[299] वही, पृष्ठ-180

[300] वही, पृष्ठ-184.

[301] बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ-133.

प्रदर्शित है।[302] इस वर्ग में शिव के कामान्तक, गजासुर संहार, त्रिपुरान्तक तथा भैरव रूपों की प्रतिमायें सम्मिलित हैं। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों से शिव के घोर रूपों की प्रतिमायें नहीं प्राप्त हुई, अतः शोध-प्रबन्ध के विस्तार के भय से इनका मात्र नामोल्लेख करना ही समीचीन है।

शिव की अघोर प्रतिमायें अनुग्रह प्रतिमाओं के नाम से भी जानी जाती हैं। इन प्रतिमाओं में शिव का शान्त, अनुग्रह या कल्याणकारक भाव प्रदर्शित हुआ है। अनुग्रह प्रतिमायें स्थानक (खड़ी) या आसन (बैठी) दोनों रूपों में निर्मित की गई तथा इस वर्ग में शिव-पार्वती की संयुक्त रूप प्रतिमायें भी सम्मिलित की जाती हैं। शिव की अघोर प्रतिमाओं में-महादेव, महेश्वर, उमामहेश्वर, कल्याणसुन्दर, अर्द्धनारीश्वर तथा हरिहर रूप की प्रतिमायें उल्लेखनीय हैं।[303] शिव तथा विष्णु की संयुक्त रूप प्रतिमायें हरिहर प्रतिमाओं के नाम से जानी जाती हैं। कला में हरिहर प्रतिमाओं का बायां भाग हरि (विष्णु) का तथा दाहिना हर (शिव) का प्रदर्शित है। जटामुकुट तथा किरीट से दोनों देवताओं के शिरोभाग स्पष्ट हो जाते हैं। आभूषणों में हर के कानों में सर्पकुण्डल तथा हरि के कानों में मकरकुण्डल प्रदर्शित मिलता है। इसी प्रकार दोनों देवता के वाहन नन्दि तथा गरुड़ अधोभाग पर प्रदर्शित किये जाते हैं।[304] अर्द्धनारीश्वर प्रतिमायें शिव-पार्वती के संयुक्त रूप को प्रदर्शित करती है, जिसमें दाहिना भाग पुरुष का तथा बायां भाग स्त्री रूप का प्रतिनिधित्व करता है। कल्याण-सुन्दर प्रतिमायें शिव-पार्वती के वैवाहिक रूप को प्रस्तुत करती हैं। शिव की कतिपय प्रतिमायें नृत-मूर्ति के नाम से भी जानी जाती हैं, जो उन्हें नृत-कला में प्रवीण घोषित करती हैं।[305]

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि अधीत क्षेत्रों के उत्खनन में शिव के लिङ्ग रूप की प्रतिमायें ही अधिक प्राप्त हुई हैं। कला में शिव के मानवीय रूप की प्रतिमाओं का अंकन गुप्तकाल के पश्चात् अधिक व्यापक रूप में प्राप्त होता है।

---

[302] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-123.
[303] बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 134.
[304] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-131.
[305] वही, पृष्ठ 118.

4. अन्य देवी देवताओं की प्रतिमायें

(I) सूर्य प्रतिमायें

वैदिक काल के महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय देवता सूर्य का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद में सूर्य को जगत की आत्मा कहा गया है-

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थषश्च।[306]

महाभारत में सूर्य को देवेश्वर[307] कहा गया है। विष्णु, वायु और ब्रह्माण्ड पुराणों में उनका विशेष महत्व वर्णित है। सूर्य के साथ अन्य देव भी सम्मिलित किये गए हैं यथा-सवितृ, धाता, मित्र, अर्यमा, विष्णु, विवस्वत्, पूषन्, भग, रुद्र, वरूण आदि। ये द्वादश आदित्य के नाम से जानें जाते हैं। पुराणों में भी द्वादश आदित्यों की सत्ता को स्वीकार किया गया है।[308] सूर्य का नवग्रहों में भी सर्वप्रमुख स्थान है यथा-सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु ये नवग्रह मानें गये हैं। जिनकी पूजा सांसारिक सुख, ऐश्वर्य, समृद्धि तथा शान्ति के लिये सदा से होती रही है।[309]

कला में सूर्य के मानवीय स्वरूप का अंकन ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ तथा ईसवी सन् से लेकर बारहवीं सदी तक सर्वत्र सूर्य प्रतिमायें बनती रहीं।[310] बोधगया से प्राप्त शुंगकालीन वेदिका स्तम्भ पर सूर्य चार घोड़ों से युक्त रथ पर आरूढ़ है तथा धोती और उत्तरीय पहनें हुए हैं।[311]

सूर्य के दोनों ओर से ऊषा और प्रत्यूषा धनुष पर तीर चढ़ाए हुए अंकित हैं,

---

[306] ऋग्वेद 1/115/1

[307] महाभारत, सभापर्व 50/16.

[308] मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृ0 293-294.

[309] वही, पृष्ठ-302.

[310] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृ0 151.

[311] अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 269.

जो कि सूर्य की रश्मियों द्वारा अंधकार के विनाश का मानवीकृत स्वरूप है।[312]

कुषाणकाल की सूर्य प्रतिमाओं पर विदेशी प्रभाव दिखाई देता है। उन्हें दो अथवा चार घोड़ों से युक्त रथ पर, उदीच्य वेशभूषा में पर्यंकललितासन (पैर लटकाकर बैठे हुए) मुद्रा में बनाया गया है। वह सिर पर पगड़ी, शरीर पर भारी कोट, सलवार तथा पैरों में मोटे जूते पहने हुए हैं।[313] हिन्दू देवताओं में केवल सूर्य की प्रतिमाओं में ही जूते प्रदर्शित मिलते हैं। इस प्रकार की कुषाणकालीन अनेक सूर्य प्रतिमायें मथुरा संग्रहालय में देखी जा सकती हैं। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि सूर्य का यह वेश शकों से लिया हुआ है।[314] कुषाण नरेश कनिष्क की स्वर्ण मुद्राओं पर मिहिर नाम प्राप्त हुआ है, जिसका तादात्म्य ईरानी सूर्य देव मिहिर से किया जाता है। इस प्रकार कुषाणकाल की सूर्य प्रतिमाओं पर शक तथा ईरानी प्रभाव परिलक्षित होता है।[315]

गुप्तकाल से सूर्य प्रतिमाओं में अनेक नये कलात्मक लक्षणों का समावेश किया गया तथा उनका अंकन विविध स्वरूपों एवं सम्पूर्ण पारिवारिक जनों के साथ किया गया। सूर्य के परिवार में ऊषा, प्रत्यूषा, राज्ञी, निक्षुभा नामक उनकी पत्नियाँ तथा दण्ड और पिंगल नामक अनुचर तथा अरुण नामक सारथी सम्मिलित किया गया। इनमें ऊषा तथा प्रत्यूषा भारतीय एवं राज्ञी, निक्षुभा, दण्ड एवं पिंगल ईरानी परम्परा से लिए गये। गुप्तकाल से सूर्य के रथ में सात अश्व दिखाए जानें लगे। उन्हें दाहिनें हाथ में कमल तथा बाएं हाथ में ऊना कटार लिये हुए बनाया गया।[316]

गुप्तकालीन सूर्य प्रतिमायें स्थानक तथा आसन दोनों मुद्राओं में प्राप्त हुई हैं। स्थानक प्रतिमाओं में सूर्य का शिरोभाग मुकुट से सुशोभित रहता है। वह दोनों हाथों में कमल नाल पकड़े हुए सात घोड़ों के रथ पर प्रायः खड़ी हुई मुद्रा में प्रदर्शित हैं। उनके रथ के सारथी अरुण हैं तथा दायी और बायीं ओर दो पुरुष

---

[312] सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, नई दिल्ली, 1982, पृ० 98.
[313] अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ० 270.
[314] वही, पृ० 269.
[315] सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, नई दिल्ली, 1982, पृष्ठ 99.
[316] अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ० 344.

पिंगल तथा दण्ड और दोनों स्त्रियाँ ऊषा तथा प्रत्यूषा प्रदर्शित रहती हैं। आसन प्रतिमाओं में सूर्य को रथ पर आरूढ़ दिखाया गया है। वह पालथी मार कर बैठे हुए हैं तथा उनके दोनों हाथों में उत्फुल्ल कमल है।[317]

कला के अन्तर्गत सूर्य प्रतिमायें दो रूपों में प्रदर्शित हैं :-

(क) उत्तरी वेशभूषा में,

(ख) दक्षिणी वेशभूषा में।[318]

सूर्य प्रतिमा लक्षण के विषय में मत्स्यपुराण (अध्याय 261), बृहत्संहिता (अध्याय 58) तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण (अध्याय 67) से विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। बृहत्संहिता के अनुसार सूर्य की प्रतिमा नासिका, ललाट, जंघा, ऊरु, कपोल, ऊँचा वक्षस्थल, उत्तर देश वासियों की तरह वेश (उदीच्य वेष), पैरों से लेकर छाती तक चोलक से युक्त, दोनों भुजायें कमलों से युक्त, सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, गले में हार, कमलोदर के समान मुखकान्ति, कंचुक से आच्छादित शरीर, प्रसन्नमुख तथा रत्नों से देदीप्यमान कान्तिरूप निर्मित करना चाहिये-

नासा ललाट जङ्घोरुगण्डवक्षांसि चौन्नतानि रवेः।
कुर्यादुदीच्यवेशं गूढं पादादुरो यावत्।।
बिभ्राणः स्वकररूहे पाणिभ्यां पङ्कजे मुकुटधारि।
कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारो विहङ्गवृतः।।
कमलोदरद्युति मुखः कंचुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः।
रत्नोज्जवलप्रभामण्डलश्च कुर्तः शुभकरोऽर्कः।।[319]

विष्णुधर्मोत्तर पुराण के अनुसार सूर्य का रूप अत्यन्त सुन्दर है। उनका शरीर उत्तरी वेशभूषा से सुसज्जित रहता है। सूर्य के दोनों ओर उनके अनुचर शोभा पाते हैं। बायीं ओर सुन्दर रूप वाला दण्ड नामक अनुचर रहता है और दाहिनी ओर पिंगल नामक सेवक रहता है। वे दोनों उत्तरीय वेशभूषा में सूर्य के समान ही

---

[317] बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन पृ0 138-139.
[318] मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 296.
[319] बृहत्संहिता, 58/46-48.

सुसज्जित रहते हैं। पिंगल के हाथों में पत्र तथा लेखनी रहती है और दण्ड के हाथों में चर्म, शूल तथा दण्ड रहता है। सूर्य के रेवन्त, यम, मनु तथा द्वितय ये चार पुत्र इन्हीं के समीप स्थापित किये जाते हैं तथा राज्ञी, निक्षुभा, छाया और सुवर्चला नाम की इनकी पत्नियाँ इनके दोनों ओर उपस्थित रहती हैं।[320] मत्स्य-पुराण में भी सूर्य को उदीच्य वेश, रथारूढ़ बनाने का विधान मिलता है।[321]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में **गढवा के एक पाषाण खण्ड पर विश्वरूप विष्णु के साथ सूर्य की भी प्रतिमा प्राप्त हुई है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है (संख्या बी 223ए)।**[322] इसका समय लगभग छठी शताब्दी ई0 माना गया है। सूर्य सात घोड़ों के रथ पर आरूढ़ हैं। रथ के अग्र भाग के पीछे बड़ी कुशलता से प्रतिमा के पैर छिपे हुए हैं। मत्स्यपुराण में सूर्य प्रतिमा के पैर बनाने का निर्देश नहीं दिया गया है। अतः गढ़वा की इस सूर्य प्रतिमा के अंकन में भारतीयकरण का प्रयास दिखाई पड़ता है। सूर्य के दोनों ओर स्त्री प्रतिमायें हैं जो धनुष से बाण चला रही हैं। यह ऊषा और प्रत्यूषा की प्रतिमा है।[323] भीटा की खुदाई[324] में कतिपय ऐसी मुहरें प्राप्त हुई हैं जो सूर्य से सम्बन्धित मानी जाती हैं, इनमें मुहर संख्या 44, 51, 98, 99, 100 तथा 101 उल्लेखनीय हैं।[325] मुहर संख्या 98 में 'आदित्यस्य' लेख प्राप्त हुआ है, जो सूर्य के लिए प्रयुक्त हुआ है। इलाहाबाद संग्रहालय में आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी ई0 तक की कौशाम्बी, भीटा, कड़ा, करछना आदि स्थानों से प्राप्त सूर्य प्रतिमायें प्रदर्शित हैं।[326]

---

[320] विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 67/2-10

[321] मत्स्य पुराण, 261/1-8

[322] जोशी, एन0पी0; कैटलॉग ऑफ दी ब्राहम्निकल स्कल्पचर इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, 1972, पृ0 97-98, चित्रफलक क्रमसंख्या 19(A)

[323] सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव प्रतिमायें, नई दिल्ली, 1982, पृ0 100-106

[324] मार्शल, एक्सकेवेशन्स ऐट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृ0 54, 55, 58 तथा 59.

[325] जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्‌भव और विकास, नई दिल्ली, 1996, पृ0 194.

[326] चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृ0-106-संख्या-406 प्लेट-XCIII, पृष्ठ-137-संख्या 450-प्लेट CXXIII, पृष्ठ-140, संख्या-991- प्लेट- CXXV, संख्या-515-प्लेट-CXXVI, संख्या-651-प्लेट CXXVII, पृष्ठ-141-संख्या-289- प्लेट-CXXVIII

(II) गणेश प्रतिमायें

पौराणिक काल के महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय देवता गणेश का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। हिन्दू देव परिवार में गणेश की मांगलिक देवता के रूप में प्रतिष्ठा है। शिव तथा पार्वती के पुत्र के रूप में वे सर्व विघ्ननाशकर्त्ता मानें जाते हैं। इनकी उत्पत्ति की कथा शिवपुराण, स्कन्दपुराण, लिङ्गपुराण आदि ग्रंथों में प्राप्त होती है।[327] ऋग्वेद में मरूत गणों की चर्चा करते समय गणपति शब्द का उल्लेख हुआ हैः-

गणानान्त्वा गणपति गूं हवामेह।[328]

अमरकोश[329] में गणेश के विनायक, विघ्नराज, द्वैमातुर, गणाधिप, एकदन्त, हेरम्ब, लम्बोदर, गजानन इत्यादि नाम भी प्राप्त होते हैं। कला के अन्तर्गत गणेश प्रतिमाओं का अंकन गुप्तकाल से लोकप्रिय हुआ। गुप्तकाल में इनके दो रूप, प्रथम पुरुषाकृति शुंडधारी गणपति तथा द्वितीय, नृत्य गणपति अधिक प्रचलित हुए।[330] वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार प्रारम्भिक गणेश प्रतिमायें यक्ष मूर्तियों के समान निर्मित हुई। इस रूप में उनका अंकन मथुरा और अमरावती की कला में दिखाई देता है। अमरावती के महाचैत्य से कई पंक्तियों में हाथी के मस्तकों से युक्त घटोदर या लम्बोदर यक्ष मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनसे कालान्तर में गणेश मूर्तियों का विकास हुआ।[331] गणेश प्रतिमा लक्षण के विषय में बृहत्संहिता का उल्लेख सबसे प्राचीन है। इसके अनुसार-गजमुख, लम्बोदर, एकदन्ती, गणपति को, हाथ में फरशा लिए, मूलककंद और नीलदलकंद धारण किये हुए बनाया जाना चाहियेः-

प्रमथाधिपो गजमुखः प्रलम्बजठरः कुठारघाती स्यात्।
एकविषाणो विभ्रन्मूलककन्दं सुनीलदलकन्दम्।।[332]

---

[327] उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृ0 163
[328] ऋग्वेद, 2, 23, 1
[329] अमरकोश, वर्ग 1, श्लोक 38, पृ0 11.
[330] अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-271.
[331] वही, पृ0 303-304.
[332] बृहत्संहिता, अध्याय 58, श्लोक 58.

मत्स्यपुराण में गणपति प्रतिमा विधान के अन्तर्गत कुछ अन्य तत्वों को भी सम्मिलित किया गया है। इसके अनुसार वे चतुर्भुजी रूप में अपनें दाएँ हाथों में स्वदन्त और कमल तथा बाएँ हाथों में मोदक और परशु धारण किये हुए हों। उनका मुख गज के समान हो, वे लम्बोदर, शूर्पकर्ण, विशालतुण्ड, एकदन्ती, सर्पयज्ञोपवीतधारी तथा त्रिनेत्र युक्त हों। उनके साथ उनका वाहन मूषक तथा ऋद्धि और बुद्धि नामक दो पत्नियां हों, तथा उनके कन्धे और हाथ पुष्ट हो।[333] अपराजितपृच्छा में भी गजमुख, लम्बोदर और चतुर्भुजी गणपति को अपने दाहिनें हाथों में स्वदन्त, परशु और बाएँ हाथों में कमल और मोदक लिये हुए वर्णित किया गया है।[334] रूपमण्डन के अनुसार वे मूषिकारूढ़ हो, और उनके चारों हाथों में स्वदंत, परशु, पद्म और मोदक हो। वे गजानन और एकदंती हों।[335]

विभिन्न शास्त्रों एवं साहित्य में वर्णित गणेश प्रतिमा लक्षणों के आधार पर गणेश प्रतिमाओं का सामान्य स्वरूप इस प्रकार मिलता है–चतुर्भुजी, सूँडवाला हस्ति का मुख, बड़ा पेट, सिंदूर वर्ण, टूटा हुआ एकदंत, साथ में उनकी दोनों पत्नियां ऋद्धि तथा बुद्धि एवं उनका वाहन मूषक प्रदर्शित होता है। वे विशेषतः ललितासन में बैठे होते हैं, परन्तु कहीं–कहीं खड़ी मूर्तियां भी पाई गई हैं।[336]

गुप्तकाल से इन प्रतिमाशास्त्रीय विधानों के अनुरूप गणेश प्रतिमाओं का निर्माण किया गया। गणेश प्रतिमायें प्रस्तर तथा मृत्तिका कला, दोनों के अन्तर्गत प्राप्त हुई हैं। **गंगा यमुना के निचले दोआब में कानपुर के भीतरगांव मन्दिर से प्राप्त मृण्फलक पर चतुर्भुजी गणेश का अंकन प्राप्त हुआ है** (44 X 23 सेमी0)। वे अपने बायें हाथ में मोदक पात्र लिये हुए अंकित हैं, इनके साथ कुमार–कार्तिकेय भी अंकित

---

333 मत्स्य पुराण, अध्याय 260, श्लोक 52–55

334 अपराजितपृच्छा, 212, 35–37.

335 श्रीवास्तव, बलराम (सं0); रूपमण्डन, वाराणसी, सं0 2021, पृ0 77

336 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृ0 164, श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ0 142.

मिलते हैं। यहाँ गणेश अपना मोदक पात्र कुमार कार्तिकेय से बचा रहे हैं।[337] सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है (संख्या एस0 2026)। कौशाम्बी से प्राप्त ग्यारहवीं शताब्दी ई0 की नृत्यरत गणेश प्रतिमा इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है।[338]

(III) कार्तिकेय प्रतिमायें

शिव एवं पार्वती के पुत्र तथा देव-सेना के सेनानायक अथवा युद्ध के देवता कार्तिकेय का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। महाभारत में इनके स्कन्द, कुमार, कार्तिकेय आदि नामों का उल्लेख मिलता है।[339] उन्हें हाथ में शक्ति लिये हुए एक योद्धा के रूप में वर्णित किया गया है।[340] पंतजलि के महाभाष्य में स्कन्द तथा उनके सहायक विशाख का उल्लेख है।[341] छः मुख के कारण वे षडानन नाम से प्रसिद्ध हैं। अमरकोश के अनुसार स्वामि कार्तिकेय के नाम कार्तिकेय, महासेन, शरजन्मन्, षडानन, पार्वतीनन्दन, स्कन्द, सेनानी, अग्निभू, गुह, बाहुलेय, तारकजित्, विशाख, शिखिवाहन, षाण्मातुर, शक्तिधर, कुमार, क्रौञ्चदारण हैः-

कार्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः।
पार्वतीनन्दनः स्कन्दः सेनानीरग्निभूर्गुहः।।
बाहुलेयस्तारकजिद्विशाखः शिखिवाहनः।
षाण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः क्रौञ्चदारण।।[342]

दक्षिण भारतीय ग्रंथों में इस देवता को सुब्रह्मण्य आदि नामों से अभिहित किया गया है।[343]

---

337 आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908-9, पृष्ठ 10-11, चित्र संख्या-2, चित्रफलक क्रमसंख्या 19(B)

338 चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृ0 141, संख्या 427, प्लेट CXXIX

339 महाभारत वनपर्व, 232, 3-9; 225, 16-18, शान्तिपर्व, 122, 32; 327, 9-11.

340 स्कन्दः शक्ति समादाय तस्थौ मेरुरिवाचलः, महाभारत, आदिपर्व, 226, 361

341 महाभाष्य; 5, 3, 99.

342 अमरकोश, वर्ग 1, श्लोक 39-40, पृष्ठ-12.

343 श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृष्ठ 155.

हिन्दू देव-परिवार में कार्तिकेय एक महान सेनानायक तथा युद्ध के देवता के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इनका जन्म तारक राक्षस को मारनें के लिये हुआ था। शिवपुराण[344] तथा मत्स्यपुराण[345] में शिव और पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के द्वारा तारकासुर के वध की कथा का विस्तृत विवेचन है। कालिदास कृत कुमारसंभव में कुमार या स्कन्द की महिमा का चरम उत्कर्ष पाया जाता है।

कार्तिकेय कई राजवंशों के आराध्यदेव के रूप में उनके सिक्कों पर प्रदर्शित मिलते हैं। यौधेयों के सिक्कों के अग्रभाग में शक्तिधारी षडानन कार्तिकेय को कमल पर प्रदर्शित किया गया है। इसी ओर ब्राह्मी लिपि में 'भगवतः स्वामिनो ब्रह्मण्यदेवस्य कुमारस्य यौधेयानाम्' लेख है। अतः युद्धप्रेमी यौधेयों ने कार्तिकेय को अपना देवता स्वीकार कर उनका नाम अपनें सिक्कों पर अंकित कराया।[346] कुषाण सम्राट हुविष्क की मुद्राओं पर भी स्कन्द को व्यापक रूप से प्रदर्शित किया गया। कार्तिकेय के लिये महासेनों, स्कन्दो, कुमारो, बिजागों आदि नामों का प्रयोग किया गया।[347] गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम के स्वर्ण सिक्कों में मयूरस्थ कार्तिकेय का अंकन मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम का नामकरण कुमार या कार्तिकेय के नाम पर हुआ था। अतः उस देवता के प्रति आदर एवं श्रद्धा प्रकट करनें के लिये उसनें कार्तिकेय प्रकार की मुद्राएं चलाई थी। बयाना निधि से कुमारगुप्त के 628 सिक्कों में तेरह सिक्के कार्तिकेय प्रकार के थे।[348] तृतीय-चतुर्थ शती ई0 की मार्शल द्वारा भीटा से प्राप्त मुहर संख्या 25 पर "विन्ध्यबेधन-महाराजस्य महेश्वर- महासेनातिसरिष्ट-राज्यस्य वृषध्वजस्य गौतमीपुत्रस्य" लेख अंकित मिलता है। जिससे सूचित होता है कि महाराजा गौतमी

---

344 शिवपुराण, रुद्रसंहिता, कुमारखण्ड।

345 मत्स्यपुराण, 160, 1-32.

346 शोभा सत्येदव एवं अभिनव सत्यदेव; भारतीय पुरालिपि, अभिलेख एवं मुद्राएं, फैजाबाद, 1989, तृतीय खण्ड-पृष्ठ 46, श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ0 150.

347 शोभा सत्यदेव एवं अभिनव सत्यदेव; भारतीय पुरालिपि, अभिलेख एवं मुद्राएं, फैजाबाद, 1989, तृतीयखण्ड, पृ0 71.

348 वही, पृष्ठ 93.

पुत्र नें अपने इष्टदेव कार्तिकेय के लिये अपनें राज्य का निर्माण किया था।[349] इस प्रकार उत्तर-भारत के युद्ध प्रिय शासकों नें इस युद्ध देवता को अपनी मुद्राओं पर बड़े ही गौरव के साथ अंकित किया।

कला में कार्तिकेय की आरम्भिक प्रतिमायें मथुरा की कुषाणकला के अन्तर्गत निर्मित हुई। उन्हें द्विभुजी रूप में, दाहिना हाथ अभय-मुद्रा में तथा बाएँ हाथ में शक्ति लिए हुए, वाहन मोर अथवा कुक्कुट के साथ प्रदर्शित किया गया। इन लक्षणों से युक्त कुषाणकालीन कार्तिकेय की स्थानक मूर्ति मथुरा से प्राप्त हुई है। कार्तिकेय द्विभुजी तथा एकमुखी हैं, उनके बाएँ हाथ में लम्बी शक्ति और दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है। वासुदेव शरण अग्रवाल नें इस प्रतिमा को प्रतिमा लक्षणों की दृष्टि से बोधिसत्त्व प्रतिमाओं के समान बताया है।[350]

गुप्तकाल से कार्तिकेय प्रतिमाओं में अनेक नये कलात्मक लक्षणों का समावेश किया गया। उन्हें विविध अलंकरणों से युक्त मयूरासीन प्रदर्शित किया जानें लगा। इस काल की प्रतिमाओं में प्रतिमाशास्त्रीय-परम्परा के निर्वाह के साथ ही साथ उत्कृष्ट शिल्प का भी प्रदर्शन मिलता है। कार्तिकेय प्रतिमा लक्षण के विषय में बृहत्संहिता, विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा समराङ्गण-सूत्रधार से विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। बृहत्संहिता में कार्तिकेय को मयूरासीन, हाथ में शक्ति धारण किये हुए, एक युवक-कुमार के रूप में वर्णित किया गया हैः-

स्कन्दः कुमाररूपः शक्ति बर्हिकेतुश्च[351]

विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार उनके छः मुख तथा चार हाथ हैं, उनका वस्त्र

---

349 मार्शल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृ0 50-51, मुहर संख्या 25, श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ0 151.

350 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 270, चित्रसंख्या 420, श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ0 154.

351 बृहत्संहिता, अध्याय 57, श्लोक 41.

लाल तथा मयूर पर आसीन होते हैं। उनके दाहिने हाथों में कुक्कुट और घण्टा तथा बाएँ हाथों में विजयध्वज (पताका) और शक्ति होती है।[352] समराङ्गण सूत्रधार में कार्तिकेय प्रतिमा लक्षण के अन्तर्गत उन्हें तरुण अर्क (सूर्य) के समान तेजस्वी, रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किये हुये, अग्नि की प्रभा के समान कान्तिमान, षडमुखी अथवा एक मुखी, मुकुट, मणि, हार इत्यादि से अलंकृत प्रसन्नवदन, प्रियदर्शी, यौवन सम्पन्न कुमार के रूप में वर्णित किया गया है।[353]

इस प्रकार कार्तिकेय-प्रतिमा लक्षण के अनुसार देवता सूर्य और कमल जैसे पीतवर्ण वाले, एकमुखी अथवा षड्मुखी द्विभुजी रूप में, बाएँ हाथ में शक्ति और दाहिनें हाथ में कुक्कुट तथा वाहन मयूर, चतुर्भुजी रूप में बाएँ हाथों में शक्ति, पाश तथा दाहिनें हाथों में तलवार तथा दूसरा वरद या अभय मुद्रा में तथा साथ में वाहन मयूर और द्वादशभुजी रूप में दाएँ हाथों में शक्ति, पाश, खड्ग, बाण, त्रिशूल, वरद या अभय मुद्रा तथा बाएँ हाथों में धनुष, पताका, मुष्टि, तर्जनी, ढाल और कुक्कुट धारण किये हुए होते हैं।[354]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में भीतरगांव के मन्दिर से प्राप्त मृण्फलक पर चतुर्भुजी गणेश के साथ कुमार-कार्तिकेय अंकित मिलते हैं। वह गणेश के बाएं हाथ में स्थित मोदक-पात्र को प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। प्रतिमा का सिर तथा दाहिनीं भुजा खण्डित है।[355] कौशाम्बी से भी कार्तिकेय की कतिपय मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख मृण्मूर्तियाँ शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

---

[352] विष्णुधर्मोत्तर पुराण, खण्ड 3, अध्याय 71, श्लोक 3-6

[353] समराङ्गण सूत्रधार, 77, 23-25

[354] श्रीवास्तव, बृजभूषण, प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1998, पृ0 153

[355] आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908-9, पृ0 10-11, चित्र संख्या 2, राज्य संग्रहालय लखनऊ संख्या एस-2026. चित्रफलक क्रमसंख्या 19(B)

(IV) लक्ष्मी प्रतिमायें

सौन्दर्य एवं ऐश्वर्य की देवी लक्ष्मी का ब्राह्मण प्रतिमाओं में महत्वपूर्ण स्थान है। श्री तथा लक्ष्मी के रूप में विष्णु की दो पत्नियों का उल्लेख यजुर्वेद में आया हैः-

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च ते पत्न्यौ[356]

ऋग्वेद के श्रीसूक्त में इनका पृथक् और एक साथ भी वर्णन किया गया है। कालान्तर में श्री और लक्ष्मी नामक दो देवियों को मिलाकर एक ही देवी लक्ष्मी की कल्पना की गई।[357] पुराणों में उन्हें विष्णु पत्नी माना गया है। कमल उनका आसन और प्रतीक है।[358] रामायण[359] में उन्हें पद्माश्री और महाभारत[360] में शरीरिणी पद्मरूपाश्री कहा गया है। अमरकोश[361] में उनके लक्ष्मी, पद्मालया, पद्मा, कमला, श्री, हरिप्रिया इत्यादि नामों का उल्लेख है। इनकी उत्पत्ति के विषय में यह कहा गया है कि देवों तथा असुरों द्वारा समुद्र-मंथन करते समय उससे उत्पन्न हुए चौदह रत्नों में से लक्ष्मी जी भी एक रत्न थीं और वे कमल के आसन पर बैठी हुई, कमल पुष्प हाथ में धारण किये हुए प्रकट हुई थीं। उनकी कान्ति स्फटिक मणि के समान थीः-

ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासि कमलेस्थिता।
श्रीर्देवीपयसस्तस्मादुद्भूता घृतपङ्कजा।।[362]

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार समुद्रमंथन से लक्ष्मी के आविर्भूत होनें पर

---

[356] यजुर्वेद 31/22
[357] अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 338.
[358] वही, पृष्ठ 95.
[359] रामायण, अयोध्याकाण्ड 79/14.
[360] महाभारत, आरण्यक पर्व 218/3.
[361] अमरकोश, वर्ग 1, श्लोक 27, पृष्ठ 9.
[362] विष्णु पुराण 1/9/100.

इन्द्र नें अपनें हाथ से उनके लिये आसन रखा। श्रेष्ठ नदियाँ सोनें के घड़े में जल भरकर अभिषेक के लिये तैयार हुई, पृथ्वी नें अभिषेक योग्य समस्त औषधियाँ प्रदान की। गायों ने पञ्चगव्य तथा बसन्त ऋतु नें सभी प्रकार के पुष्प प्रदान किये। ऋषियों ने लक्ष्मी का अभिषेक किया। बादल वाद्य बजानें लगे। तब पद्महस्ता लक्ष्मी सिंहासन पर आरुढ़ हुईं। दिग्गजों नें जल से भरे कलशों से उनको स्नान कराया। समुद्र ने पीले रेशमी वस्त्र तथा वरुण नें वैजयन्ती माला प्रदान की। विश्वकर्मा नें आभूषण, सरस्वती नें मोतियों की माला, ब्रह्मा नें कमल व नागों ने दो कुण्डल प्रदान किये।[363]

कला के अन्तर्गत लक्ष्मी निम्न रूपों में प्राप्त होती हैं:-

(क) पद्मासना अर्थात् कमल के वन में कमल पर खड़ी हुई अथवा कमल पर बैठी हुई;

(ख) पद्महस्ता अर्थात् हाथों में कमल लिये हुए;

(ग) गजलक्ष्मी अर्थात् पद्मनी श्रीदेवी के दोनों ओर सनाल कमलों पर बने हुए हाथी आवर्जित घटों से देवी का अभिषेक कर रहे हों; लक्ष्मी का यह रूप भरहुत, बोधगया, अमरावती आदि की कला में उपलब्ध है। भरहुत कला में देवी का स्वरूप इस प्रकार है-कमल के फुल्लों पर खड़ी हुई या कमल वन में बैठी हुई एक सुन्दर स्त्री मूर्ति के ऊपरी भाग में दो हाथी उसे आवर्जित घटों से स्नान करा रहे हैं।[364] श्री सूक्त में देवी को 'हस्तिनाद प्रमोदिनी' अर्थात् हाथियों के चिघाड़ से प्रसन्न होनें वाली कहा गया है।[365] लक्ष्मी के साथ गज का अंकन लक्ष्मी के चक्रवर्तित्व का सूचक है। मुख्य रूप से शुंगकाल से लेकर कुषाणकाल तक यह कलाकारों का प्रिय विषय बना रहा।

---

[363] श्रीमद्भागवत् पुराण 8/8/10-16.

[364] अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 147, चित्रसंख्या 208, 209 तथा 210.

[365] जायसवाल, सुवीरा; वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 80.

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि देवी का अभिषेक करनें वाले गज दिशाओं के सूचक दिक्पाल (दिग्गज) हैं और पूर्णघटों से भरा दिव्य जल अमृत या सोम है।[366]

(घ) हेममालिनी सुवर्णयष्टि अर्थात् देवी सुवर्ण माला पहनें हुए सोने की यष्टि की अधिष्ठात्री हैं; सोने की डंडी, सोने के हार, कंठों और मालाओं का संचय श्रीलक्ष्मी का साक्षात् रूप माना गया है। साँची के उत्तरी तोरण के स्तम्भ पर इस प्रकार के कंठों और मालाओं से युक्त यष्टि का अलंकरण है।[367]

(ङ) करीषिणी अर्थात् गोबर में रहनें वाली; इस रूप में श्रीलक्ष्मी गऊओं और गोष्ठ की अधिष्ठात्री देवी मानी गई। इस प्रकार वह लोकधर्म से सम्बन्धित हो गई।

भारतीय कला में लक्ष्मी के निम्न रूप भी प्राप्त हुए हैं यथाः-पद्मश्री, तोरण लक्ष्मी, राज्यलक्ष्मी, निधिलक्ष्मी तथा सौभाग्यलक्ष्मी।

लक्ष्मी प्रतिमा लक्षण के विषय में अग्निपुराण, विष्णुधर्मोत्तरपुराण तथा मत्स्यपुराण से विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार विष्णु के समीप होनें पर वे दो भुजाओं वाली अत्यधिक सुन्दर, अपने हाथ में कमल धारण किये तथा सभी प्रकार के आभूषणों से शोभित रहती हैंः-

हरेः समीपे कर्त्तव्या लक्ष्मीस्तु द्विभुजा नृप।
दिव्य रूपाम्बुजकरा सर्वाभरणभूषणा।।[368]

परन्तु जब उन्हें विष्णु से पृथक् बनाया जाता है तब वे चतुर्भुजी रूप में सुन्दर सिंहासन पर आसीन रहती हैं, जिसके ऊपर आठ दल वाला सुन्दर कमल खिला हुआ चित्रित रहता है। लक्ष्मी का प्राचीनतम विशिष्ट रूप उन गोल चकियों पर

---

366 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 56.
367 वही, पृष्ठ 169.
368 विष्णुधर्मोत्तर पुराण 82/3.

पाया जाता है जिन्हें श्रीचक्र भी कहा गया है। चकियों पर अंकित पशु यथा हाथी (हस्ति), गौ, अश्व इत्यादि देवी के परिवार में मानें गये। लौरिया नन्दनगढ़ से प्राप्त सोने की पन्नी पर ठप्पे से बनी हुई पृथ्वीमूर्ति में इनका आरम्भिक रूप पाया जाता है।[369] शुंगकाल से इनका गजलक्ष्मी रूप अधिक लोकप्रिय हुआ। कुषाणकालीन कई प्रतिमाओं में इनका अंकन कुबेर तथा हारीति के साथ संयुक्त रूप में किया गया।[370] गुप्तकाल से वह राष्ट्रीय देवी के रूप में मान्य हुई। उन्हें विष्णु-पत्नी के रूप में, कभी विष्णु के समीप खड़ी हुई, कभी पास में बैठी हुई अथवा शेषशायी विष्णु प्रतिमाओं में विष्णु का चरण संवाहन करती हुई प्रदर्शित किया गया। वह गुप्तों की स्वर्ण मुद्राओं पर भी अंकित की गई। चन्द्रगुप्त द्वितीय की छत्र-प्रकार, पर्यङ्कप्रकार, चक्र-विक्रमप्रकार तथा कुमारगुप्तप्रथम की धनुर्धारी प्रकार, खड्गधारी प्रकार की मुद्राओं के पृष्ठभाग पर लक्ष्मी का अंकन हुआ है।[371] भीटा की खुदाई में[372] कतिपय ऐसी मुहरें प्राप्त हुई हैं, जो देवी लक्ष्मी से सम्बन्धित मानीं जा सकती हैं। इनमें संख्या 32, 34, 35 तथा 42 महत्वपूर्ण हैं। मुहर संख्या 35 में लक्ष्मी कमल पर खड़ी हुई हैं। उनके दाहिनें हाथ में कमल स्थित है। ऐसी ही मूर्ति बसाढ़ मुहर पर भी प्राप्त हुई है। स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ शिलालेख में विष्णु की लक्ष्मी के साथ स्तुति हुई है।[373]

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों में कौशाम्बी से देवी के गजलक्ष्मी रूप की कई प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं। कौशाम्बी से चुनार के पत्थर का एक शुंगकालीन फलक प्राप्त हुआ है, जिस पर एक ओर साँची की भाँति की गजलक्ष्मी की खड़ी प्रतिमा है, जो पद्मकोश पर स्थित दिखायी गयी हैं। कमल की पत्तियाँ नीचे की

---

369 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 95 तथा 338.
370 वही, पृष्ठ 272, चित्र 423.
371 शोभा सत्यदेव तथा अभिनव सत्यदेव; भारतीय पुरालिपि, अभिलेख, एवं मुद्रायें, फैजाबाद, 1989, तृतीय खण्ड-पृष्ठ-85-91.
372 मार्शल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृ0 52-54.
373 शोभासत्यदेव एवं अभिनव सत्यदेव; भारतीय पुरालिपि, अभिलेख एवं मुद्राएं, फैजाबाद, 1989, द्वितीय खण्ड-पृष्ठ-101.

ओर लटकी हुई हैं। दोनों हाथों से ये दो कमल नाल पकड़े हुए हैं। इन्हीं कमल नालों के फूलों पर दो हाथी खड़े अपनी सूड़ों से घटों को उठाये हुए इनका जलाभिषेक कर रहे हैं। इनके दोनों ओर कमल की पत्तियाँ, कमल की कलियाँ इत्यादि दिखायी गई हैं। जिस पर ये स्थित हैं, उसके नीचे भी कमल के फूल, अधखिले कमल, कमल की पत्तियाँ बनी हैं। ये सब एक मंगल कलश से प्रस्फुटित हो रहे हैं, जो एक वेदी पर रखा है।[374] लक्ष्मी के सिर पर एक ओढ़नी है जिसमें सामने की ओर से ललाटिका थोड़ी सी बाहर निकल कर दिखाई दे रही है। इसके अतिरिक्त कानों में भारी आकृति का कुण्डल पहने हुए हैं।[375]

कौशाम्बी के प्रथम शताब्दी ई0पू0 के एक तोरणखंड पर गजलक्ष्मी का अंकन प्राप्त हुआ है। सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित है (संख्या 65)[376]। देवी का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है, तथा बायाँ कमर पर स्थित है। वह कमल पर खड़ी हुई हैं तथा गज उनका जलाभिषेक कर रहे हैं। उनके कानों में भारी कुण्डल तथा गले में हार है। इनकी तुलना साँची स्तूप संख्या एक के पूर्वी द्वार पर बनी स्त्री प्रतिमा से की जा सकती है।[377]

कौशाम्बी से शुंगकाल से लेकर गुप्तकाल तक की गजलक्ष्मी की कई मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनका उल्लेख मृण्मूर्तियाँ शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

(V) यक्ष प्रतिमायें

ब्राह्मण धर्म मे कतिपय ऐसी शक्तियो की सत्ता स्वीकार की गई है, जो देवत्व की कोटि मे तो सम्मिलित नही किये जाते किन्तु उनका पृथक् स्थान एव महत्व है। इन

---

[374] जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या ई/7, इंडियन आर्कियोलॉजी 1956-57, प्लेट 38ए, शर्मा, जी0आर0, हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृ0 29, दायाँ चित्र।

[375] वही, संख्या ई/7.

[376] चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर्स इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ 58, प्लेट XXX

[377] वही, पृष्ठ 58.

शक्तियो की व्यन्तर देवताओ के नाम से सम्बोधित किया गया है। विष्णु पुराण में इन्हे देवयोनिया माना गया है। इस पुराण के अनुसार आठ प्रकार की देवयोनियो मे–सिद्ध, गुह्यक, गधर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, नाग, विद्याधर, पिशाच की गणना की जाती है।[378]

गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलो से प्राप्त व्यन्तर देवताओ की प्रतिमाओ के अन्तर्गत यक्ष मूर्तियॉ प्रमुख हैं। प्राचीन वैदिक, बौद्ध और जैन साहित्य मे यक्षो के महत्व तथा उनके पूजनीय स्वरूप का विस्तार से उल्लेख हुआ है।[379] यक्षो की उत्पत्ति के विषय मे विष्णुपुराण मे उल्लेख है कि ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न करने पर "हम भरण करेगे" यह कहने वाले यक्ष कहलाये।[380] यह पुराण इन्हे बडा ही कुरूप, दाढी मूॅछयुक्त बतलाता है–

विरूपाः श्मश्रुजातास्तेऽभ्यधावंस्ततः प्रभुम्।।[381]

लोक जीवन मे यक्षो का सम्बन्ध अमरता, दीर्घजीवन और स्वास्थ्य के साथ था।[382] रामायण मे देवो द्वारा दिये जाने वाले वरदान 'यक्षत्व अमरत्वञ्च' का प्रसग प्राप्त होता है।[383] इससे स्पष्ट है कि यक्षत्व और अमरत्व समान माने जाते थे।[384]

महाभारत काल मे इनको पूर्णत देवत्व पद पर स्थापित किया गया तथा यक्ष सदन को अवध्यपुर कहा गया, अर्थात् ऐसी नगरी जहॉ मृत्यु की पहॅुच नही है।[385]

पाणिनी की अष्टाध्यायी मे पुत्र का व्यक्तिगत नाम रखने के लिये वरुण, अर्यमा आदि वैदिक देवो के साथ सेवल, सुपरि और विशाल आदि यक्षो के नामो का भी उल्लेख हुआ है।[386]

---

378 विष्णु पुराण, गीता प्रेस, गोरखपुर, पृ0 243
379 बाजपेयी, सतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृ0 168
380 विष्णुपुराण, 1 5 43
381 विष्णुपुराण, 1.5 42
382 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 127
383 रामायण; 3 11 94
384 मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृ0 337.
385 महाभारत, शान्तिपर्व, 71 15
386 अष्टाध्यायी, 5.3 84.

जैन ग्रथो मे भी यक्षो का देवरूप मे उल्लेख प्राप्त होता है। जैन मत मे इनको शासन देवता का नाम दिया गया है। इस मत के अनुसार इन्द्र ने प्रत्येक तीर्थकर की सेवा के लिये एक यक्ष और एक यक्षी को नियुक्त किया था।[387] सर्वप्रथम जैन ग्रथ निर्वाणकलिका (11वी–12वी शती ई0) मे चौबीस यक्ष–यक्षी युगलो की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताये विवेचित है। अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन और देवता–मूर्तिप्रकरण आदि जैनेतर ग्रथो मे भी इन यक्ष–यक्षी युगलो की लाक्षणिक विशेषताए प्राप्त होती है।[388]

बौद्ध साहित्य मे प्राय चार महाराजाओ का उल्लेख है। इनमे यक्षो का राजा वैश्रवण उत्तर दिशा का, गन्धर्वो का राजा पूर्व दिशा का, कुभांडो का राजा विरूढक दक्षिण दिशा का और नागो का राजा पश्चिम दिशा का स्वामी माना जाता था। ये चारो महाराज देवता के रूप मे पूजे जाते थे।[389]

इस प्रकार यक्ष पूजा लोक–धर्म से सम्बन्धित थी जो ऋग्वेद काल से चली आ रही थी, तथा इसे जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण धर्मो ने स्वीकार किया था।[390] यक्ष देवताओ की सूची मे पुण्णभद्र, मणिभद्द, सीलभद्द, सुमणभद्द, चक्षुरक्ष, सठ्वन आदि की गणना की गई। ये सभी वैश्रवण के आज्ञाकारी सेवक थे।[391] सामान्यत यक्ष की संज्ञा थी, महत् अर्थात महाकाय और इस प्रकार सुविशाल देह मे घटित प्रतिमाये यक्ष मूर्तियॉ कहलाई।[392]

कला के अन्तर्गत यक्ष मूर्तिया शुगकाल से मिलने लगती है। मथुरा, वाराणसी, पटना तथा विदिशा से यक्ष–यक्षी की अनेक प्रस्तर मूर्तियॉ मिली है, जिनका समय कुछ विद्वान मौर्यकाल मानते है लेकिन अधिकाश विद्वान इनको शुंगकाल मे रखने के पक्ष मे है।[393] भरहुत तथा सॉची के तोरणद्वारो तथा वेदिका–स्तम्भो पर यक्ष–यक्षियो की अनेक

---

[387] भट्टाचार्य, बी0सी0, दि जैन आइकोनोग्राफी, लाहौर, 1929, पृ0 157
[388] तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद, जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, पृ0 157
[389] अग्रवाल वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 127
[390] वही, पृ0 56–57
[391] मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृ0 337
[392] अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 128
[393] रे, नीहार रंजन, मौर्य तथा मौर्योत्तर कला (हिन्दी अनुवाद, प्रथम सस्करण) मैकमिलन प्रेस, नई दिल्ली, 1979, पृ0 56.

प्रतिमाये प्राप्त हुई है, जिनमे से कुछ मूर्तियो पर (भरहुत मे) उनके नाम भी दिये हुए है यथा– कुपिरो यखो (कुबेर यक्ष), यखी सुदसना (यक्षी सुदर्शना), सुचिलोमो यखो (सुचिलोम यक्ष), महाकोका और चुलकोका नामक दो देवता या यक्षी देवियॉ उल्लिखित हैं।[394]

मूर्तिकला मे यक्षो को मगलकारी तथा अमगलकारी दोनो रूपो मे प्रस्तुत किया गया है। उन्हे हास्यास्पद तथा भयानक दोनो ही स्वरूपो मे प्रदर्शित किया गया है। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रो मे कौशाम्बी तथा भीटा से अनेक यक्ष प्रतिमाये तथा यक्ष मस्तक प्राप्त हुए है। इनमें **भीटा से प्राप्त द्वितीय-प्रथम शती ई०पू० की चतुर्मुखी यक्ष प्रतिमा राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है (संख्या 56.394)।**[395] इसमे चारो यक्ष मुखाकृतियां सभी किनारो से दृष्टिगत होती है। इनमे एक तरफ की यक्ष मूर्ति खडी हुई, अभयमुद्रा मे, मुकुट पहने हुए है। उसके कानो मे भारी कुण्डल और गले में हार है। वह उत्तरीय एवम् धोती पहनें है। दूसरी यक्ष मूर्ति मुकुट नही पहने हुए है, तथा वह उत्तरीय, हार तथा कर्णाभूषण भी नही पहने हुए है। उसके बाएँ हाथ मे एक कगन है तथा दाहिना हाथ क्षतिग्रस्त है, तथापि वह कधे के ऊपर उठा हुआ है अत यह अभय मुद्रा मानी जा सकती है। मुकुटधारी यक्ष प्रतिमा के दाहिनी एव बायी ओर की यक्ष प्रतिमाओ की मुखाकृतियॉ क्षतिग्रस्त है।

भीटा से द्वितीय शताब्दी ई०पू० के दो यक्ष शीर्ष प्राप्त हुए हैं। सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय मे प्रदर्शित है। **इसमें संख्या 795** के यक्ष शीर्ष की मुखाकृति क्षतिग्रस्त है, परन्तु चौडा और दीर्घकाय ललाट, बडे नथुनो वाली नाक, भारी जबडा तथा उभरे हुए नेत्र स्पष्टत परिलक्षित होते हैं।[396] **संख्या 979** के उदाहरण में यक्ष मुखाकृति मासल, बडे–बडे गाल तथा उभरी हुई ऑखे दृष्टिगत होती है। प्रतिमा के हाथ की बँधी हुई मुट्ठी अहिच्छत्र से प्राप्त उदाहरणो एव मथुरा कला के अन्तर्गत बनाई गई यक्ष मूर्तियों का स्मरण कराती है।[397]

---

[394] अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 127.

[395] जोशी, एन0पी0; कैटलॉग ऑफ दि ब्राह्मनिकल स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम, लखनऊ, 1972, पृ0 115–116, चित्र सख्या 45–48

[396] चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS,पूना, 1970 पृ0 55, प्लेट XXIV

[397] वही, पृ0 61, प्लेट XXXIII.

कौशाम्बी से प्रथम शती ई० की बैठी हुई यक्ष प्रतिमा प्राप्त हुई है। सम्प्रति इलाहाबाद सग्रहालय मे प्रदर्शित है।[398] यक्ष पर्यकासन मे स्टूल पर बैठे हुए है। उनका मुख खुला हुआ एव दॉत बाहर निकले हुए है। नेत्र उभरे हुए तथा पलके गहरी है। वह पारदर्शक धोती, जो कि घुटनें तक की है, पहनें हुए है। आभूषणो मे गले मे अर्धचन्द्र–चिपटा हार तथा दोनो हाथो मे भारी चौकोर मणियो से युक्त कडा पहने है। वह दाहिने हाथ मे प्याला तथा बाये हाथ से सुअर (BOAR) को पकडे हुए है, जो उनके दोनो पैरो के बीच मे दिखाई देता है।

कौशाम्बी तथा भीटा से प्राप्त वेदिका स्तम्भो पर भी यक्षो का अंकन प्राप्त हुआ है। सम्प्रति इलाहाबाद सग्रहालय मे प्रदर्शित है। कौशाम्बी के लगभग द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के उत्तरार्द्ध के वेदिका–स्तम्भ पर प्राप्त यक्ष प्रतिमा की मुखाकृति क्षतिग्रस्त है[399], परन्तु भीटा से प्राप्त प्रथम शताब्दी ई0पू0 के वेदिका–स्तम्भ की यक्ष प्रतिमा का,[400] बडा पेट, छोटी तिरछी ऑखे, बडी नाक तथा मोटे होठ दृष्टिगत होते है।

5. मृण्मूर्तियाँ

कला की प्रस्तुति के विविध साधनो मे मृत्तिका कला सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। ईसा पूर्व तीन हजार वर्षो से आजतक विभिन्न धार्मिक तथा लौकिक विषयो के अकन के लिए इस साधन का प्रयोग होता रहा है, तथा प्रायः सभी कालो की मृण्मूर्तियॉ सुन्दरता में प्रस्तर प्रतिमाओ से कम नही प्रकट हुई है। साहित्यिक साक्ष्यो के द्वारा भी इसकी लोकप्रियता तथा प्रचलन के विषय मे वर्णन प्राप्त होता है। महाभारत[401] मे निषादपुत्र एकलव्य का प्रसंग है जिसनें अपने गुरु द्रोणाचार्य की मृण्मूर्ति बनाकर उसके समक्ष धर्नुविद्या का अभ्यास किया–

स तु द्रोणस्य शिरसा पादौ गृह्य परंतपः।
अरण्यमनु सम्प्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम्।।

---

[398] चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS पूना, 1970, पृ0 63, प्लेट XL इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 70
[399] वही, पृ0 55, प्लेट , XXVI, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 59.
[400] वही, पृ0 54, प्लेट , XXIV, इलाहाबाद संग्रहालय सख्या 57
[401] महाभारत, आदिपर्व, 131/33

श्रीमद्भागवत पुराण[402] के विवरण के अनुसार उद्धव बाल्यकाल मे श्रीकृष्ण की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर खेलते थे।

बृहत्संहिता[403] मे भिन्न–भिन्न सामग्री एवं धातुओ की मूर्तियो के अलग–अलग प्रभाव बतलाते हुए, मिट्टी की प्रतिमा का प्रभाव लोकहित मे वृद्धि बतलाया गया है–

आयु श्री बलजयदा दारुमयी मृण्मयी प्रतिमा। शूद्रककृत मृच्छकटिकम् का नाम ही 'मिट्टी की गाडी' से पडा जो चारुदत्त के पुत्र रोहसेन का खिलौना थी।

कालीदास ने अपने प्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' मे मिट्टी के रंगीन मोर का बालक भरत के खिलौने के रूप मे उल्लेख किया है।[404]

बाण ने कादम्बरी मे चतुर्विद कलाओ के सदर्भ मे वास्तुकला, शिल्पकला, चित्रकला एव चौथी पुस्तकर्मकला अर्थात् मिट्टी की मूर्तियों एवं गचकारी के कार्य का उल्लेख किया है।[405]

कला के अन्तर्गत भारत की प्राचीनतम मृण्मूर्तियॉ प्राक्हडप्पा सस्कृति के कोटदीजी, कालीबगा, क्वेटा, कुल्ली एव मेही आदि स्थानों से प्राप्त हुई है। झोब सस्कृति के प्राक् हडप्पा पुरास्थलों–मुगलघुडई, पेरिआनो घुडई, सुरजगल, कौदानी एव डाबरकोट से भी मृण्मूर्तियॉ मिली हैं। इन स्थानो से प्राप्त मृण्मूर्तियॉ मातृदेवी तथा ककुदमान वृषभ की है।

हडप्पा सस्कृति (2500–1500 ई0पू0) के प्राय· सभी स्थलो से नाना प्रकार की मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुई है, उनमे मोहनजोदडो, चान्हूदडो, हडप्पा कालीबंगा, वणावली, राखीगढी, लोथल इत्यादि स्थानो से मृण्मूर्तियो के विविध प्रकार मिले हैं, जिनमे स्त्री–पुरुष, पशु–पक्षी, खिलौना–गाडी इत्यादि विशेष महत्व के है।

छठी शताब्दी ई0पू0 से मृण्मूर्तियो के प्रचलन में क्रमबद्धता देखने को मिलती है। मृत्तिका कला के विकास की दृष्टि से निचले दोआब के क्षेत्रो में कौशाम्बी श्रृंग्वेरपुर, भीटा,

---

[402] श्रीमद्भागवत, 3/2/2
[403] बृहत्संहिता, 60/51–58
[404] अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीयकला, वाराणसी, 1987, पृ0 321.
[405] वही, पृ0 322.

झूँसी आदि स्थानो से मृण्मूर्तियाँ प्राक् मौर्यकाल से मिलनी प्रारम्भ हो जाती है। इस काल की मृण्मूर्तिया हस्तनिर्मित है तथा हाथ से डौलियाकर बनायी गई है। मृण्मूर्तियो मे स्त्री तथा पुरुष मृण्मूर्तियो के साथ पशु–मृण्मूर्तियां भी प्राप्त हुई है।

मौर्यकालीन मृण्मयी मूर्तियाँ, वास्तवधर्मी एव त्रिआयामी हैं।[406] कौशाम्बी की मौर्यकालीन मृण्मूर्तियो मे स्त्री शिर[407] एव आवक्ष[408] ये दो प्रकार प्राप्त हुए है। इनके साथ पुरुष, बालक, पशु एव पक्षी इत्यादि की मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई है। पशुओ मे हाथी, घोडा, हिरन एव गैण्डा की मूर्तियाँ उल्लेखनीय है। इनका निर्माण सम्भवत बच्चो के खिलौनो के रूप मे किया गया है। इस काल की स्त्री मृण्मूर्तियो के शिर पर उभरी भारी शिरोभूषा दृष्टिगोचर होती है। भीटा की मौर्यकालीन मृण्मूर्तियाँ छोटी एवं भद्दी चलन की हैं।[409]

मृण्मूर्तिकला के विकास की दृष्टि से शुगकाल विशेष महत्वपूर्ण है। इस काल मे मृत्तिका कला अन्य कालो की तुलना मे अधिक लोकप्रिय हुई। शुगकालीन मृण्मूर्तियो की प्रमुख विशेषताओ मे – मूर्तियो का इकहरे साँचे मे बनना, मूर्तियो का द्विआयामी तथा सम्मुखदर्शी बनना, तत्कालीन सामाजिक जीवन का सजीव चित्रण होना, मिथुन मूर्तियो का बनना, मूर्तियो को आभूषणो से पूर्णरूप से सजाना, प्राकृतिक दृश्यो को फलको पर दिखाना तथा एक ही पट्ट या फलक पर पूरे दृश्य को प्रस्तुत करना इत्यादि सम्मिलित है।[410] कौशाम्बी की शुगकालीन मृण्मूर्तियो मे जिस प्रकार का कला सौष्ठव एवं दृश्यों की बहुलता प्राप्त होती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। स्त्री मूर्तियो की तुलना मे पुरुष आकृतियाँ कम प्राप्त हुई है, इनमे पुरुष धड, आवक्ष एव पूर्णरूप सुरक्षित हैं। शृग्वेरपुर, भीटा तथा झूसी से भी शुगकालीन मृण्मूर्तियों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त हुए है। इनमें स्त्री, पुरुष आकृतियों के साथ ही दृश्यफलक भी उल्लेखनीय हैं।

---

[406] पाण्डेय, सुशीलकुमार, प्राचीन मृण्मयी मूर्तिकला, वाराणसी, 1997, पृ0 15

[407] शर्मा, जी0आर, एक्सकेवेशन एटॅ कौशाम्बी, 1949–50 रिपोर्ट, मेमॉयर्स ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, न0 74, प्लेट XXIIIA2

[408] वही, प्लेट XXIIIB2

[409] मार्शल, एक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वेऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, पृ0 71

[410] पाण्डेय, सुशीलकुमार; प्राचीन मृण्मयी मूर्तिकला, वाराणसी, 1997, पृ0 15–16

कुषाणकाल मे मृत्तिका कला के विकास मे गत्यावरोध दिखाई देता है। इस काल मे आकर मृत्तिका कला शैली की तकनीक तथा उद्देश्य परिवर्तित हो गये। साचे के प्रयोग का प्रारम्भ हो जाने पर भी इस काल मे हाथ द्वारा बनी मृण्मूर्तियॉ अत्यधिक सख्या मे प्राप्त हुई है। यद्यपि कुछ सॉचे द्वारा बनी मृण्मूर्तिया भी मिली है। इन पर विदेशी प्रभाव उनके स्वरूप, वेशभूषा, केशविन्यास इत्यादि के द्वारा स्पष्ट परिलक्षित होता है। सर्वप्रथम कुषाणकाल मे स्त्री तथा पुरुष आकृतियो के सिले हुए वस्त्र यथा–पूरे बाहॅ की जैकेट, पैन्ट इत्यादि का प्रचलन दिखाई देता है। इस काल की मृण्मूर्तियो मे घुँघराले बाल, पगडी, मूँछ तथा मध्य मे जुडी हुई भौहे इत्यादि दृष्टिगत होते है। कुषाणकाल मे सर्वप्रथम हाथ द्वारा बने पूजा सरोवरो का निर्माण हुआ जिनपर चिडिया या मातृदेवी को बैठे हुए दिखाया गया है। इस काल मे सीथियन दरबारियो, कुषाण–योद्धाओं, गायक तथा शिशु लिये हुए माता इत्यादि विषयो से सम्बन्धित मृण्मूर्तियॉ प्राप्त होती है।

गुप्तकालीन मृण्मूर्तियॉ तकनीक एव सौन्दर्य दोनो ही दृष्टियो से श्रेष्ठ मानी जाती है। मृण्मूर्तियो के निर्माण मे इकहरे तथा दोहरे दोनो प्रकार के सॉचो का प्रयोग किया गया है। अशत सॉचो तथा अंशत हाथो के सम्मिलित प्रयोग से तैयार मृण्मूर्तिया भी प्राप्त हुई है। गुप्तकालीन स्त्री तथा पुरुष मृण्मूर्तियो की सबसे बडी विशेषता उनकी शिरोभूषा मे पाई जाने वाली विविधता है। गुप्तकालीन झूँसी की स्त्री मृण्मूर्तियो मे केश–विन्यास की विभिन्न शैलियॉ दृष्टिगत होती है। इसमे सर्वाधिक प्रचलित अलकावली शैली है, जिसमे बीच की केशवीथी के दोनों ओर वलीभृत् केश या छल्लेदार लटें पक्तिबद्ध रूप में सवारी हुई दिखाई पडती है।[411] विभिन्न प्रकार के रगों यथा–लाल, गुलाबी, पीला, सफेद आदि से रगी हुई (Painted) गुप्तकालीन मृण्मूर्तियॉ कौशाम्बी, भीटा इत्यादि स्थलो से मिली है। गुप्तकाल मे लघु मृण्मूर्तियो के अतिरिक्त मिट्टी के विशाल फलको का भी निर्माण किया गया, जिन्हे मन्दिरो अथवा गृहों में लगाया जाता था। इन फलको पर धार्मिक तथा सामाजिक दृश्य ढाले जाते थे। प्रस्तर शिल्प की भॉति मिट्टी के इन बडे फलको तथा मूर्तियो की पक्तियो

[411] अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृ0 332.

से मन्दिरों को नीचे से ऊपर तक सजाया जाता था। इनमे कानपुर के भीतरगाव का मन्दिर उत्कृष्ट उदाहरण है।

विभिन्न कालो की मृण्मूर्तियो को वर्ण्य विषय के आधार पर दो वर्गो में रखा जा सकता है–

(क) धार्मिक,

(ख) लौकिक।

धार्मिक विषयो मे मुख्य रूप से ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवी–देवताओ का अंकन मृत्तिका कला के अन्तर्गत किया गया। निचले दोआब के क्षेत्रो से विष्णु, शिव, गणेश, कार्तिकेय, गजलक्ष्मी, यक्ष इत्यादि की सुन्दर मृण्मूर्तियॉ तथा फलक प्राप्त हुए है। जिनका स्वरूप शास्त्र विहित नियमो के अनुसार है। विष्णु के शेषशायी रूप की मृण्मूर्ति कानपुर के भीतरगाव मन्दिर से प्राप्त हुई है।[412] सम्प्रति कलकत्ता के भारतीय सग्रहालय मे सग्रहीत हैं। भीतरगॉव से प्राप्त विष्णु से सम्बद्ध अन्य उदाहरणो मे विष्णु के वराह अवतार की मृण्मूर्ति, गरुड पर आसीन विष्णु, आयुध पुरुषो के साथ विष्णु तथा राम एव सीता की मृण्मूर्तियॉ विशेष उल्लेखनीय है।[413]

शिव से सम्बद्ध मृण्मूर्तियो मे त्रिनेत्रयुक्त शिव मृण्शिर तथा शिव–पार्वती का सयुक्त अकन भी प्राप्त हुआ है। शृंग्वेरपुर से प्राप्त प्रथम शती ई0 के त्रिनेत्रयुक्त शिव मृण्शिर मे, वह योगी के रूप मे आभूषणों से रहित बनाये गये है। जटा से लेकर कण्ठ तक उपलब्ध भाग की ऊँचाई 232 मि0मी0 है।[414] शृग्वेरपुर से त्रिनेत्रयुक्त पार्वती का मृण्शिर मिट्टी के जलाशय क्षेत्र से प्राप्त हुआ है। इसका समय लगभग द्वितीय शती ई0 माना गया है।[415]

---

[412] आर्क्योलॉजिकल सर्वेऑफइण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908–9, पृष्ठ-11 कलकत्ता सग्रहालय सख्या 806

[413] जहीर, मोहम्मद, दि टैम्पल ऑव भीतरगॉव, दिल्ली, 1981, पृष्ठ 84, 87, 88, 89, 90, 93.

[414] लाल, बी0बी0, एक्सकेवेशन ऍट शृंग्वेरपुर, वाल्यूम I, 1977–86, दिल्ली, 1993, पृ0 111, सख्या 1, प्लेट LXXXV-LXXXVII

[415] वही, पृ0 115, सख्या 3, प्लेट LXXXIXA एवम् B.

शिव से सम्बद्ध मृण्मय शीर्षो और फलको मे **भीटा से प्राप्त साथ बैठे शिव एवम् पार्वती की विशाल मृण्मूर्ति जो बहुत कुछ खण्डित होनें के बाद भी पूर्ण भव्यता एवं उत्कृष्ट कला की सूचक है, उमा-महेश्वर प्रतिमा का प्रतिनिधित्व करती है।** दैवी जोडा एक नीची आयताकार चौकी पर बैठा हुआ है। नीचे शिव का वाहन वृषभ तथा पार्वती का सिह प्रदर्शित है। शिव यूरोपीयन मुद्रा में पर्यंकासन मे बैठे हुए है। उनके गले मे माला तथा दोनो हाथो मे चूडियॉ है। पार्वती के गले मे दो हार है। यद्यपि उनके हाथ क्षतिग्रस्त है, तथापि पैर अक्षत है और वे भारी अलकृत पायजेब पहने हुए है। इसका समय द्वितीय शती ई0 का उत्तरार्द्ध अथवा तृतीय शती ई0 का पूर्वार्द्ध माना जाता है। सम्प्रति भारतीय सग्रहालय, कलकत्ता मे प्रदर्शित है।[416] भीटा से प्राप्त कुषाणकाल या उसके बाद के 5 इच ऊँचे मृण्शिर के ललाट पर तृतीय नेत्र का अंकन है, तथा बालो के चारो ओर फीता लपेटा गया है। ठुड्डी के नीचे नक्काशीदार रेखाओं के द्वारा दाढी को दर्शाया गया है। यह मृण्शिर शिव का माना जाता है।[417]

कौशाम्बी से प्राप्त सॉचे द्वारा निर्मित शिव मृण्शिर[418] पर जटाजूट का अकन है। ऑखे, नाक एव कान स्पष्ट है परन्तु ओंठ एवं उसके नीचे का भाग खण्डित है। यहा से मृण्मय एकमुखीलिङ्ग के उदाहरण भी प्राप्त हुए है। एक उदाहरण मे मुख के पृष्ठ भाग मे लिग का उभार स्पष्ट है सिर पर केश एवं मस्तक पर क्षैतिजाकार नेत्र बना हुआ है।[419] एक अन्य उदाहरण मे मस्तक पर तीसरा नेत्र लम्बवत् बना हुआ है तथा सिर पर जटाजूट का अकन है।[420]

कौशाम्बी के घोषिताराम क्षेत्र के हारीति मन्दिर से प्रथम शती ई० की गजलक्ष्मी की विशाल मृण्मूर्ति कुबेर तथा हारीति के साथ प्राप्त हुई है। यह 2½ फुट की है। सम्प्रति

[416] धवलिकर, एम0के0, मास्टरपीसेस ऑफ इण्डियन टेराकोटाज, बम्बई, 1977, पृ0 59, भारतीय सग्रहालय कलकत्ता, सख्या A•103080

[417] मार्शल, ऍक्सकेवेशन एट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट 1911–12, पृ0 75

[418] सम्प्रति जी0आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास सस्कृति एव पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे संग्रहीत है– सख्या डी/ 62

[419] एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी, 1949–50, रिपोर्ट नं0 74, प्लेट XXVIIB

[420] वही, प्लेट संख्या XXVIIC.

जी0आर0 शर्मा मेमोरियल सग्रहालय, प्राचीन इतिहास, सस्कृति एव पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय मे प्रदर्शित है। सर्वाभरणभूषिता देवी की शिरोभूषा मे गजो का अकन है, जो आवर्जित घटो से देवी का अभिषेक करते दिखाये गये है। अधोभाग मे साडी, कानो मे कुण्डल, गले मे माला, हाथो मे बाजूबन्द तथा कमर मे कटिसूत्र स्पष्ट है। उनका दाहिना हाथ अभय–मुद्रा मे तथा बाये हाथ मे कमल लिये हुए है। मृत्तिका कला मे इस प्रकार का अकन अन्यत्र दुर्लभ है।[421]

धार्मिक मृण्मूर्तियो मे शृंग्बेरपुर से प्राप्त कुबेर की मृण्मूर्ति का मुख सॉचे में बना है, जिसमे सुन्दर नुकीली नाक, बडी खुली हुई ऑखे, गोलाकार छिद्रो के द्वारा बनाई गई पुतलियॉ स्पष्ट है। वह सम्भवत प्रलम्बपद आसन मे चौकी पर बैठे हुये है। उनके सिर पर पगडी, कानो मे कुडल तथा गले मे चिपटा हार है।[422]

मृत्तिका कला के अन्तर्गत लौकिक विषयों से सम्बन्धित अकनो की कोई सीमा नही प्राप्त होती है। यह कला मूलत जनसाधारण तथा लोकजीवन से सम्बन्धित मानी जाती है अत· सामाजिक अनुष्ठानो, धार्मिक कृत्यो, सजावट की वस्तुओ और खिलौनो के रूप मे बडे पैमाने पर मृण्मूर्तियो का सृजन किया गया। इनमे स्त्री–पुरुष आकृतियों, ऐतिहासिक दृश्यो तथा लोक–जीवन से सम्बन्धित दृश्यो के साथ ही पशु–पक्षी की मृण्मूर्तियॉ भी सम्मिलित की जाती है। निचले दोआब के क्षेत्रो मे कौशाम्बी, भीटा, झूसी आदि क्षेत्रो से सुन्दर दृश्य फलक प्राप्त हुए है। इनमे अधिकाशत· शुगकालीन है। **भीटा का संख्या 17 मृण्फलक अत्यन्त सुन्दर है। डा० फागिल नें इसकी तुलना कालीदास के प्रसिद्ध नाटक शकुन्तला से की है,** जिसमे राजा दुष्यन्त और उनके सारथी से हिरन को न मारनें की प्रार्थना की जा रही है, जो कि कण्व के आश्रम के है। फलक पर अकित दृश्यों में चार घोडो के रथ के साथ, सारथी एवम् एक अन्य पुरुष वृक्ष से बने हुए बाडे की ओर देख रहे है। उस बाडे के चारो ओर चैत्य द्वार पर एक मन्दिर बना हुआ है। सामने मन्दिर से नीचे कमलयुक्त

---

[421] चित्रफलक क्रमसख्या 20(A)

[422] लाल, बी0बी0, ऍक्सकेवेशन ऍट शृग्वेरपुर, वाल्यूम– I, (1977-86) दिल्ली, 1993, पृ0 117, सख्या 6 प्लेट XCII-XCIII

जलाशय मे पानी बह रहा है तथा नीचे की ओर दो हिरन तथा सम्भवत एक मोर है। यह शुगकालीन फलक है।[423]

भीटा से प्राप्त एक गोलाकार मृण्फलक पर गांव का दृश्य चित्रित है। इसके किनारे नक्काशीदार लाइनो के द्वारा सजे हुए है। बीच मे, बाई ओर वेदिका के भीतरी भाग मे एक मकान है, तथा पिछले भाग मे पेड है, नीचे की ओर कमलयुक्त छोटा तालाब बना हुआ है। दाहिनी ओर एक बैलगाडी है और इसके निचले हिस्से मे सम्भवत जंगल बनाया गया है, क्योकि इसमे एक हिरन दिखाई पड रहा है। सबसे ऊपरी हिस्से मे एक घेरे के भीतर स्त्री–पुरुष का जोडा है, परन्तु उनके विषय मे अन्य कोई विवरण नही प्राप्त होता है।[424] **यहां से प्राप्त एक अन्य फलक पर बैलगाडी में उत्सव का दृश्य है,** जिसमे छ व्यक्ति दोनों तरफ तीन–तीन की पक्ति मे बैठे हुए है। प्रत्येक ओर दो पुरुष तथा एक स्त्री है। बीच मे थाली मे भोज्य पदार्थ रखा हुआ है। इन दोनो फलको का समय लगभग द्वितीय शती ई0पू0 है।[425]

कौशाम्बी से प्राप्त शुगकालीन मृण्फलकों पर अकित विषय विविध है। इन पर संगीत, नृत्य, आपानगोष्ठी, कुश्ती, मिथुन–दम्पत्ति इत्यादि का चित्रण दीख पडता है। **इलाहाबाद संग्रहालय में प्रदर्शित कौशाम्बी के शुंगकालीन मृण्फलकों के निम्न उदाहरण उल्लेखनीय है–**

वत्सराज उदयन द्वारा अवन्ति की [illegible] वासवदत्ता के हरण का दृश्य, जिसमे उदयन, वासवदत्ता, तथा विदूषक वसतक, हथिनी भद्रावती पर सवार होकर भाग रहे है। वसतक थैले से सिक्के बिखेर रहा है तथा अवन्ती के सिपाही, जो उदयन का पीछा कर रहे है, सिक्को को समेटने मे व्यस्त है।[426]

---

[423] मार्शल, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वेऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, पृ0 73

[424] धवलिकार,, एम0के0, मास्टरपीसेस ऑफ इडियन टेराकोटाज, बम्बई, 1977, पृ054, सम्प्रति भारतीय सग्रहालय कलकत्ता मे सग्रहित है।

[425] वही, पृ0 55

[426] इलाहाबाद सग्रहालय संख्या 5008

चार लोगों के समूह में, मध्य में स्त्री-पुरुष आलिंगन मुद्रा में खडे हैं, तथा उनके दोनो ओर एक–एक अनुचर स्त्री खडी हुई है।[427]

सोफे पर बैठे हुए दम्पत्ति, जिसमें स्त्री आभूषणों से सजी हुई है।[428]

खडी मुद्रा में प्रेमरत दम्पत्ति, स्त्री अपने हाथ मे सहभागी पुरुष का गुलबन्द पकडे हुए है जबकि पुरुष दाहिने हाथ से स्त्री के कटिसूत्र को पकडे है।[429]

नृत्य एवं संगीत का दृश्य, जिसमे पेड के नीचे पलग पर दम्पत्ति बैठे हुए है, उनके सम्मुख एक स्त्री नृत्य प्रस्तुत कर रही है।[430]

गोष्ठीयान का दृश्य, जिसमे लोग विहार और वन भोजन के लिये जा रहे है। गोष्ठी मे चार पुरुष और दो स्त्रियॉ है, वे यान के दोनो ओर तीन–तीन की पक्तियो मे बैठे है, जिसमे प्रत्येक समूह के बीच मे एक स्त्री है। दोनो पक्तियो के बीच में बडे थाल मे भोज्य पदार्थ रखा हुआ है जिसमे मूलिया साफ पहचानी जा सकती है।[431]

स्त्री को हाथों में उठाये हुए दानव, सम्भवत इस मृण्पट्टक मे रावण द्वारा सीता–हरण का दृश्य चित्रित किया गया है। जिसमे एक पुष्ट शरीर वाला मानव एक स्त्री को अपने हाथो मे उठाये लिये दौडा जा रहा है। उसने धोती, हार तथा कुण्डल पहन रखा है जबकि स्त्री साडी पहने हुए है तथा कमर मे दो लडी की मेखला है।[432]

नाव के आकार का रथ जिसे चार बैल खींच रहे है। रथ पर बैठी हुई पुरुष आकृति बैलो से जुडी हुई रस्सी को पकडे हुये है।[433]

शुक के साथ क्रीडा करती स्त्री, खडी हुई स्त्री के दाहिने हाथ पर तोता बैठा हुआ है। स्त्री गले मे हार, कानो मे कुण्डल, चूडियॉ तथा कटिसूत्र धारण किये हुए है।[434]

---

[427] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5286
[428] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5012
[429] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5196
[430] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4319.
[431] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4870
[432] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5108 तथा 5238
[433] इलाहाबाद संग्रहालय सख्या 5076
[434] इलाहाबाद संग्रहालय सख्या 2493

मिथुन फलकों में झूँसी से प्राप्त, लगभग द्वितीय प्रथम शती ई०पू० के फलक पर दम्पत्ति चित्रित हैं, जिसमे दाहिनी ओर पुरुष है। वह दाहिने हाथ मे सारगी पकडे हुए है बायाँ हाथ स्त्री के गले मे है। उसके सिर पर पगडी, धोती तथा कन्धे पर दुपट्टा है। स्त्री के सिर पर भारी शिरोभूषा है, जिसमे शिर के बाएँ किनारे पर फूलो की बनावट वाला अलकृत फीता लटक रहा है तथा एक तीर एव अन्य अस्पष्ट चिन्ह शिरोभूषा की तहो मे खुसे हुए है। वह चिपटे गोल आकार वाले कुण्डल तथा हार पहने हुए है। यह फलक सॉचे द्वारा निर्मित है।[435] इसी प्रकार **भीटा से प्राप्त फलक में स्त्री और पुरुष आमनें-सामनें खडे हुए हैं।** स्त्री का दाहिना हाथ पुरुष के गले में है तथा बायॉ किनारे पर लटक रहा है। पुरूष का दाहिना हाथ कमर पर है तथा बायॉ स्त्री के गले मे डाले हुए है। दोनो के केश उनके कधो पर गिरे हुए है।[436]

मृण्मयी कला के सम्पूर्ण उदाहरणों में झूँसी से प्राप्त लगभग प्रथम शती ई० का सॉचे द्वारा बनाया गया पोले गुंबज का ढॉचा अद्भूद एवम् अनूठा उदाहरण है। इसका आधार समतल गोलाकार है। इस पर चमकीले काले रग की पालिश की गई है। गुबज पर एक स्त्री–पुरुष का जोडा, आधा मनुष्य तथा आधा चिडिया के मुख वाला सामने चेहरे के समीप जुडा हुआ है। प्रत्येक आकृति का पिछला भाग फैलाये हुए पंखयुक्त है। स्त्री के केश ऊपर शीर्ष पर एक फीते के द्वारा बधे हुए है तथा वह कानों मे कुडल पहने है। पुरुष के घुँघराले बाल आदर्श यूनानी पद्धति मे एक फीते के द्वारा बंधे हुए हैं।[437] ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री–पुरुष के मुख विशिष्ट साचो के द्वारा बने हुए है तथा यह यूनानी हाथो से बनी हुई मूर्तियो के ढाचो का स्मरण कराते है।[438]

---

[435] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4606, काला, सतीश चन्द्र, टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम दिल्ली, 1980, पृ035

[436] मार्शल, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वेऑफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911–12, पृ0 77, सख्या 69

[437] इलाहाबाद संग्रहालय सख्या 4973, काला, सतीश चन्द्र, टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, दिल्ली, 1980, पृ0 70, क्रम सख्या 368

[438] वही, पृ0 70.

प्रथम शती ई0 से लेकर पाचवी–छठी शती ई0 तक के स्त्री, पुरुष मृण्शिर, धड तथा पूर्ण रूपो के सुन्दर उदाहरण कौशाम्बी, भीटा, झूँसी आदि स्थानो से प्राप्त हुए है। कौशाम्बी से प्राप्त स्त्री मृण्मूर्तियाँ विविध मुद्राओ मे प्राप्त हुई है। जिनमे कर्णकुण्डल स्पर्श मुद्रा[439] तथा नृत्य मुद्रा[440] उल्लेखनीय है। पुरुष मृण्मूर्तियो मे वह बॉसुरी[441], वीणा[442] एव मृदंग[443] बजाता हुआ दिखाया गया है।

झूँसी से स्त्री मृण्मूर्तियो की तुलना मे पुरुष मृण्मूर्तियॉ तथा मृण्शिर कम सख्या मे प्राप्त हुए है। इनमे कतिपय उदाहरण हाथ से डौलियाकर बनाये गये है, जबकि अधिकाश सॉचो द्वारा निर्मित है। सम्प्रति इलाहाबाद सग्रहालय मे सग्रहीत है। हाथ से डौलियाकर बनाई गई स्त्री मृण्मूर्तियो मे सख्या **5170** खडी हुई स्त्री की है, जिसकी आखें मिट्टी की छोटी गोलियो के द्वारा बनायी गई है तथा नाक चुटकी दबाकर उभारी गई है। हाथ तथा पैर डडे के समान दोनो ओर तने हुए है तथा नक्काशीदार बिन्दुओ के द्वारा हार दिखाया गया है। मूर्ति का बायॉ हाथ टूटा हुआ है तथा कमर पर एक मोटी रेखा दिखाई पडती है।[444]

इलाहाबाद सग्रहालय सख्या **1553**, स्त्री मृण्मूर्ति का मुख छोटा तथा बर्फी के आकार की ऑखे है। बाल पीछे की ओर निकले हुए है तथा शिर के पीछे एक जूडा बना हुआ दिखाई देता है। कानो मे गोल कुडल पहने हुए है।[445]

इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 4617 मृण्मूर्ति वस्त्रहीन देवी की है। उनकी शिरोभूषा गोल तकिये जैसी त्रिभुजाकार डिजाइन से अलकृत है। वह डोरी के समान कटिसूत्र, कठहार तथा पायजेब पहने हुए है। इस पर लाल रग की पालिश की गई है।[446] सख्या **3012** के पुरुष मृण्शिर की ऑखे लम्बी तथा पुतलियॉ छेद करके बनायी गई है। भौहे तथा

---

[439] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4155, 5012, 2506, 534, 3407

[440] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5141, 4767, 3575, 5226

[441] राष्ट्रीय सग्रहालय, दिल्ली 52 66

[442] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5008, 4319

[443] इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 2589

[444] काला, एस0सी0, टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, दिल्ली, 1980, पृ0 9, क्रम सख्या 7, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5170

[445] वही, पृ0 10, क्रम सख्या 8, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 1553

[446] वही, पृ0 64, क्रम सख्या 330, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4617

बालो का एक भाग घुमावदार नक्काशीयुक्त रेखाओ के द्वारा दर्शाया गया है तथा शीर्ष पर जटा एवम् भौहो के बीच मे ऊर्णा का अकन है। इनका समय द्वितीय शती ई0 है।[447]

झूॅसी की पॉचवी–छठी शती ई0 की हाथ से डौलियाकर बनायी गई मृण्मूर्तियो मे एक माता और शिशु की है जिसमे माता, शिशु को अपने बाये हाथ मे पकडे हुए है तथा दाहिने हाथ मे खिलौना है। वह साडी तथा कटिसूत्र पहने है। माता का शिर तथा घुटनो के नीचे का भाग नही प्राप्त हुआ है जबकि शिशु का मुख रगड गया प्रतीत होता है।[448]

इलाहाबाद सग्रहालय सख्या **3579** के स्त्री धड की कमर पतली तथा नाक क्षतिग्रस्त है। बाल बीच से बॅटे हुए है तथा सिर के पीछे लटो के समूह के रूप मे व्यवस्थित है। वह कानो मे गोलाकार कुण्डल पहने हुए है।[449] इसी वर्ग मे संख्या **5162** स्त्री मृण्शिर की ओठ मोटी तथा बाल बीच से विभाजित है। उसके चेहरे के एक ओर घुॅघराले बालो की लटे तीन रेखाओ के क्रम मे लटक रही है तथा बाएॅ कान मे दोहरा गोलाकार कुंडल पहने है।[450]

झूॅसी की सॉचे द्वारा निर्मित मृण्मूर्तियो मे लगभग प्रथम शती ई0 की खडी स्त्री मृण्मूर्ति के मुख के एक ओर शिरोभूषा की तहो से एक चेन लटकती हुई दिखाई पडती है। उसका बाया हाथ कमर पर रखा हुआ है तथा दाहिनें हाथ से वह एक चिडिया के शिर को पकडे हुए है। वह कुण्डल, कगन, हार, कटिसूत्र और साडी पहने हुए है।[451] दूसरी शती ई0 के पुरुष मृण्शिर का मुख छोटा, ऑखे झुकी हुई तथा कान अलग से लगाये गये है, वह गोल टोपी पहने हुए है।[452]

झूॅसी की पाचवी–छठी शती ई0 की साचे द्वारा निर्मित मृण्मूर्तियो मे स्त्री मृण्शिरो की सख्या अधिक है। इसमे संख्या **3711** स्त्री मृण्शिर के केश बीच से बॅटे हुए है तथा

---

[447] वही, पृ0 85, क्रम सख्या 476, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 3012
[448] वही, पृ0 63, क्रम सख्या 321, इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 428
[449] वही, पृ0 96, क्रम संख्या 569, इलाहाबाद सग्रहालय संख्या 3579
[450] वही, पृ0 96, क्रम संख्या 565, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 5162
[451] वही, पृ0 43, क्रम संख्या 217, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4795
[452] वही, पृ0 84, क्रम संख्या 475, इलाहाबाद सग्रहालय संख्या 3655

लटो के रूप मे सुन्दरतापूर्वक व्यवस्थित है। नाक लम्बी, ओठ मोटे तथा मुख खुला हुआ है। पलको को उभरी हुई रेखाओ के द्वारा दर्शाया गया है।[453] सख्या **4755** स्त्री मृण्शिर का मुख अण्डाकार मुस्कराता हुआ है। बाल पीछे की ओर गिरे हुए है तथा ललाट पर एक पतले फीते के द्वारा सॅवारे हुए है। सिर के पीछे एक बडी कलगी है तथा उसी के समानान्तर चेहरे के दूसरी ओर घुॅघराले बालो की लटे लटकी हुई है।[454] सख्या **783** स्त्री मृण्शिर का चेहरा गोल, बडी ऑखे तथा मोटे ओठ दृष्टिगत होते है। चेहरे के एक ओर सामान्य सीधे बाल तथा दूसरी ओर घुॅघराले बालो की लटे लटक रही है।[455]

पॉचवी–छठी शती ई0 के उदाहरणो मे भीटा से प्राप्त स्त्री धड का मुख सॉचे द्वारा निर्मित है। उसके केश मधुकोष के छत्ते की पद्धति मे सवरे हुए है तथा एक प्रकार के आभूषण के द्वारा बीच से दो भागो मे बॅटे हुए है। सिर के शीर्ष भाग पर कलगी, कानो मे कुण्डल तथा स्तनो को चोली के द्वारा ढका गया है। इसकी नाक क्षतिग्रस्त है।[456]

निचले दोआब के क्षेत्रों से प्राप्त मृण्मय फलको के अन्य उदाहरणो मे **भीतरगॉव से प्राप्त चैत्य झरोखे से झॉकती हुई युवा स्त्री फलक विशेष उल्लेखनीय है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है।**[457] स्त्री मुखाकृति से स्पष्ट होता है कि वह अपने प्रेमी का उत्सुकतापूर्वक इन्तजार कर रही है। यद्यपि उसकी नाक क्षतिग्रस्त है, तथापि होठ एव उभरी हुई भौहे उसकी व्यग्रता को व्याख्यायित कर रही है। कटावयुक्त ऑखे तथा भौहे, बीच से बॅटे हुए घुॅघराले बाल तथा कुछ बालो की लटे चेहरे पर प्रभावशाली ढग से लटकी हुई दिखाई पडती है। इसका समय पॉचवी छठी शती ई0 माना जाता है।[458]

---

[453] वही, पृ0 69, क्रम सख्या 363, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 3711
[454] वही, पृ0 97, क्रम सख्या 571, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4755
[455] वही, पृ0 97, क्रम सख्या 578, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 783
[456] वही, पृ0 96, क्रम संख्या 563, इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 3174
[457] धवलिकर, एम0के0, मास्टरपीसेस ऑफ इण्डियन टेराकोटाज, बम्बई, 1977, पृ0 61, राज्य सग्रहालय लखनऊ सख्या 67 595 चित्रफलक क्रम सख्या 20 (B)
[458] वहीं, पृष्ठ 61

मृण्मूतिर्यो मे एक वर्ग पशु आकृतियो का भी है। निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलो से बडी सख्या मे अनेक पशुओ की सुन्दर मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुई है। प्राक्–मौर्यकालीन पशु मृण्मूर्तियो मे भीटा से काले चमकीले चिकने रग मे रगा हुआ घोडे का मृण्शिर प्राप्त हुआ है जिस पर हल्के पीले रग के बिन्दुओ द्वारा चित्रकारी की गई है।[459] भीटा से प्राप्त अन्य उदाहरणो मे शुगकालीन हाथ से डौलियाकर बनाया गया छोटे आकार का ऊँट एव ऊँट का मृण्शिर उल्लेखनीय है।[460] पॉचवी छठी शती ई0 की हाथ से डौलियाकर बनायी गयी, बैठे हुए हिरन की मृण्मूर्ति झूँसी से प्राप्त हुई है। उसकी लम्बी गर्दन, तने हुए कान तथा छोटी पूँछ दृष्टिगत होती है।[461] श्रृग्वेरपुर से भी हाथी, घोडे, हिरन तथा चिडिया की मृण्मय मूर्तियॉ प्राप्त हुई है। तकनीकी दृष्टि से ये सभी आकृतियॉ हाथ से डौलियाकर बनाई गयी है। इनमे बडी पशु मृण्मूर्तियॉ अन्दर से पोली है जबकि छोटी आकृतिया ठोस बनायी गई है। यहॉ से प्राप्त बडे आकार की पशु मृण्मूतियो मे हाथी की आकृति उल्लेखनीय है। यद्यपि यह बहुत क्षतिग्रस्त है, तथापि कानो के द्वारा यह स्पष्ट है कि यह मृण्मय मूर्ति हाथी की है।[462] दूसरे उदाहरण मे हाथी के मृण्शिर की सूँड एवम् दॉत टूटे हुए है, तथापि उसके सिर की उभरी हुई गॉठे तथा कान स्पष्ट परिलक्षित होते है।[463]

श्रृग्वेरपुर से प्राप्त घोडे की मृण्मयी मूर्तियो मे गर्दन पर लम्बे बाल तथा कान स्पष्ट दिखाई पडते है जबकि उसका थुथूॅन और पैर टूटा हुआ है।[464] अन्य उदाहरण मे गर्दन मे

---

459 मार्शल, ऍक्सकेवेशन ऍट भीटा, आर्कियोलॉजिकल सर्वे आफ इडिया, एनुअल रिपोर्ट, 1911-12, पृ0 72, कमसख्या 3

460 वही, पृष्ठ 74, कमशख्या 30 एवम 31

461 काला, एस0सी0, टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, दिल्ली, 1980 पृष्ठ 109, कम सख्या 671, इलाहाबाद, सग्रहालय सख्या 4083

462 लाल, बी0बी0 , ऍक्सकेवेशन ऍट श्रृग्वेरपुर, वाल्यूम–I, 1977–86, दिल्ली, 1993, पृष्ठ 144, प्लेट CLI

463 वहीं, पृष्ठ 144, प्लेट CLII

464 वही, पृष्ठ 145, प्लेट CLVA

लम्बे बाल तथा लगामयुक्त घोडे की आकृति मिलती है।[465] इसी प्रकार यहाँ से सीगयुक्त हिरन[466] तथा बैल की मृण्मयी मूर्तिया प्राप्त हुई है।[467]

कौशाम्बी से प्राप्त मृण्मय पशु आकृतियो मे हाथी घोडा, हिरन एव गैण्डा की मूर्तियॉ उल्लेखनीय है। अन्य आकृतियो मे शेर, सवार सहित घोडा, ऊँट, बैल, भेडा, वदर, तथा मकर प्राप्त हुए है। कौशाम्बी से दो पहिये तथा तीन पहिये वाली मिट्टी की गाडियॉ प्राप्त हुई है। इनका निर्माण सम्भवत बच्चो के खेलने के लिये किया गया होगा। दो पहियें वाली गाडियो मे मेढागाडी [468] मकरगाडी[469] तथा सिहमुखी मकरगाडी[470] उल्लेखनीय है।

---

465 वही, पृष्ठ 146, प्लेट CLVB
466 वही, पृष्ठ 146, प्लेट CLVIA and B
467 वही, पृष्ठ 147, प्लेट CLVIIC and D
468 इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 4464
469 इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 2592
470 इलाहाबाद सग्रहालय सख्या 529

षष्ठ अध्याय

सांस्कृतिक विवेचन

षष्ठ अध्याय

सांस्कृतिक विवेचन

कला का उद्‌गम सौन्दर्य की मूलभूत प्रेरणा से होता है।[1] भारतीय कलाकृतियों में सौन्दर्यानुभूति दैवी भावना से कभी अलग नहीं रही।[2] फलतः कलाकारों नें अपनी धार्मिक भावना को प्रकृति, सौन्दर्य एवं रूप के समावेश से कल्पित कर साकार किया।[3] वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि ''कला श्री एवं सौन्दर्य को प्रत्यक्ष करने का साधन है। प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य व श्री का निवास रहता है।''[4]

भारतीय कलात्मक उदाहरणों में सौन्दर्यात्मक पक्ष मुख्यत. बाह्य तथा आन्तरिक, इन दो रूपों में व्यक्त हुआ है। बाह्य रूप के अन्तर्गत सौन्दर्य की अभिव्यक्ति अंगों की बनावट, वस्त्र-विन्यास, प्रसाधन तथा अलंकरण के द्वारा प्रदर्शित होती है। इस संदर्भ में बृहत्संहिता में निम्न वर्णन है-

देशानुरूपभूषणवेषालङ्कारमूर्त्तिभिः कार्या।
प्रतिमा लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति।।[5]

अर्थात् प्रतिमा के भूषण, वेष, अलंकार और मूर्ति अपने-अपने देश के अनुरूप बनावें क्योंकि शुभ लक्षणों से युत प्रतिमा सदा बनाने वाले की उन्नति करती है।

इसी प्रकार कलाकृतियों में आन्तरिक सौन्दर्याभिव्यक्ति को भावों के द्वारा

---

1 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ-299
2 श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-5.
3 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ-49.
4 अग्रवाल, वासुदेव शरण; कला और संस्कृति, इलाहाबाद, 1953, बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 77-78.
5 बृहत्संहिता, अध्याय 58, श्लोक 29, पृष्ठ 391-392.

प्रदर्शित किया गया है। खड़ी अथवा बैठी हुई प्रतिमाओं में एक निश्चित भाव की अभिव्यक्ति के लिये शरीर अथवा हाथ का विभिन्न ढंग से प्रदर्शन मिलता है। आसन में शरीर की विभिन्न अवस्था तथा मुद्रा में हाथों के प्रदर्शन द्वारा मूक देवी-देवता के विचारों को अभिव्यक्त किया गया है।[6] हस्त मुद्राओं का प्रदर्शन बौद्ध तथा जैन प्रतिमाओं में विशेषतया हुआ है जबकि ब्राह्मण मूर्तियों में मुद्राओं के स्थान पर देवी-देवताओं के हाथों में आयुध दीख पड़ते हैं।[7] इसी प्रकार कलाकृतियों में देवी-देवताओं के वाहन के रूप में अनेक पशु-पक्षियों तथा जल जन्तुओं का प्रदर्शन हुआ है, उदाहरण के लियेः-सिंह, हस्ति, अश्व, नन्दि, हिरण, हंसपक्षी, गरुड़, शुक, अनन्त (हजार सिरों वाला शेषनाग), मयूर एवं कुक्कुट इत्यादि का विविध प्रकार से अंकन प्राप्त होता है। पद्म, कल्पवृक्ष, कल्पलता, पूर्णकलश स्वस्तिक, श्रीवत्स, चक्र, वर्द्धमान, नन्दयावर्त, पंचाङ्गुल, मीन-मिथुन, वृक्ष, दर्पण आदि प्रतीकों का भी अलंकरण हेतु प्रदर्शन हुआ है। मत्स्यपुराण, अग्निपुराण तथा विष्णुधर्मोत्तरपुराण में प्रतिमाओं के रूपविधान एवं मापदण्ड के अतिरिक्त वेशभूषा, अलंकरण तथा अनेक प्रकार के वाहनों, आयुधों तथा आसनों का उल्लेख हुआ है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के अधीत क्षेत्रों से प्राप्त विभिन्न सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की प्रतिमाओं के सौन्दर्यात्मक पक्ष के अध्ययन हेतु निम्नलिखित प्रधान तत्वों को सम्मिलित किया गया हैः-

1 प्रतिमाओं के आसन तथा मुद्रायें।

2. प्रतिमा का वाहन।

3. आयुध एवं प्रतीक।

4. प्रतिमाओं का वस्त्राभूषण एवं अलंकार।

---

6 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वि0स0 2026, वाराणसी, पृष्ठ 267.

7 वही, पृष्ठ 269.

1. प्रतिमाओं के आसन एवं मुद्रायें

आसनः—कला के अन्तर्गत प्रतिमाये प्राय खडी अथवा बैठी अवस्था मे प्राप्त हुई है। ब्राह्मण प्रतिमाओं मे विष्णु की प्रतिमाये शयन अवस्था मे प्राप्त होती है। खडी प्रतिमाये निम्न आसनो मे बनाई गई है—

(I) **समभंगः**—एक सीध में (तनकर) निर्मित खड़ी मूर्ति को 'समभंग' का नाम दिया गया है। बुद्ध और जैन तीर्थकरों की खड़ी मूर्तियों में यह आसन प्रदर्शित है। जैन कला के अन्तर्गत इसे 'कायोत्सर्ग' अवस्था कहा गया है।

(II) **त्रिभंगः**—मस्तक, कटि और पैर इन तीनों अंगों से बलखाती प्रतिमा को त्रिभंग प्रतिमा कहते हैं।[8] ब्राह्मण प्रतिमाओं में भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति त्रिभंग अवस्था में प्राप्त होती है। अप्सराओं, देवांगनाओं, नृत्यांगनाओं तथा आलिंगनयुक्त प्रतिमाओं में भी यह आसन प्रदर्शित मिलता है।

(III) **अतिभंगः**—मस्तक, शरीर, कटि, पाद और हस्त अर्थात् सभी अंगों से बलखाती हुई प्रतिमा को 'अतिभंग' अवस्था कहते हैं। नटराज-शिव, महिषासुर-मर्दिनी एवं युद्धरत देवी-देवताओं की मूर्तियों में यह अवस्था प्रदर्शित मिलती है।[9]

बैठी हुई प्रतिमाओं में अनेक आसन प्रदर्शित है। आगम ग्रन्थों में शिव के 84 आसन वर्णित हैं।[10] योग अवस्था में-पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिकासन, दण्डासन, पर्यङ्कासन, ज्ञानासन, वज्रासन, योगासन तथा आलीढ़ासन इत्यादि का

---

8 सोमपुर, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 21.
9 वही,, पृष्ठ 21.
10 वही, पृष्ठ 18.

उल्लेख मिलता है।[11] साहित्यिक विवरणों में कतिपय आसनों का उल्लेख प्रायः पशु–पक्षियों के नाम के साथ किया गया है यथाः–सिंहासन, कूर्मासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, मत्स्यासन इत्यादि नामांकित हैं।[12] ये सभी आसन किसी न किसी विशेष स्थिति के द्योतक हैं तथा थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ विभिन्न सम्प्रदाय के देवी–देवताओं की प्रतिमाओं में प्रदर्शित मिलते हैं। **बैठी हुई प्रतिमायें प्रधानतया निम्न आसनों में बनाई गईः–**

(I) **पद्मासनः**–सामान्य पालथी मारकर बैठना पद्मासन कहलाता है। इसे योगासन तथा ध्यानासन भी कहते हैं।[13] मानकुँवार की बैठी हुई बुद्धमूर्ति पद्मासन अवस्था में प्राप्त हुई है।[14] कौशाम्बी से चौथी–पाँचवीं शताब्दी ई0 की पद्मप्रभ की प्रतिमा पद्मासन अवस्था में बैठी हुई मिली है। सम्प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में संग्रहीत है।[15]

(II) **अर्धपर्यकासन अथवा ललितासनः**–इस आसन में दोनों पैर आधार के ऊपर मुड़े रहते हैं। एक पैर घुटनें से मुड़कर ऊपर की ओर रहता है और दूसरा उसी प्रकार मुड़कर नीचे लटकता रहता है।[16] उमा–महेश तथा अन्य देवी–देवताओं की एकाकी अथवा युग्म मूर्तियों में यह आसन प्रदर्शित है।[17]

---

11 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 268

12 बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 73.

13 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्प संहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 18, श्रीवास्तव, ए0एल0, भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 106, रेखाचित्र 2.

14 फ्लीट, कार्पस इन्स्क्रप्शनम इन्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 45–47, राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या 0.70.

15 शर्मा, जी0आर0; हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री, इलाहाबाद, 1980, पृष्ठ–43

16 बाजपेयी, संतोषकुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 73, सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता बम्बई, 1975, पृष्ठ 18, रेखाचित्र 2

17 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 18.

(III) **वज्रपर्यकासन अथवा वज्रासनः**–कमल या सिंहासन पर पालथी मारकर बैठी प्रतिमा में तलुओं को ऊपर किए एक के ऊपर दूसरा पैर स्थित होता है। बुद्ध एवं महावीर की प्रतिमायें वज्रपर्यंक आसन में ध्यान या मनन करती अथवा उपदेश देती हुई उपलब्ध हुई हैं।[18]

(IV) **उत्कटासनः**–इस अवस्था में दोनों पैर घुटनों के पास से इस प्रकार मोड़कर रखे जाते हैं कि केवल पैरों का घुटनों से नीचे का भाग दिखाई देता है।[19] विष्णु की दशावतार प्रतिमाओं में नृसिंह प्रतिमाओं के अन्तर्गत यह आसन प्रदर्शित मिलता है।[20]

मुद्रायेंः–कला के अन्तर्गत बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण प्रतिमायें अनेक मुद्राओं में प्राप्त हुई हैं। हाथ के भावाभिनय द्वारा मुद्रा विशेष अभिप्राय लक्षित करती है। बौद्ध मूर्तियों तथा ब्राह्मण मूर्तियों में वरद तथा अभय मुद्राएं समान रूप से मिलती हैं, जबकि भूमिस्पर्शमुद्रा, धर्मचक्रप्रवर्तनमुद्रा, व्याख्यान मुद्रा आदि का प्रदर्शन बौद्ध मूर्तियों में ही हुआ है। इनके अतिरिक्त कट्यावलंबी मुद्रा, गजहस्त या दंडहस्त मुद्रा, सिंहकर्ण मुद्रा, करसंपुट मुद्राओं का प्रदर्शन प्रतिमाओं में दिखाई देता है।[21] ब्राह्मण मूर्तियों में मुद्राओं के स्थान पर हाथों में आयुध दीख पड़ते हैं, जिनका बौद्ध मूर्तियों में अभाव है।[22] विभिन्न सम्प्रदाय के देवी–देवताओं की प्रतिमाओं में प्रदर्शित मुद्राओं में निम्न उल्लेखनीय हैः–

(I) **अभय मुद्राः**–दाहिने हाथ की हथेली, सामनें की ओर खुली रखकर भक्त को अभय वचन देती मुद्रा को अभय मुद्रा कहते

---

18 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 269, रेखाचित्र 2.

19 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ–73, रेखाचित्र 2.

20 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 19.

21 वही, पृष्ठ 16.

22 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 269

हैं।[23] निचले दोआब के स्थलों में मानकुँवार की बैठी बुद्ध प्रतिमा में अभयमुद्रा दिखलायी गयी है।[24]

(II) **वरद मुद्राः**—दाहिने हाथ की हथेली, नीचे की ओर, खुली रखकर, भक्त पर प्रसन्नता से वरदान देती मुद्रा को वरदमुद्रा कहते हैं। वरदमुद्रा खड़ी प्रतिमाओं में प्रदर्शित मिलती है।[25]

(III) **भूमिस्पर्श मुद्राः**—इस मुद्रा का प्रदर्शन केवल बौद्ध मूर्तियों में हुआ है। इस मुद्रा का अभिप्राय यह प्रदर्शित करना है कि बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध नें मार पर जो विजय प्राप्त की, उसकी साक्षी पृथ्वी है। इस प्रकार की प्रतिमाओं में कभी-कभी बोधिवृक्ष का अंकन मिलता है। इसमें पद्मासन मुद्रा में बैठे बुद्ध का बायां हाथ जाँघ पर तथा दाहिना हाथ पादपीठ को स्पर्श करते दिखाया जाता है।[26] कौशाम्बी से प्राप्त आसनस्थ बुद्ध मूर्ति में भूमिस्पर्श मुद्रा प्रदर्शित है। सम्प्रति इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग में संग्रहीत है।[27]

(IV) **धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्राः**—इस मुद्रा का प्रदर्शन केवल बौद्ध मूर्तियों में

---

23 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0, 2026, पृष्ठ 271, बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 72, सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 15, रेखाचित्र 3.

24 फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम् इन्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 45-47

25 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 271, बाजपेयी, संतोषकुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 72, सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्प संहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 15, रेखाचित्र 3

26 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 270, बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 72, सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 16, रेखाचित्र 3.

27 जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, संख्या 1270.

हुआ है। बौद्ध धर्म के अनुसार बुद्धत्व प्राप्ति के पश्चात् बुद्ध सारनाथ गए और वहीं पाँच भिक्षुओं को अपना प्रथम उपदेश दिया। इस घटना को बौद्ध धर्म में 'धर्मचक्र प्रवर्तन' कहते हैं। इस मुद्रा में बुद्ध पद्मासन में बैठे हुए हैं। दोनों हाथ छाती के सामने रहते हैं। बायें हाथ की हथेली छाती की तरफ मुड़ी रहती है। दाहिनी हथेली सामनें रहती है। बायें हाथ की मध्यम तथा कनिष्ठ नामक अंगुलियाँ, दाहिनें हाथ के अंगूठे को स्पर्श करती दिखाई देती हैं।[28] सारनाथ से प्राप्त लगभग 2 फीट $4^{1}/_{2}$ इंच ऊँची बैठी हुई बुद्ध मूर्ति धर्मचक्रप्रवर्तन मुद्रा में प्राप्त हुई है। सम्प्रति सारनाथ संग्रहालय में संग्रहीत है।[29]

उपर्युक्त मुद्राओं के अतिरिक्त कतिपय बौद्ध प्रतिमाओं में व्याख्यान मुद्रा तथा ध्यान मुद्रा का भी प्रदर्शन हुआ है। ध्यान मुद्रा का प्रयोग जैन तथा ब्राह्मण प्रतिमाओं के अन्तर्गत भी हुआ है।

2. प्रतिमा का वाहन

कला के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्रदाय के देवी-देवताओं की प्रतिमायें अनेक लक्षणों के द्वारा पहचानी जाती हैं, उदाहरणार्थ-जैन कला के अन्तर्गत चौबीस तीर्थंकरों की प्रतिमायें देखनें मे एक सी प्रतीत होती है, परन्तु प्रतिमा विशेष के 'लांछन' (चिन्ह) द्वारा यह विदित होता है कि वह किस तीर्थंकर की प्रतिमा है।[30] इसी प्रकार ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की पहचान उनके वाहन द्वारा भी की जाती है। कलाकृतियों में ये वाहन अनेक पशुओं के रूप में प्रदर्शित हुए हैं।

---

28 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 271, रेखाचित्र 3

29 श्रीवास्तव, ए0एल0; भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ 114, चित्र 124.

30 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई, 1975, पृष्ठ 24.

त्रिदेवों में ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के वाहन क्रमशः हंस, गरुड़ एवं नन्दी हैं।[31] देवराज इन्द्र का वाहन ऐरावत हाथी है।[32] सूर्य के वाहन रूप में अश्व का अंकन प्राप्त होता है। सिंह का प्रदर्शन दुर्गा के वाहन के रूप में हुआ है। इसी प्रकार मूषक (चूहा) गणेश का वाहन, मयूर एवं कुक्कुट कार्तिकेय के वाहन हैं। अनेक कलाकृतियों में ये पशु देवी-देवताओं के वाहन के अतिरिक्त दैवी जीवन को व्यक्त करने वाले कथानकों में भी प्रदर्शित मिलते हैं।[33] इनमें निम्न उल्लेखनीय हैं:-

(I) गरुडः- कला के अन्तर्गत विष्णु के वाहन के रूप में गरुड़ का अंकन प्राप्त होता है।[34] गरुड़ के विषय में वेदों में प्रसंग प्राप्त है तथा इसके लिए 'गरुत्मान' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसे अत्यन्त सुन्दर पंखों वाला कहा गया है।[35] पंख सुनहरे होने के कारण वह सुपर्ण भी कहलाता है।[36]

गरुड़ की प्रतिमा के संदर्भ में विष्णुधर्मोत्तर पुराण में उल्लेख है कि गरुड़ का वर्ण हरित, कौशिक (उलूक) सदृश नासिका, गोलाकार नेत्र, मरकत मणि के सदृश आभा, गृध्र की जंघा के समान जाँघें और उसी प्रकार चरण, दो सुन्दर पंख एवं चार भुजाएं बनानी चाहिये। दो भुजायें क्रमशः छत्र और पूर्णकुम्भ से शोभित तथा शेष दो अंजलि-बद्ध कही गयी हैं।[37]

कला के अन्तर्गत गरुड़ का अंकन विविध रूपों में प्राप्त होता है। गरुड़वाही विष्णु प्रतिमा के अतिरिक्त गरुड़ के कंधों पर बैठे हुए विष्णु के पैर गरुड़ की हथेली पर स्थित होते हैं। कतिपय विष्णु मन्दिरों के सम्मुख स्तम्भ पर गरुड़ की मूर्ति

---

31 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 275-276
32 वही, पृष्ठ 276.
33 वही, पृष्ठ 337
34 वही, पृष्ठ 347.
35 दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ऋ0वे0 1/164/46.
36 महाभारत, आदि पर्व 33/24.
37 विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, अध्याय 54/2-4.

स्थापित प्राप्त हुई है।[38] गुप्तकालीन कला के अन्तर्गत गरुड़ध्वज के रूप में गरुड़ का अंकन प्राप्त होता है।[39] चन्द्रगुप्त द्वितीय के चांदी के सिक्कों पर गरुड़ पंख फैलाये हुए पक्षी की भांति आगे की ओर मुख करके खड़े हैं।

(II) नन्दिः—नन्दि, नन्दीश्वर आदि विश्लेषण शिव के वाहन वृषभ के लिये प्रयुक्त होते हैं।[40] गुप्त युग से मध्यकाल तक शिव-पार्वती की युगल मूर्ति तथा शिव की एकाकी मूर्ति में नन्दि का अंकन हुआ है।[41] कालिदास ने नन्दि का उल्लेख शिव गण के रूप में भी किया है।[42] विष्णुधर्मोत्तरपुराण पुराण में नन्दी को चार भुजा तथा तीन नेत्रवाला, सिन्दूर के समान लाल वर्णवाला, व्याघ्र चर्म पहने हुए बताया गया है। वह अपनें दो हाथों में त्रिशूल तथा भिन्दिपाल लिये हुए रहता है तथा शेष दो हाथों में से एक सिर पर रहता है और दूसरा तर्जनी मुद्रा में रहता हैः-

नन्दी कार्यस्त्रिनेत्रस्तु चतुर्बाहुर्महाभुजः।
सिन्दु[illegible]ो व्याघ्रचर्माम्बरच्छदः।।[43]

कला के अन्तर्गत सर्वप्रथम सिंधु सभ्यता की एक मुहर पर गलकम्बल युक्त डीलदार वृषभ का अंकन प्राप्त हुआ है।[44] मौर्यकला के अन्तर्गत अशोक स्तम्भों के शीर्ष पर उत्कीर्ण पशु आकृतियों में वृषभ का अंकन भी प्राप्त होता है। जैन कला के अन्तर्गत तीर्थंकर ऋषभनाथ का लांछन वृषभ अंकित हुआ है।[45]

---

38 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूति विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 107

39 बनर्जी, जे0एन0; डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृष्ठ 531, मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 152

40 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 290.

41 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ट 342-43.

42 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 158

43 विष्णुधर्मोत्तर पुराण 77/15-16.

44 पाण्डेय, जयनारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 17-18.

45 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 158.

(III) हस्ति (हाथी):—यद्यपि देवराज इन्द्र के वाहन हाथी के रूप में हस्ति का उल्लेख किया जाता है, तथापि भारतीय कला के अन्तर्गत हाथी का अंकन विविध प्रकार से प्राप्त होता है। हाथी वैभव का प्रतीक है। बौद्धों की हीनयान कला के अन्तर्गत बुद्ध जन्म का अंकन हाथी के रूप में किया गया है। भरहुत स्तूप की वेदिका के एक दृश्य में माया देवी का स्वप्न है, जिसमें एक सफेद हाथी स्वर्ग से उतर कर उनके गर्भ में प्रवेश करता दिखाया गया है।[46] बौद्ध जातक कथाओं में षड़दन्त जातक तथा बेसन्तर जातक कथाओं का सम्बन्ध हस्ति से है।[47] मौर्यकालीन अशोक स्तम्भों के शीर्ष पर उत्कीर्ण पशु आकृतियों में हस्ति का अंकन प्राप्त होता है।[48] शुंगकला के अन्तर्गत गज का अंकन देवी लक्ष्मी के साथ करके गजलक्ष्मी की प्रतिमायें तैयार की गई। इस प्रकार की पाषाण एवं मृण्मयी प्रतिमाओं के शीर्ष पर दो हाथी घड़े से जल डालते प्रदर्शित किये गए।[49] भरहुत, बोधगया तथा कौशाम्बी आदि की कला के अन्तर्गत गजलक्ष्मी की प्रतिमायें प्राप्त होती हैं।[50] जैन कला के अन्तर्गत तीर्थंकर अजितनाथ का लांछन गज अंकित हुआ है।[51]

(IV) सिंह:—ब्राह्मण प्रतिमाओं के अन्तर्गत देवी दुर्गा के वाहन के रूप में सिंह प्रदर्शित मिलता है। सिंह शक्ति का प्रतीक माना गया है। पशुओं में वह सबसे शक्तिशाली है। अतएव शक्ति स्वरूपा देवी की प्रतिमायें सिंहयुक्त बनाई गई।[52] कला के अन्तर्गत देवी महिषासुर-मर्दिनी, चामुण्डा अथवा चण्डिका आदि रूपों में भी

---

46 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 143 चित्र 197, गर्भावक्रान्ति। पाण्डेय, जय नारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ 58, चित्र 29

47 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 339-40.

48 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-109-110, चित्र-166

49 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 339-40.

50 अग्रवाल, वासुदेवशरण, भारतीय कला वाराणसी, 1987, पृष्ठ 147.

51 श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1990, पृष्ठ 170.

52 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 338.

प्रदर्शित मिलती हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण के अनुसार देवी स्वर्ण के समान वर्ण वाली, तीन नेत्र वाली युवती के रूप में हैं। वे सिंह की पीठ पर बैठती हैं।[53] महाबलिपुरम् तथा एलोरा आदि के कलात्मक उदाहरणों में देवी वाहन सिंह के साथ प्रदर्शित मिलती है।[54] खजुराहो के लक्ष्मण मन्दिर में उत्तर-पूर्व की ओर की भित्ति पर महिषमर्दिनी देवी की प्रतिमा वाहन सिंह के साथ प्राप्त हुई है। देवी का एक चरण सिंह की पीठ पर है।[55] देवी के वाहन के अतिरिक्त सिंह अन्य नाना रूपों में भी प्रदर्शित मिलता है। मौर्यकालीन अशोक स्तम्भों के शीर्ष पर उत्कीर्ण पशुओं में सिंह का अंकन भी प्राप्त हुआ है। सारनाथ सिंह शीर्षक स्तम्भ अशोककालीन कला-शिल्प और स्थापत्य का सर्वोत्तम उदाहरण माना जाता है।[56] बौद्ध कला के अन्तर्गत ईसा-पूर्व युग के कलात्मक उदाहरणों में प्रतीकों की प्रधानता थी। अतः सिंह को बुद्ध का प्रतीक माना गया तथा शाक्य कुल में उत्पन्न होने के फलस्वरूप बुद्ध शाक्यसिंह के नाम से विख्यात हुए।[57] इसी प्रकार मध्ययुगीन कला में सिंहासन पर बैठे बुद्ध प्रतिमा की चौकी पर दो सिंह की आकृतियां प्रदर्शित मिलती हैं।[58] जैनकला के अन्तर्गत महावीर की प्रतिमा में पादपीठ पर सिंह लांछन का अंकन किया गया है।[59]

(V) **अश्वः**-कला के अन्तर्गत अश्व का अंकन अनेक रूपों में हुआ है। ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित कलाकृतियों में सूर्य के वाहन रूप में अश्व को रथ के साथ प्रदर्शित किया गया।[60] बोधगया की वेदिका पर चतुरश्वयोजित रथ पर बैठे हुए

---

53 विष्णुधर्मोत्तरपुराण, 117/18-25, मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 177-178

54 मिश्र, इन्दुमती, प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 179.

55 वही, पृष्ठ 179.

56 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीयकला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 111-112, चित्र 170

57 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 338

58 वही, पृष्ठ 338

59 बाजपेयी, संतोष; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 159.

60 वही, पृष्ठ 157.

सूर्य का अंकन प्राप्त होता है।[61] गुप्तयुग में अश्वों की संख्या बढ़कर सात हो गई।[62] गढवा के पाषाण खण्ड पर उत्कीर्ण सूर्य प्रतिमा सात घोडों के रथ पर आरुढ है। सम्प्रति राज्य संग्रहालय लखनऊ में प्रदर्शित है।[63]

बौद्धों की हीनयान कला के अन्तर्गत अश्व को बुद्ध के महाभिनिष्क्रमण का घोतक माना गया है। मौर्यकालीन अशोक स्तम्भों में सारनाथ स्तम्भ के गोल अंड भाग अथवा चौकी पर चार महाआजानेय पशुओं में अश्व का अंकन भी प्राप्त होता है। उसे शक्ति और स्फूर्ति का प्रतीक माना गया है।[64] जैन तीर्थंकर सम्भवनाथ का लांछन अश्व है।[65]

(VI) मयूर एवं कुक्कुटः–ब्राह्मण प्रतिमाओं के अन्तर्गत कार्तिकेय के वाहन के रूप में मयूर का उत्कीर्गन हुआ है।[66] भारत कला भवन वाराणसी में कार्तिकेय की मोरवाही सुन्दर प्रतिमा सुरक्षित है।[67]

समराङ्गण सूत्रधार में कार्तिकेय के साथ कुक्कुट को प्रदर्शित करने का उल्लेख है[68].–

छागकुक्कुट संयुक्तः शिखियुक्तो मनोरमः[69]

गुप्तकालीन कला के अन्तर्गत कार्तिकेय प्रतिमाओं में कुक्कुट को प्रदर्शित किया गया है।

---

61 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 83, चित्र 85
62 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि०सं० 2026, पृष्ठ 340–41
63 राज्य संग्रहालय, संख्या बी 223ए, चित्रफलक क्रम संख्या 19(A)
64 बाजपेयी, सतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 157.
65 श्रीवास्तव, बृजभूषण; प्राचीन भारतीय प्रतिमा विज्ञान एवं मूर्तिकला, वाराणसी, 1990, पृष्ठ 170
66 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि०सं० 2026, पृष्ठ 348
67 वही, पृष्ठ 167.
68 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 162
69 समराङ्गण सूत्रधार 23.35

(VII) हंसः–ब्राह्मण प्रतिमाओं के अन्तर्गत ब्रह्मा के वाहन के रूप में हंस का उल्लेख हुआ है।[70] वैष्णव पुराणों में ब्रह्मा को **'सप्तहंसे रथे स्थितम्'** कहा गया है अर्थात् वह सात हंसों द्वारा जुते हुए रथ पर सवार होते हैं।[71] ब्रह्मा के अतिरिक्त हंस देवी सरस्वती के वाहन रूप में भी प्रदर्शित मिलता है। गुप्तकालीन कला के अन्तर्गत हंस का अंकन द्वार स्तंभों पर भी प्राप्त हुआ है। वह दाना चुगते हुए अथवा उड़ते हुए प्रदर्शित हैं।[72]

उपर्युक्त पशु–पक्षियों के अतिरिक्त मत्स्य, वराह, मकर, कूर्म, शुक, मृग, कपि इत्यादि के सुन्दर कलात्मक अंकन भी प्राप्त होते हैं, परन्तु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के सीमित आकार के फलस्वरूप इनका मात्र नामोल्लेख ही समीचीन है।

3. आयुध एवं प्रतीक

कला के अन्तर्गत ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवी–देवताओं की प्रतिमायें हाथों में नाना प्रकार के आयुध अथवा शस्त्र धारण किये हुए प्राप्त हुई हैं। देव प्रतिमाओं के आयुध उनकी शक्तियों के प्रतीक माने गए हैं।[73] देवताओं की शक्तियाँ मुख्य रूप से जितने प्रकार से कार्य करती हैं, उनकी कल्पना आयुधों के रूप में की जाती है।[74] आयुधों का सर्वाधिक प्रयोग गुप्तकला के अन्तर्गत हुआ है।[75] मत्स्यपुराण, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन आदि में देवताओं के आयुधों का उल्लेख हुआ है। त्रिदेव प्रतिमाओं के अन्तर्गत ब्रह्मा की चतुर्भुज मूर्ति कमण्डलु, श्रुवा, मृगछाल, पुस्तक लिये हुए बनाई गई। दक्षिण भारत की ब्रह्मा की मूर्ति में माला,

---

70 विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड/ अध्याय 44/5–8.
71 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 79.
72 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 161.
73 वही, पृष्ठ 149.
74 मिश्र, जनार्दन; भारतीय प्रतीक विद्या, पटना, 1959, पृष्ठ 216.
75 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 149.

पुस्तक, कमण्डलु तथा चौथा हाथ वरद मुद्रा में प्रदर्शित किया गया।[76] विष्णु प्रतिमायें दो, चार, छः तथा आठ भुजाओं वाली प्राप्त होती हैं, जो आयुधों की विलक्षणता के फलस्वरूप अनेक नामों से पुकारी जाती हैं। गुप्तकालीन चतुर्भुज विष्णु प्रतिमाओं में उनके आयुध प्रायः शंख, चक्र, गदा और पद्म मिलते हैं।[77] विष्णु की अष्टभुजी प्रतिमा के सम्बन्ध में मत्स्य पुराण[78] में वर्णन है कि उनके दायें हाथों में क्रमश· खड्ग, गदा, बाण और कमल तथा बायें हाथों में धनुष, ढाल, शंख और चक्र होना चाहिये। गुप्तकला में विष्णु के आयुधों का मानवीकरण कर उन्हें आयुध पुरुषों के रूप में प्रदर्शित किया गया। गुप्तकालीन विष्णु प्रतिमाओं में शंखपुरुष, चक्रपुरुष तथा गदा देवी का मूर्तन मिलता है।[79] शिव प्रतिमाओं के संदर्भ में अपराजितपृच्छा में 'एकादश रुद्र' की सूची दी गई है, जबकि रूपमण्डन में 'द्वादशशिव' का आयुध सहित विवरण प्राप्त होता है।[80] शिव की मानवीय प्रतिमाओं के हाथों में डमरू, खड्ग, खेटक, पाश, त्रिशूल, खप्पर, रुद्राक्षमाला, खट्वाङ्ग, ढाल आदि आयुध प्रदर्शित मिलते हैं।[81]

अन्य देवी-देवताओं में द्विभुजी सूर्य प्रतिमा के बायें हाथ में चौड़े फन की तलवार तथा दाहिनें हाथ में कमल का गुच्छा दिखाई पड़ता है।[82] सूर्य के अनुचर पिङ्गल के हाथों में पत्र तथा लेखनी रहती है, और दण्ड के हाथों में चर्म, शूल तथा दण्ड रहता है।[83]

गणेश मूर्ति के संदर्भ में मत्स्यपुराण[84] में उल्लेख है कि चतुर्भुजी गणेश

---

76 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 79
77 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 120.
78 वही, पृष्ठ 120
79 वही, पृष्ठ 120
80 रूपमण्डन, (सं0) बलराम श्रीवास्तव; वाराणसी, सं0 2021, पृष्ठ 60-63.
81 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 267
82 सिंह, भगवान, गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमायें, दिल्ली, 1982, पृष्ठ 98.
83 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 297.
84 मत्स्य पुराण, 260, 52-55.

अपने बायें हाथों में मोदक और परशु तथा दाहिनें हाथों में स्वदन्त और कमल धारण किये हुए होते हैं। विष्णुधर्मोत्तरपुराण में चर्तुभुजी गणेश प्रतिमा दाहिने हाथों में त्रिशूल तथा अक्षमाला एवं बायें हाथों में परशु और मोदक से भरा पात्र लिये हुए वर्णित है।[85] कानपुर जिले में स्थित गुप्तकालीन भीतरगाँव के मन्दिर से प्राप्त मृण्फलक में चतुर्भुजी गणेश को बाएं हाथ में स्थित मोदक-पात्र को अपनी सूँड़ से पकड़ते हुए दिखाया गया है।[86] सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित है।

चतुर्भुजी कार्तिकेय प्रतिमाओं के विषय में विष्णुधर्मोत्तरपुराण में उल्लेख है कि उनके दाहिने हाथों में कुक्कुट और घण्टा तथा बायें हाथों में विजयध्वज (पताका) और शक्ति होती है।[87] अष्टभुजी देवी दुर्गा के हाथों में शंख, चक्र, शूल, धनुष, बाण, खड्ग, खेटक तथा पाश नामक आयुध शोभित होता है।[88] विष्णुधर्मोत्तर पुराण में चामुण्डा देवी को आयुध युक्त बीस भुजाओं वाली कहा गया है।[89] इसी प्रकार इन्द्र के हाथों में वज्र, बलराम के हाथों में मूसल तथा हल एवं कुबेर के हाथों में धन की थैली तथा मधुपात्र रहता है। उपर्युक्त आयुधों में कतिपय आयुधों का प्रतीकात्मक महत्व है, उदाहरणार्थ-पद्म, शंख, चक्र, गदा, त्रिशूल, धनुष बाण, खड्ग, शक्ति, पाश, खड्वांग, पुस्तक, मोदक इत्यादि उल्लेखनीय है।

गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से प्राप्त देवी-देवताओं की प्रतिमाओं में प्रमुखतः निम्नलिखित आयुधों का अंकन हुआ है:-

(I) पद्म :-भारतीय कला के अन्तर्गत पद्म अर्थात् कमल महत्वपूर्ण प्रतीक के रूप में जाना जाता है। इसका अंकन ब्राह्मण, बौद्ध तथा जैन तीनों कलाओं के अन्तर्गत हुआ है। साहित्य में प्राप्त होने वाले संदर्भो में कमल के पुष्कर, पुण्डरीक,

---

85. विष्णुधर्मोत्तरपुराण, तृतीय खण्ड, 71, 13-16.
86 आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, 1908-09, पृष्ठ 10-11, चित्रफलक क्रम संख्या 19(B).
87 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 71, 3-6.
88 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 177.
89 विष्णुधर्मोत्तर पुराण, तृतीय खण्ड, 117,/18-25.

पद्‌मक, सहस्रपत्र, उत्पल, शतपत्र, कल्हार आदि नामों की गणना की जाती है।[90] कमल जल से उत्पन्न हुआ है, अतएव वह विश्व की उत्पत्ति का स्वयं द्योतक है।[91] विष्णु की नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा का विकास हुआ जो सृष्टिकर्ता हैं[92].-

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे।[93]

आयुध के रूप में कमल विष्णु प्रतिमाओं में प्रदर्शित मिलता है। इसका अंकन सूर्य, लक्ष्मी और पद्‌मपाणि अवलोकितेश्वर की प्रतिमाओं में भी हुआ है।[94] इन्हें हाथों में सनाल कमल लिये हुए दिखाया गया है। गुप्तकाल में द्वार स्तंभों को अलंकृत करने के लिये पद्‌म का अनेक रूपों में चित्रण हुआ। पद्‌म के अर्धविकसित, पूर्णविकसित, ऊर्ध्वविकसित, अधोमुखी, ऊर्ध्वमुखी आदि रूप आलेखित हुए। पद्‌म को पत्रलताओं के साथ घट से आच्छादित दिखाया गया।[95] पूर्व मध्ययुगीन बौद्ध कला में कमल रूप पीठिका का अंकन तत्कालीन कला की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है।[96]

(II) शंखः–आयुध शंख विष्णु, दुर्गा आदि की प्रतिमाओं में प्रदर्शित मिलता है। विष्णु के शंख को पाञ्चजन्य शंख की संज्ञा दी गई है।[97] रूपमण्डन के अनुसार विष्णु कौमोदकी नामक गदा, पद्‌म, पाञ्चजन्य नामक शंख और सुदर्शनचक्र धारण

---

90 जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ–62, अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 63

91 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 276

92 अग्रवाल, वासुदेवशरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 63.

93 गोपथ ब्राह्मण 1/1/16.

94 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 151

95 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 151.

96 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति–विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 276, गुप्त, जगदीश; भारतीय कला के पदचिन्ह, दिल्ली 1961, पृष्ठ 84.

97 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 150.

करते हैं।[98] इनमें चक्र युद्ध का शस्त्र है। गदा से दुष्टों का दमन तथा शंख से अहंकार का विनाश होता है। पद्म विश्व की उत्पत्ति का द्योतक है।[99] गुप्तकला में शंख का आयुध पुरुष रूप लोकप्रिय हुआ। विष्णु प्रतिमाओं के अन्तर्गत शंख पुरुष का अंकन प्राप्त होता है।[100]

(III) चक्रः–आयुध के रूप में चक्र विष्णु, दुर्गा आदि की प्रतिमाओं में प्रदर्शित हुआ है। यह सूर्य अथवा काल का प्रतीक है। अतः इसे कालचक्र कहा जाता है।[101] ऋग्वेद[102] में इसे विष्णु का वृत्तचक्र कहा गया है। पश्चातकाल में भागवतो ने विष्णु के इस वृत्तचक्र को सुदर्शन नाम दिया।

सुदर्शन का शब्दार्थ हैः–सुन्दर अथवा सुलभ प्रत्यक्ष दर्शनयुक्त। काल सुदर्शन है क्योंकि काल का प्रत्यक्ष दर्शन सभी को सदा सर्वत्र हो रहा है।[103] बौद्ध धर्म में इसे धर्मचक्र कहा गया। मौर्यकालीन सारनाथ का अशोकीय स्तम्भ मूल में चक्र स्तम्भ था। इसके शीर्ष भाग पर एक महाचक्र लगा हुआ था।[104] गुप्तकला के अन्तर्गत चक्र का मानवीकरण करके आयुध पुरुष के रूप में मूर्तन किया गया।[105] इलाहाबाद के निकट ऊँचडीह से प्राप्त विष्णु प्रतिमा में चक्रपुरूष की आकृति खंडित अवस्था में प्राप्त हुई है।[106]

(IV) गदाः–ब्राह्मण प्रतिमाओं के अन्तर्गत आयुध के रूप में गदा का प्रदर्शन

---

98 (स0) श्रीवास्तव, बलराम, रूपमण्डन, वाराणसी, सं0 2021, तृतीय अध्याय, पृष्ठ 136

99 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 108

100 बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 150

101 उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 277, जोशी, महेश चन्द्र; युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर,1995, पृष्ठ 63, अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 61-62

102 ऋग्वेद 1/155/6.

103 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 62, जोशी, महेश चन्द्र, युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर 1995, पृष्ठ 63.

104 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 62, पृष्ठ 111-112, चित्र 170.

105 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 150.

106 सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमायें, दिल्ली 1982, पृष्ठ 92.

विष्णु, दुर्गा तथा हनुमान आदि की प्रतिमाओं में हुआ है।[107] गदा शक्ति की परिचायक है।[108] वैष्णव मूर्तियों में गदा को दण्डनीति का प्रतीक और वासुदेव मूर्तियों के साथ तेज का प्रतीक माना गया है।[109]

विष्णु की प्रारम्भिक प्रतिमाओं में गदा का अंकन स्वाभाविक स्वरूप में प्राप्त होता है, परन्तु गुप्तकला के अन्तर्गत इसका मानवीकरण किया गया। गुप्तकालीन विष्णु प्रतिमाओं में स्त्री के रूप में गदा देवी का मूर्तन प्राप्त होता है। ऊँचडीह से प्राप्त विष्णु प्रतिमा में गदादेवी का अंकन हुआ है।[110] सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय में संग्रहीत है। यहां यह उल्लेखनीय है कि आयुधों का प्रतिमाकरण करते समय उनके आंख, नाक, हाथ, पैर तथा सभी अंग-प्रत्यंग बनाए गए हैं। उनके सिर पर मुकुट है जिसमें आयुधों का लांछन चिन्हित किया गया है। उन्हें सभी आभूषणों से सुसज्जित किया गया है।[111]

(V) त्रिशूलः-त्रिशूल भगवान शिव का आयुध है। यह सृष्टि के त्रिपथ का प्रतीक है एवं सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त है।[112]

गुप्तकला में त्रिशूल और परशु का साथ-साथ अंकन किया गया। त्रिशूल के सर्पयुक्त अथवा पुष्प मुद्रित स्वरूप भी मिलते हैं।[113] गुप्तकला में त्रिशूल पुरुष का मानवीय रूप विष्णु के आयुध पुरुषों के समान ही प्रदर्शित हुआ है।[114] त्रिशूल पुरुष की कतिपय प्रतिमायें लखनऊ संग्रहालय (एच 104) और इलाहाबाद संग्रहालय (क्रं0 292) में संग्रहीत है।

---

107 बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 151

108 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 277

109 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 151

110 सिंह, भगवान; गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमायें, दिल्ली 1982, पृष्ठ 92.

111 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 137.

112 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 151-152.

113 वही, पृष्ठ 151-152.

114 वही, पृष्ठ 136.

(VI) खड्ग:–विष्णु, शिव, दुर्गा आदि की प्रतिमाओं में खड्ग आयुध का अंकन हुआ है। कला में इसे वैराग्य को सूचित करने वाला आयुध प्रतीक भी माना गया है।[115]

(VII) शक्तिः–कला के अन्तर्गत शक्ति का अंकन कार्तिकेय के आयुध के रूप में हुआ है। बृहत्संहिता में कार्तिकेय के हाथ में शक्ति प्रदर्शित करने का विधान है।[116] यह धातु का बना भाला होता है।[117]

(VIII) पाश:–पाश का अंकन वरुण, गणेश एवं दुर्गा की प्रतिमाओं में हुआ है। इसे सांसारिक बंधन का प्रतीक माना गया है।[118]

(IX) खट्वांग:–खट्वांग आयुध शिव, चामुण्डा और भैरवी आदि की प्रतिमाओं में प्रदर्शित हुआ है। इसे यौगिक शक्ति का प्रतीक माना जाता है।[119]

(X) मोदक:–मोदक गणेश प्रतिमाओं के हाथों में प्रदर्शित मिलता है। कतिपय प्रतिमाओं में उन्हें मोदक पात्र लिये हुए भी दिखाया गया है। मोदक विवेक का प्रतीक है।[120]

इसी प्रकार प्रतिमाओं में प्रदर्शित आयुधों में धनुष-बाण क्रमशः सांख्य और योग के प्रतीक मानें गये हैं। वज्र तेज, शक्ति और पौरुष का प्रतीक है। पुस्तक ज्ञान का प्रतीक है।[121]

भारतीय कला के अन्तर्गत विभिन्न कलात्मक उदाहरणों में स्वस्तिक, कल्पवृक्ष, पूर्णकलश, मिथुन (नरनारीमय अलंकरण), श्रीवत्स, नन्दिपद, दर्पण इत्यादि

---

115 बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992 पृष्ठ 153.

116 स्कन्दः कुमाररूप शक्ति वर्हिकेतुश्च। बृहत्संहिता, 57, 41.

117 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 154.

118 वही, पृष्ठ 155.

119 वही, पृष्ठ 156.

120 वही, पृष्ठ 157.

121 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 153,154, 157.

मांगलिक प्रतीकों का अंकन प्राप्त होता है। बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्मों की कला में इन्हें स्वीकार किया गया।[122] जिसके फलस्वरूप विभिन्न कलात्मक उदाहरणों में इनका प्रचुर रूप से समावेश दिखाई पड़ता है। **इनमें निम्नलिखित मांगलिक प्रतीकों का उल्लेख किया जा सकता है:–**

(I) स्वस्तिकः–स्वस्तिक जीवन के स्वस्ति भाव (कल्याणरूप) का प्रतीक है।[123] बौद्ध साहित्य में इस प्रतीक को 'सोत्थिय' कहा गया है। जैन धर्म की उपासना पद्धति में अष्ट मांगलिक प्रतीकों के अन्तर्गत स्वस्तिक को विशेष महत्व मिला।[124] स्वस्तिक की चार भुजाओं अथवा रेखाओं के रूप में अनेक प्रतीक प्राचीन युग में विभिन्न क्षेत्रों में कल्पित किये गए, जैसे–चार वेद, चार लोक, चार देव, चार दिशायें, चार वर्ण, चार आश्रम, चार होता इत्यादि।[125]

कला में स्वस्तिक का प्रयोग धार्मिक, मांगलिक एवं सौन्दर्यात्मक प्रतीक के रूप में हुआ। गुप्तकालीन कला में स्वस्तिक के धार्मिक पक्ष की अपेक्षा सौन्दर्य तत्व को अधिक प्राबल्य मिला।[126]

(II) कल्पवृक्षः–कल्प का अर्थ चिन्तन, विचार या मन है। यह इच्छाओं की पूर्ति करने वाला वृक्ष और मन का प्रतीक है।[127] कल्पवृक्ष समुद्रमंथन से उत्पन्न होने वाले चौदह रत्नों में से एक है।[128] कल्पवृक्ष के कल्पद्रुम, कल्पतरू, कल्पलता, कल्पवल्लरी आदि अनेक नाम मिलते हैं।[129] जैन साहित्य में दस प्रकार के कल्पवृक्षों

---

122 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 336-337
123 वही, पृष्ठ 336
124 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 165
125 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 58-59
126 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 165.
127 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 63.
128 जोशी, महेश चन्द्र; युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 62.
129 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 167.

का उल्लेख है-(1) मधांगवृक्ष, (2) तूर्यागवृक्ष, (3) भूषणांगवृक्ष (4) ज्योतिवृक्ष (5) गृहवृक्ष (6) भाजनांगवृक्ष (7) दीपांगवृक्ष (8) वस्त्रांगवृक्ष (9) भोजनांगवृक्ष (10) मालांगवृक्ष। ये दस प्रकार के सर्वोत्तम सुखो के भी प्रतीक हैं।[130]

भरहुत, भाजा, सांची आदि स्थानों की कला में कल्पवृक्ष और कल्पलताओं का अंकन हुआ है।[131] गुप्तकला में मन्दिर के द्वार-स्तंभ, द्वार-शाखाओं तथा चौखट पर कल्पवृक्ष प्रदर्शित हुए हैं।[132]

(III) पूर्णकलशः-फूलपत्तियों से समृद्ध पूर्णकलश अथवा पूर्णघट सुख-सम्पत्ति और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। ऋग्वेद में सोम से भरे हुए कलश का उल्लेख है। सोम जीवन का अमर और मीठा रस है।[133] बौद्ध तथा जैन साहित्य में अलंकृत घट के विभिन्न उल्लेख उपलब्ध हैं।[134] भरहुत, साँची, अमरावती, मथुरा, कौशाम्बी, कपिशा, नागार्जुनकोण्डा, सारनाथ, अनुराधपुर आदि स्थानों की कला में पूर्णकलश का चित्रण पाया जाता है।[135]

(IV) श्रीवत्सः-श्रीवत्स को ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीनों धर्मो की कला में प्रदर्शित किया गया है।[136] श्रीवत्स का शाब्दिक अर्थ 'श्री का पुत्र' है। मातृदेवी के रूप में श्री के गोद में प्रायः एक बच्चा दिखाया जाता है।[137] जैन कला के अन्तर्गत तीर्थकर मूर्तियों के वक्षस्थल पर इसका अंकन हुआ। इसे अन्तःकरण में उत्पन्न सर्वोच्च ज्ञान का सूचक माना गया।[138] कालान्तर में विष्णु प्रतिमाओं के साथ भी

---

130 अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 158
131 वही, पृष्ठ 63
132 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 167.
133 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 61
134 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 166
135. अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 61.
136 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 166.
137. अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 339.
138. बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 167.

श्रीवत्स का चिन्ह जुड़ गया।[139] रघुवंश[140] में विष्णु को श्रीवत्स लक्षण से युक्त वक्ष पर कौस्तुभ धारण किये हुए दिखाने का विधान है।[141]

(V) **मिथुनः**–भारतीय कला में विशेष रूप से हिन्दू मन्दिरों के बाह्य भाग स्तम्भों पर, भित्ति स्तम्भों पर, प्रवेशद्वार की शाखा पर अथवा दीवार पर 'मिथुन' पाये जाते हैं। मिथुन की अवस्था दो प्राणियों के मिलन की अवस्था है, जिसमें स्त्री और पुरुष को प्रगाढ आलिंगन की अवस्था में दिखाया जाता है। मिथुन दम्पत्तियों की प्रतिमायें प्राय. नर–नारी के पारस्परिक, नैसर्गिक प्रेम एवं प्रणय का भी दिग्दर्शन करती हैं। गुप्तकाल से भारतीय कला में मिथुन अभिप्राय लोकप्रिय अलंकरण हो गया।[142] कौशाम्बी, भीटा आदि स्थानों से मृण्मय मिथुन फलक प्रभूत संख्या में प्राप्त हुए हैं।

4. प्रतिमाओं के वस्त्राभूषण एवं अलंकार

गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों की मूर्तिकला का विकसित रूप मुख्यतः पाषाण तथा मिट्टी से निर्मित प्रतिमाओं में दृष्टव्य होता है। प्राप्त कलाकृतियों में बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म की दैवीय प्रतिमाओं के अतिरिक्त लोक जीवन से सम्बन्धित दृश्यों का अंकन भी हुआ है। कौशाम्बी, भीटा, झूँसी आदि कलाकेन्द्रों से प्राप्त मृण्मयी प्रतिमाओं द्वारा तत्कालीन शिरोभूषण, कुण्डल, कण्ठहार, बालों को गूँथने की रीति, कपड़े पहननें की रीति आदि के विषय में ज्ञान होता है।

वस्त्र–विन्यास के संदर्भ में बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म की प्रतिमाओं के वस्त्रों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। बौद्ध प्रतिमाओं में बोधिसत्व राजकीय वेष में तथा बुद्ध चीवर सहित प्रदर्शित हुए हैं। संस्कृत साहित्य में चीवर बौद्ध भिक्षुओं के

139 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ 339.
140 रघुवंश, 10.8 एवं 17.29। श्रीवत्स लक्षणं वक्षः कौस्तुभेनेवं केशवम्।
141 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 166.
142 जोशी, महेश चन्द्र; युगयुगीन भारतीय कला, जोधपुर, 1995, पृष्ठ 195.

ऊपरी वस्त्र के लिये प्रयुक्त हुआ है।[143] बौद्ध साहित्य में बुद्ध के परिधानों के विषय में अन्तरवासक (अधोवस्त्र), उत्तरासंग (उत्तरीय) और संघाटी वस्त्रों का उल्लेख है।[144] कुषाणकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में सादी किनारी की संघाटी प्रदर्शित मिलती है। गुप्तकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में संघाटी की परतों को उभारकर प्रदर्शित किया गया तथा संघाटी की किनारी झालरदार अलंकृत बनाई गई हैं।[145] जैन प्रतिमायें कुषाणकाल में नग्न बनाई गयी। तीर्थंकर प्रतिमाओं में अधोवस्त्र का समावेश कुषाणयुग के पश्चात् किया गया।[146] दिगम्बर सम्प्रदाय के अन्तर्गत तीर्थंकर प्रतिमायें पूर्वमध्यकाल तक नग्न बनायी गईं।

ब्राह्मण प्रतिमाओं में विष्णु, इन्द्र, कुबेर तथा शक्ति मूर्तियों में सुन्दर तथा भड़कीले वस्त्राभूषण दृष्टिगोचर होते हैं। शिव, ब्रह्मा तथा अग्नि की प्रतिमायें योगी वस्त्रों से सुसज्जित है, तथा सूर्य एवं कार्तिकेय की मूर्तियां सेनानी वस्त्रों में प्राप्त होती हैं।[147] ब्रह्मा की प्रतिमाओं में प्रयुक्त वस्त्र के विषय में रूपमण्डन में उल्लेख है कि ब्रह्मा प्रतिमाओं के अधोवस्त्र श्वेत रंग के हो तथा कटि से ऊपर का भाग उपवीत रूप में मृगचर्म से आच्छादित किया जाये।[148] विष्णु प्रतिमाओं में अधोवस्त्र के रूप में पीताम्बर प्रदर्शित हुआ है। श्रीमद्भागवत पुराण में विष्णु के पीताम्बर के लिये पीतवासा, पिशङ्गवासा, पीताङ्शुक तथा पीतकौशेयवास विशेषण का प्रयोग हुआ है।[149] शिव व्याघ्र चर्म धारण किये हुए प्रदर्शित हैं।[150]

---

143 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0सं0 2026, पृष्ठ 273

144 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा; प्रयाग सं0 2007, पृष्ठ 35, बाजपेयी, सतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 65

145 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 65 तथा 145, अग्रवाल, पृथ्वीकुमार; गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, वाराणसी 1994, पृष्ठ 28

146 उपाध्याय, वासुदेव; प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी, वि0स0 2026, पृष्ठ 215

147 वही, पृष्ठ 273.

148 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 115.

149 मिश्र, इन्दुमती; प्रतिमा विज्ञान, भोपाल, 1972, पृष्ठ 137.

150 वही, पृष्ठ 367.

साधारण स्त्री-पुरुष मूर्तियों में पुरुषों के तीन वस्त्र मिलते हैं:-धोती (अधोवस्त्र), दुप्पट्टा या चादर (उत्तरीय) और पगड़ी (उष्णीष)।[151] उत्तरीय और धोती का उपयोग कुषाण और गुप्तकालीन पुरुष मूर्तियों पर सर्वत्र देखा जा सकता है। वस्तुतः यही शुद्ध भारतीय परिधान होने से इनका प्रयोग प्राचीनतर और पश्चात्तर मूर्तियों पर हुआ है।[152] स्त्री के तीन वस्त्रों में एक चोली अथवा 'कूर्पासक', दूसरा नीचे का घाघरा और तीसरा उत्तरीय प्रदर्शित है। कूर्पासक के लिये दूसरे शब्द 'स्तनांशुक' का भी प्रयोग हुआ है। घाघरे के ऊपरी भाग को 'नीवी' से बाँध या पिरो कसकर उसे पहनते थे।[153] अमरकोश[154] में 'नीवी' का उल्लेख स्त्री के कटिवस्त्र के बंध के रूप में किया गया है।[155]

अलंकरण की दृष्टि से प्रतिमायें अनेक प्रकार के आभूषणों से सज्जित मिलती हैं। इन आभूषणों को स्थान एवं अंग-प्रत्यंग के अनुसार निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(I) शिर पर धारण करने वाले आभूषण।

(II) गले तथा वक्षस्थल के आभूषण।

(III) कर्णाभूषण।

(IV) कटि में पहनर्नें वाले आभूषण।

(V) हाथों में पहनर्नें वाले आभूषण।

(VI) पैरों में पहनर्नें वाले आभूषण इत्यादि।

आभूषणों तथा इनके प्रकारों के विषय में अनेक साहित्यिक ग्रंथों में वर्णन

---

151 मोतीचन्द्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, प्रयाग, सं0 2007, पृष्ठ 37.
152 उपाध्याय, भगवत शरण; गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ, 1969, पृष्ठ 228
153 वही, पृष्ठ 228.
154 अमरकोश, 3.3.212, 'नीवी बन्धोच्छ्वसित'।
155 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 63.

हुआ है। अपराजित पृच्छा के अध्याय 236 में तथा द्राविड़शिल्प रत्नम् के अध्याय 16 में आभूषणों का उल्लेख है। आगम ग्रंथों में भी आभूषणों के विषय में वर्णन हुआ है।[156]

कलात्मक उदाहरणों के अन्तर्गत जैन तीर्थकरों की प्रतिमायें आभूषण रहित प्राप्त हुई हैं, परन्तु उनके यक्ष, यक्षिणी, प्रतिहार आदि की मूर्तियों को आभूषणयुक्त बनाया गया है।[157] चूड़ामणि, रत्नजाल अथवा मुक्ताजाल तथा किरीट-मुकुट बोधिसत्व और विष्णु के मस्तकाभरण हैं।[158] गले में ग्रैवेयक अथवा कण्ठाभरण के अतिरिक्त मुक्तावली का भी उल्लेख मिलता है। मुक्तावली मोतियों की एक अथवा अनेक लड़ियों की माला होती थी। विष्णु की माला वैजयन्ती माला कही गयी है, जिसमें रत्नों के अनेक दल होते थे और प्रत्येक दल में पाँच विशिष्ट रत्न विशेष क्रम और प्रकार से पिरोये हुए रहते थे। विष्णु पुराण इन पाँच रत्नों को मुक्ता, लाल, पन्ना, नीलम और हीरा की संज्ञा देता है।[159]

कर्णाभूषणों में कर्णफूल, कुण्डल अथवा मणिकुण्डल इत्यादि का उल्लेख हुआ है।[160] हाथों में पहने जाने वाले आभूषणों में वलय, कटक, केयूर और अंगद का उल्लेख मिलता है।[161] नुपूर, पाजेब इत्यादि पैरों में धारण करने वाले कड़े कहे गए हैं।[162]

उपर्युक्त सौन्दर्यात्मक तत्वों के साथ देव प्रतिमाओं के अन्तर्गत प्रभावली को अलंकरण का एक अनिवार्य अंग बनाया गया। इसे 'प्रभामण्डल' अथवा 'छायामण्डल'

---

156 सोमपुरा, प्रभाशंकर ओ0; भारतीय शिल्पसंहिता, बम्बई 1975, पृष्ठ 28
157 वही, पृष्ठ 28
158 उपाध्याय, भगवतशरण; गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ 1969, पृष्ठ 231
159 उपाध्याय, भगवतशरण; गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ 1969, पृष्ठ 231.
160 वही, पृष्ठ 231.
161 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 69.
162 उपाध्याय, भगवतशरण; गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ 1969, पृष्ठ 231.

कहा गया है।[163] कुषाण और गुप्तकाल की कला में प्रभामण्डल का अंकन अनेकश हुआ है। यह प्रभामण्डल मथुरा की बुद्ध और बोधिसत्व मूर्तियों की पृष्ठभूमि में ही देखे जा सकते हैं।[164] कुषाणकालीन बुद्ध प्रतिमाओं में प्रभामण्डल सादे किनारे वाले प्रदर्शित है, जबकि गुप्तकाल में प्रभामण्डल कमल के चित्रण से सज्जित मिलते हैं। उनके बाहरी घेरे मे मणिमाला, पत्रावली आदि का भी मनोरम अंकन किया गया है।[165] गुप्तकालीन विष्णु प्रतिमायें भी प्रभामण्डल से सज्जित मिलती हैं।[166] जैन तीर्थकरों की प्रतिमाओं में गुप्तकाल से ही प्रभामण्डल में गगनचारी गंधर्व तथा विद्याधर अंकित किये गए है।[167]

---

163 बाजपेयी, संतोष कुमार, गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली 1992, पृष्ठ 70.

164 उपाध्याय, भगवतशरण; गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास, लखनऊ 1969, पृष्ठ 180-181.

165 बाजपेयी, संतोषकुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 70 एवं पृष्ठ 145, अग्रवाल, पृथ्वी कुमार, गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, वाराणसी, 1994, पृष्ठ 27

166 बाजपेयी, संतोषकुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ 119.

167 वही, पृष्ठ 147.

रेखाचित्र–2 आसन
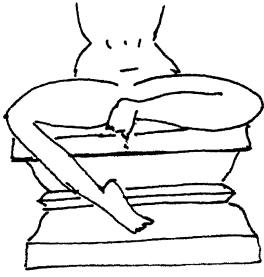
अर्धपर्यंकासन
अथवा ललितासन
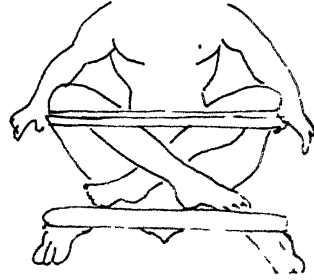
उत्कटासन

पद्मासन
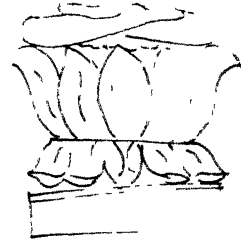
वज्रपर्यंकासन
अथवा वज्रासन

ेखाचित्र-3

अभय

वरद

भूमिस्पर्श
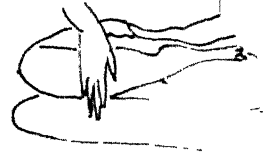
धर्म चक्र प्रवर्तन

सप्तम अध्याय

उपसं ार

सप्तम अध्याय

उपसंहार

प्रत्येक मनुष्य में कला चेतना अन्तर्निहित होती है और यही चेतना व्यक्ति को सौन्दर्य के प्रति जाग्रत करके कला की अनुभूति को अभिव्यक्त करनें का मार्ग अथवा माध्यम है।[1] मनुष्य की प्रत्येक कलात्मक रचनाओं और अभिव्यंजनाओं में हमें इसी अनुभूति के दर्शन होते हैं। इस संदर्भ में निम्न श्लोक उल्लेखनीय हैः-

''न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
देवो हि विद्यते भावे तस्माद् भावो हि कारणम्।।''

अर्थात् भगवान पाषाण में अथवा मिट्टी के रूप के मध्य में नहीं है, वह तो भाव के मध्य में (अनन्त भाव में) विराजता है, अतः भाव ही उसका कारक है।[2] हर्बर्ट रीड के अनुसारः-Art is a Mode of Expression, अर्थात् कला विचार-अभिव्यक्ति का माध्यम है।[3] डकेस का विचार है कि जो हमारे भावों को अभिव्यक्त करती है, वह कला है।[4] किन्तु कलाकृतियों में भावों का प्रदर्शन ही नहीं अपितु विषय और शैली का भी पर्याप्त महत्व होता है। प्रसिद्ध कलाविद् ठाकुर जयदेव सिंह के अनुसार-केवल आकृति नहीं, अपितु संवेदनशीलता से आप्लावित आकृति ही कलाकृति का रूप धारण करती है। वस्तुतः कला में संस्कृति, ज्ञान, भाव और कर्म का सामंजस्य है।[5]

---

1 हालदार, असित कुमार; ललितकला की धारा, इलाहाबाद, 1960, पृष्ठ-11.
2 हालदार, असित कुमार; रूपदर्शिका, इलाहाबाद, 1965, पृष्ठ 205-206.
3 हर्बर्ट रीड, आर्ट एण्ड सोसाइटी, लन्दन, 1967, पृष्ठ 7, श्रीवास्तव, ए0एल0; भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-1.
4 श्रीवास्तव, ए0एल0; भारतीय कला, इलाहाबाद, 1997, पृष्ठ-1.
5 जयदेव सिंह; भारतीय संस्कृति में ललितकला का महत्व, इलाहाबाद, 1985, पृष्ठ-2.

किसी भी देश की धार्मिक मान्यतायें उसके पौराणिक देवी–देवता, आचार–विचार एवं उसकी नीति–परम्पराएँ वहाँ की कला में अभिव्यक्ति पाती हैं। इस प्रकार कला प्रत्येक देश में ही धर्म, दर्शन और जीवन की प्राकृतिक परिवेष्टनी की परिधि में रहती हुई उसी देश की विशेषता को लेकर रूपायित और पुष्ट होती हैं।[6]

भारतीय कला ध्यान, धारणा और परिकल्पना के द्वारा विकसित एवं परिवर्तित होती रही है। इसका तिथिक्रम सिंधु सभ्यता से ज्ञात कलावशेषों के द्वारा निर्धारित किया जा सकता है, तथापि प्रागैतिहासिक काल के चित्रित शैलाश्रयों यथा–उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर तथा बांदा जिलों एवं मध्य प्रदेश की पर्वतीय गुफाओं में बने हुए चित्र भारतीय कला के प्राचीनतम उदाहरण मानें जाते हैं। राजस्थान के भरतपुर तथा आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के कुछ क्षेत्रों से भी चित्रित शैलाश्रय ज्ञात हुए हैं।[7]

सैंधव सभ्यता के मोहनजोदड़ो, हड़प्पा तथा चान्हुदड़ो आदि नगरों के पकी हुई मिट्टी के भवनों एवं ईटों से निर्मित आँगन इत्यादि के अवशेष तत्कालीन वास्तुकला एवं उत्कृष्ट आवास–व्यवस्था के परिचायक मानें जाते हैं। सैंधव सभ्यता के अवसान (लगभग 1500 ई0पू0) से लेकर मौर्यकाल के पूर्व (लगभग 324 ई0पू0) तक की कला के विषय में पुरातात्विक साक्ष्य बहुत कम उपलब्ध हैं। वैदिक वाङ्मय की साहित्यिक सूचनाओं से विदित होता है कि शिल्प एवं कला के नमूने लकड़ी आदि पर सम्भवतः बनाये जाते थे। शीघ्र नष्ट होनें वाली वस्तुओं से निर्मित होनें के कारण इनके वास्तविक उदाहरण नहीं मिलते हैं।

ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी से लेकर बारहवीं शताब्दी ईसवी तक की भारतीय कला के अनेक उदाहरण मिलते हैं। प्राप्त नमूनों में वास्तुकला एवं मूर्तिकला की प्रधानता है। इनके साथ ही सिक्कों, मुहरों और चित्रकला के उदाहरण भी प्राप्त होते

---

6 हालदार, असित कुमार; रूपदर्शिका, इलाहाबाद, 1965, पृष्ठ 246.

7 बाजपेयी, संतोष कुमार; गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ–49.

हैं। धर्मेत्तर या लौकिक कला के नमूने बहुत कम संख्या में अवशिष्ट हैं। स्तूप, विहार, चैत्य, मन्दिर आदि वास्तुकला सम्बन्धी तथा प्रस्तर एवं मृण्मूर्तिकला के जो उदाहरण मिलते हैं, उनकी रूपरेखा और शैली में क्रमिक विकास दिखाई पड़ता है। मौर्यकालीन कलाकृतियों के अवलोकन से यह तथ्य सामनें आता है कि मौर्यकला, सम्राटों द्वारा संरक्षित और दरबार तक सीमित एवं परिष्कृत कला है। शुंगकला के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि यह विस्तृत सामाजिक दृष्टिकोण, धार्मिक समन्वय तथा लोकप्रिय ऐतिहासिक चरित्र को प्रतिबिम्बित करती है। गुप्तकला रूपांकन, बाह्य रूपरेखा की सूक्ष्मता एवं अन्तर्निहित भावों के सामंजस्य के फलस्वरूप अत्यधिक संतुलित और परिष्कृत है। गुप्तकला में कुषाणों की विदेशी गांधार शैली के लक्षणों के स्थान पर भारतीय परम्परा के अनुरूप अनेक मौलिक तत्वों को सम्मिलित किया गया है। कुषाणकालीन मांसल सौन्दर्य को गुप्तकालीन कलाकारों ने शिव तथा चारुत्व तत्व से मंडित किया है। वस्तुत. गुप्तकालीन कलाकृतियाँ कलात्मक सौन्दर्य एवं भव्यता के लिए प्रसिद्ध है। पूर्व-मध्यकाल (सातवीं से बारहवीं शताब्दी) की कला में सजीवता के स्थान पर कृत्रिमता और स्वाभाविकता के स्थान पर रूढ़िवादिता की प्रमुखता दिखाई पड़नें लगती है, यद्यपि यत्र-तत्र इसके अपवाद भी मिलते हैं।[8]

गंगा यमुना के निचले दोआब के अधीत क्षेत्रों में मुख्यतः-कौशाम्बी, भीटा, शृंग्वेरपुर तथा झूँसी इत्यादि स्थलों में हुए पुरातात्विक अनुसंधान कार्यो से अनेक नवीनतम तथ्य प्रकाश में आए हैं, जिसके फलस्वरूप इस क्षेत्र की कला, विशेषतया स्थापत्यकला एवं मूर्तिकला के विषय में हमारी जानकारी बढी है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध को लेखबद्ध करते समय प्राप्त सूचनाओं का उपयोग किया गया है। निचले दोआब में इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत स्थित भीटा, माँनकुँवार, शृंग्वेरपुर एवं झूँसी, कौशाम्बी जिले के अन्तर्गत कौशाम्बी, मेनहाई, पभोसा एवं गढ्वा, फतेहपुर जिले के

---

8 पाण्डेय, जयनारायण; भारतीय कला एवं पुरातत्व, इलाहाबाद, 1989, पृष्ठ-3.

अन्तर्गत स्थित रेह एवं कानपुर जिले के अन्तर्गत स्थित भीतरगाँव आदि पुरातात्विक स्थलों से ज्ञात स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प सम्बन्धी उदाहरणों का विवरण प्रस्तुत करते हुए इन स्थलों के ऐतिहासिक महत्व को भी दर्शाया गया है। उपर्युक्त पुरास्थलों के अतिरिक्त गंगा-यमुना के निचले दोआब के ऐतिहासिक स्थलों में दुर्वासा आश्रम एवं लाक्षागृह (उपनाम लच्छागिर) को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इसमें दुर्वासा आश्रम झूँसी से वाराणसी मार्ग पर गंगा के किनारे स्थित है। भौगोलिक दृष्टि से यह एक सुस्पष्ट भौगोलिक इकाई के रूप में दिखाई देता है। लाक्षागृह नामक स्थान गंगा के उत्तरी तट पर इलाहाबाद शहर से दक्षिण की ओर स्थित है। यहाँ गंगा किनारे लगभग 29 बीघे का एक बड़ा टीला है। इसी का नाम 'लच्छागिर' है।[9] लच्छागिर के टीले में, प्राचीन काल से लेकर यवन-काल तक की मुद्राएँ प्राप्त होती रहती हैं, जो यह सूचित करती हैं कि प्राचीन काल में यह कोई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थल रहा होगा। वर्तमान समय में लच्छागिर एक साधारण गाँव है, जिसका केवल इतना महत्व है कि सोमवती अमावस्या अथवा वारुणी पर्व पर यहाँ गंगा-स्नान हेतु बड़ा मेला लगता है।[10] यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि निचले दोआब के चार प्रमुख उत्खनित स्थलों अर्थात् कौशाम्बी, भीटा, शृंग्वेरपुर एवं झूँसी की भाँति दुर्वासा आश्रम एवं लच्छागिर आदि स्थल भी पर्याप्त ऐतिहासिक महत्व के हैं, जो विभिन्न संस्थाओं के निर्देशन में सम्पन्न होनें वाले उत्खनन कार्यों की प्रतिक्षा कर रहे हैं।

निचले दोआब के चार प्रमुख ऐतिहासिक स्थलोंः-कौशाम्बी, भीटा, शृंग्वेरपुर तथा झूँसी के राजनीतिक इतिहास-क्रम के प्रस्तुतीकरण के फलस्वरूप यह तथ्य सामनें आता है कि छठी शताब्दी ई0पू0 से लेकर चौथी शताब्दी ई0पू0 तक यहाँ की राजनीतिक व्यवस्था एक सार्वभौम सत्ता के द्वारा संचालित नहीं थी। राजनीतिक एकरूपता केवल मौर्यो एवं गुप्तो के काल में दिखाई पड़ती है। मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य को भारत का प्रथम सार्वभौम सम्राट माना जाता है,

---

9 श्रीवास्तव, शालिग्राम; प्रयाग प्रदीप, इलाहाबाद, 1937, पृष्ठ 284.
10. श्रीवास्तव, शालिग्राम; वही, पृष्ठ 287.

जिसका साम्राज्य उत्तर-पश्चिम में फारस से लेकर दक्षिण में कर्नाटक तक, तथा पूर्व में मगध एवं बंगाल से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र एवं सोपारा तक विस्तृत था।[11] मौर्यो के उपरान्त तथा गुप्तों के उदय के पूर्व उक्त स्थलों के राजनीतिक-इतिहास में क्रमशः शुंग, शक, कुषाण एवं अनेक स्थानीय राजवंशों की सत्ता के आभिलेखिक एवं मौद्रिक साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। इनके काल में यद्यपि मौर्य वंश की भाँति राजनीतिक एकरूपता नहीं स्थापित हो पायी, परन्तु कला में यह बात दृष्टिगत नहीं होती है। वस्तुतः स्थापत्य एवं मूर्तिशिल्प के विकास की दृष्टि से भारतीय इतिहास में मौर्यकाल की भाँति शुंग एवं कुषाणकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हैं, जिसका चरमोत्कर्ष गुप्तकालीन कलाकृतियों में दिखाई देता है। सम्भवतः यही कारण है कि वासुदेव शरण अग्रवाल ने सिंधु-घाटी से लेकर नन्द वंश के पूर्व तक (लगभग ई0पू0 2500-600 ई0पू0) भारतीय कला का आद्ययुग, तदुपरान्त मौर्यकाल से हर्ष के समय तक (लगभग 324 ई0पू0 से लेकर 647 ई0 तक) उसका मध्य युग कहा है, जो उसके समुदीर्ण यौवन का युग है।[12] इसके भी दो उपभाग हो जाते हैं। प्रथम उपभाग के अन्तर्गत मौर्य, शुंग, कण्व एवं सातवाहन कालीन कलाकृतियाँ आती हैं। द्वितीय उपभाग के अन्तर्गत कुषाण, गुप्त, गुप्तोत्तर एवं हर्षकालीन कलात्मक अवशेषों की गणना की जाती है। यहाँ पर यह तथ्य उल्लेखनीय है कि राजनीतिक घटना-क्रम में विभिन्न राजवंशों की सत्ता के बावजूद, कला को किसी विशेष राजवंश से नहीं जोड़ा जा सकता है। यह तथ्य निचले दोआब के संदर्भ में स्पष्टतः दृष्टिगत भी होता है। निचले दोआब के कतिपय पुरास्थलों पर कुषाणकाल एवं गुप्तकाल में बुद्ध मूर्तियाँ, भिक्षु एवं भिक्षुणियों के द्वारा भी स्थापित कराई गई। इनमें कौशाम्बी से प्राप्त कुषाणकालीन मथुरा शैली में निर्मित अभिलेखयुक्त बोधिसत्त्व प्रतिमा, कनिष्क के राज्यकाल के दूसरे वर्ष में भिक्षुणी बुद्धमित्रा के द्वारा

11 पाण्डेय, आर0एन0; प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण 1989, पृष्ठ 322

12 अग्रवाल, वासुदेव शरण; भारतीय कला, वाराणसी, 1987, पृष्ठ-2.

स्थापित की गई थी।[13] गुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम के शासनकाल की, मानकुँवार से प्राप्त बुद्ध मूर्ति, भिक्षु बुद्धमित्र के द्वारा स्थापित कराई गई थी।[14] इसी प्रकार स्कन्दगुप्त–कालीन गढ़वा शिलालेख के अनुसार यह विदित होता है कि किसी नागरिक ने अपनें धार्मिक लाभ के निमित्त यहाँ (गढ़वा) स्थित प्राचीन विष्णु मन्दिर (दशावतार मन्दिर) में भगवान् अनन्तशायी (विष्णु) की मूर्ति की स्थापना की थी (अनन्तस्वामी पादं प्रतिष्ठाप्य)[15]। कौशाम्बी के स्थानीय राजवंशों में मघो के काल में भी व्यक्तिगत लोगों के द्वारा प्रतिमायें स्थापित करायी गई थी।

गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से ज्ञात स्थापत्य सम्बन्धी अवशेषों में, धार्मिक एवं लौकिक दोनों ही प्रकार के भवनों के विषय में जानकारी मिलती है। इनमें धार्मिक भवनों (यथा.–कौशाम्बी का घोषिताराम विहार, श्रृंग्वेरपुर का ईंटों से निर्मित जलाशय तथा भीतरगाँव मन्दिर) की तुलना में लौकिक या आवासीय भवनों (यथाः–कौशाम्बी से ज्ञात छः भवन, भीटा के भवनों की श्रृंखला एवं झूँसी का हवेलिया टीला) के अवशेष कम सुरक्षित अवस्था में प्राप्त हुए हैं। प्राप्त अवशेषों द्वारा भवन–निर्माण की योजना, निर्मित कमरों का व्यवस्थापन एवं भवन निर्माण हेतु प्रयुक्त सामग्रियों के विषय में स्पष्ट जानकारी नहीं प्राप्त होती है। कौशाम्बी के उत्खनन से ज्ञात भवनों में, भीतरी और बाहरी दो हिस्से निर्मित मिलते हैं, जो सम्भवतया क्रम से स्त्री और पुरुष के द्वारा उपयोग में लाए जाते थे। भीटा के कतिपय भवन निजी आवासीय भवनों की तुलना में विशालकाय थे, परन्तु इन भवनों के निर्माण में किन नियमों का अनुपालन किया गया था, इस

---

13 चन्द्र, प्रमोद; स्टोन स्कल्पचर इन इलाहाबाद म्यूजियम, AIIS, पब्लिकेशन नं0 2, पूना, 1970, पृष्ठ–61, क्रमसंख्या 85, प्लेट XXXVII, इलाहाबाद संग्रहालय संख्या 69, चित्रफलक क्रम संख्या 8(A)

14 फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, पृष्ठ 45-47, कुमारस्वामी, आनन्द के; हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट, न्यूयार्क, 1965, पृष्ठ 74, 84–85, चित्रफलक क्रम संख्या 8(B).

15 फ्लीट, कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम, वाल्यूम III, वाराणसी, 1970, संख्या 66, प्लेट XXXIXD, पृष्ठ 267–268.

विषय में स्पष्ट रूप से कोई विवरण नहीं प्राप्त होता है। बृहत्संहिता के अनुसारः–गृह के ईशानकोण में देवगृह, अग्निकोण में रसोईघर, नैर्ऋत्य कोण में गृहस्थी की सब सामग्री रखनें का गृह और वायुकोण (वायव्य) में ग्न व अन्न स्थापन करनें का गृह बनाना चाहिये–

ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्याम्।
नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम्।।[16]

यद्यपि पुराणों में भी स्थापत्य कला सम्बन्धी नितान्त उपादेय सामग्री उपलब्ध होती हैं। जिसमें मत्स्यपुराण[17], अग्निपुराण[18] विष्णुधर्मोत्तरपुराण[19] का विशेष महत्व है, किन्तु इनमें उपलब्ध विवरणों के द्वारा लौकिक या आवासीय भवनों के विषय में अधिक जानकारी नहीं उपलब्ध होती है। वस्तुतः इन ग्रंथों में 'प्रासाद' अर्थात् देवभवनों का ही विशिष्ट स्थान है। इसी प्रकार शिल्पशास्त्रीय ग्रंथों में.–शिल्परत्न (त्रिवेन्द्रम, 1922), मानसार (लंदन, 1946), समरांङ्गणसूत्रधार (बड़ौदा, 1925) एवं अपराजितपृच्छा (भुवनदेवकृत, बड़ौदा, 1950) आदि में भी प्रासाद–वास्तु का ही विशेष रूप से विवरण प्राप्त होता है। इस प्रकार साहित्यिक साक्ष्यों के द्वारा भी लौकिक अथवा आवासीय भवनों के विषय में स्पष्ट विवरण नहीं उपलब्ध होनें पर भी छठीं शताब्दी ई0पू0 से लेकर छठी शताब्दी ई0 तक, निचले दोआब की स्थापत्य कला में उत्तरोत्तर विकास दिखाई पड़ता है।

मौर्य स्थापत्य कला के अन्तर्गत अशोक स्तम्भ और उनके शीर्ष पर बनी पशु मूर्तियाँ आती हैं। गंगा यमुना के निचले दोआब के उत्खनित स्थलों में कौशाम्बी

---

16 बृहत्संहिता, अध्याय 53, श्लोक 118.

17 मत्स्यपुराण (उत्तर भागः), रामप्रताप त्रिपाठी शास्त्री, (समा0) पं0 तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1988, अध्याय 252, 255, 269, 270.

18 अग्निपुराण (पूर्व भागः), (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1985 ई0, अध्याय 104, 105 एवं 106.

19 विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् (तृतीय खण्ड), क्षेमराज श्रीकृष्ण दासेन सम्पादित, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985, अध्याय 86-101.

से अशोक के दो स्तम्भ प्राप्त हुए हैं, इसमें एक इलाहाबाद किले में संस्थापित लेखयुक्त स्तम्भ है। प्रारम्भः में यह कौशाम्बी में स्थापित किया गया था। कौशाम्बी से कब और किसके द्वारा इलाहाबाद लाया गया, यह स्पष्टतः ज्ञात नहीं है। दूसरा लेखरहित स्तम्भ कौशाम्बी में अशोक स्तम्भ स्थल पर स्थापित है। इस स्तम्भ का शीर्ष भाग नहीं प्राप्त हुआ है, परन्तु अशोक के अन्य स्तम्भों के शीर्ष पर उत्कीर्ण पशु-आकृतियों की प्राप्ति के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके शीर्ष भाग पर भी कोई पशु-आकृति अवश्य उत्कीर्ण रही होगी।

निचले दोआब के वास्तु-शिल्प सम्बन्धी अवशेषों में कौशाम्बी के समीप मेनहाई नामक स्थान से प्राप्त द्वितीय-प्रथम शती ई0पू0 की कलाकृतियाँ उल्लेखनीय हैं। यद्यपि प्राप्त कलाकृतियों का रूप और पालिश मौर्यकला के समकक्ष है, तथापि इन पर उत्कीर्ण पशु-आकृतियाँ मौर्य स्तम्भों पर उत्कीर्ण पशु-आकृतियों से भिन्न है। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि भारतीय कला के इतिहास में मौर्यकला के अवसान के बाद भी सीमित रूप में मौर्यकला तकनीक प्रचलित थी।

भारतीय कला के इतिहास में कुषाणकाल मूर्तिशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। मूर्तिकला के अन्तर्गत, प्रायः सभी प्रमुख देवी-देवताओं की प्रतिमायें, कुषाणकाल से लेकर गुप्तकाल के बीच की अवधि में निर्मित की गई। ये प्रतिमायें स्वतन्त्र रूप से अथवा किसी धर्म-सम्प्रदाय से जुड़ी हुई थी, उदाहरण के लिये-बुद्ध एवं बोधिसत्त्व प्रतिमायें बौद्ध धर्म से, तीर्थंकर प्रतिमायें जैन धर्म से तथा ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश, कार्तिकेय एवं दुर्गा, लक्ष्मी आदि की प्रतिमायें ब्राह्मण धर्म से सम्बद्ध मानीं गईं। शुंगकला में बुद्ध एवं बोधिसत्त्व प्रतिमाओं की परिकल्पना नहीं मिलती है और न ही तीर्थंकर मूर्तियों की। इनकी अनुकृति सर्वप्रथम कुषाणकाल की मथुरा कला में हुई। भरहुत, बोधगया तथा साँची में बुद्ध की कोई मूर्ति नहीं मिलती है। बुद्ध का प्रदर्शन प्रतीकों यथा-गज, अश्व, बोधिवृक्ष, धर्मचक्र तथा स्तूप इत्यादि के द्वारा किया गया है जो क्रमशः जन्म, गृहत्याग, ज्ञान, प्रथम प्रवचन

(धम्म चक्क पवत्तन) तथा निर्वाण के सूचक हैं। कौशाम्बी के घोषिताराम विहार से प्राप्त शुंगकालीन प्रस्तर फलक पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित घटना का प्रदर्शन प्रतीक रूप में हुआ है। कुषाणकाल की मथुरा कला में निर्मित आरम्भिक बौद्ध मूर्तियों में सारनाथ की बोधिसत्त्व मूर्ति, कौशाम्बी से प्राप्त बोधिसत्त्व मूर्ति तथा कटरा या अन्योर से प्राप्त बोधिसत्त्व की पद्मासन में बैठी मूर्तियाँ आती हैं। विष्णु, लक्ष्मी, दुर्गा, सप्तमातृकाएँ, कार्तिकेय आदि की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ मथुरा की कुषाणकाल के अन्तर्गत मिलती हैं। बौद्ध तथा ब्राह्मण कला के समान जैन कला को भी प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा में मिली। मथुरा की जिन मूर्तियाँ संवत् 5 से संवत् 95 (83-173 ई0) के मध्य की हैं जो कि कुषाणकालीन मानी जाती हैं।[20]

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति के पुनरुत्थान का काल माना जाता है। गुप्त नरेश परम वैष्णव तथा आदर्शवादी थे। यह तथ्य इस युग की स्थापत्य एवं मूर्तिकला में स्पष्टतया परिलक्षित भी होता है। गुप्त युग में पौराणिक देवी-देवताओं के बहुसंख्यक मन्दिर निर्मित हुए। वस्तुतः मन्दिर स्थापत्य का पूर्ण विकास गुप्तकाल में हुआ। गुप्तयुग से मन्दिर के वास्तुगत सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया तथा उसके विविध अंगों को शास्त्रीय स्वरूप देनें का प्रयास किया गया। एक शैली के रूप में गुप्त मन्दिर स्थापत्य की परम्परा गुप्तों के बाद किसी न किसी रूप में नवीं शती ई0 तक चलती रही।

इसी प्रकार गुप्तकालीन मूर्तिकला के अन्तर्गत भी पौराणिक देवी-देवताओं की प्रतिमाओं को प्रमुख स्थान मिला। पंचायतन पूजा में विष्णु, शिव, सूर्य, शक्ति तथा गणेश इन पाँच देवों की प्रतिमायें मुख्य रूप से बनाई गईं। इसके अतिरिक्त विष्णु की विभिन्न अवतार प्रतिमायें एवं शिव की मुख-लिङ्ग मूर्तियाँ तैयार की गई, जो कलात्मकता की दृष्टि से विशिष्ट मानीं जाती हैं। गुप्तकालीन मूर्तिशिल्प के उदाहरणों में गढ़वा (कौशाम्बी) के पाषाणखण्ड पर उत्कीर्ण षड्भुजी विश्वरूप विष्णु

---

20 तिवारी, मारुतिनन्दन प्रसाद; जैन प्रतिमा विज्ञान, वाराणसी, 1981, पृष्ठ 48.

प्रतिमा भारतीय मूर्ति-शिल्प के सबसे मनोज्ञ एवं भव्य नमूनों में से एक मानी जाती है। इसके विषय में कलाविद् जेम्स सी0 हार्ल का कथन है कि, "गढ़वा सिरदल की विशिष्टता विशुद्ध आलंकारिक तत्वों के अभाव (किसी भी भाँति के आभूषण तक नहीं पहनाये गए हैं) तथा जुलूस की आकृतियों में चतुरता के साथ लययुक्त स्थिति एवं मुद्राओं की विविधता का निदर्शन है; यह किसी ऐसे शिल्पाचार्य की रचना है जो शास्त्रीय अनुपात को विलक्षण ढंग से पतले अवयवों के साथ त्रि-आयाम में, भंगिमाओं को अभिव्यक्त करनें में अद्भुत रूप से निपुण था।.......यह वर्णात्मक गुप्त शिल्प की पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व है।"[21] यहाँ पर गढ़वा (कौशाम्बी) से प्राप्त गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय "विक्रमादित्य", कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त कालीन शिलालेखों (गुप्त संवत् 88 (= 407 ई0) से लेकर गुप्त संवत् 148 (=467 ई0) तक) एवं शिल्पगत अवशेषों के आधार पर हम निश्चयात्मक रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि परिपक्व गुप्त-शैली पाँचवी शती के मध्य से काफी पहले इस क्षेत्र में परिनिष्ठित एवं पूर्ण अभिव्यक्ति प्राप्त कर चुकी थी।

गंगा यमुना के निचले दोआब की मूर्तिकला के अन्तर्गत मृण्मयी प्रतिमाओं का भी प्रमुख स्थान रहा है। मृत्तिका कला के विकास की दृष्टि से निचले दोआब के क्षेत्रों में कौशाम्बी, शृंग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी आदि स्थानों से मृण्मूर्तियाँ प्राक् मौर्यकाल से मिलनी प्रारम्भ हो जाती हैं। इस काल की मृण्मूर्तियाँ हस्तनिर्मित हैं, तथा हाथ से डौलियाकर बनायी गई हैं। शुंगकाल से साँचे का पूर्ण प्रयोग मिट्टी की मूर्तियों को बनाने के लिये होनें लगा। जिसमें मूर्ति का अर्द्धभाग उभर आता जो भ्राँतिवश पूरा मालूम पड़ता था। कुषाणकाल में प्रायः सिर साँचे में ढला जाता और सिर से नीचे का धड़ हाथ से तैयार किया जाता था। गुप्तयुग से इस बनावट में परिवर्तन आ गया। इस काल में सिर के दो भाग किए जाते (अगला तथा पिछला) दोनों अलग-अलग साँचे में ढाले जाते और मिलाकर एक सुन्दर सिर तैयार हो जाता। गुप्तकालीन ईंटों से निर्मित भीतरगाँव मन्दिर की सम्पूर्ण बाह्य दीवारों पर

---

21. अग्रवाल, पृथ्वी कुमार; गुप्तकालीन कला एवं वास्तु, वाराणसी, 1994, पृष्ठ-31-32.

मृण्मूर्तियाँ प्रदर्शित हैं। उनमें गंगा-यमुना, अनन्तशायी विष्णु, शिव-पार्वती तथा गणेश के फलक विशेष उल्लेखनीय हैं। मृण्मूर्तियों में एक वर्ग स्त्री तथा पुरुष मृण्मूर्तियों तथा पशु आकृतियों का भी है। कौशाम्बी श्रृंग्वेरपुर, भीटा तथा झूँसी से स्त्री-पुरुष धड़, आवक्ष, तथा पूर्णरूप प्राप्त हुए हैं। इनमें झूँसी की स्त्री मृण्मूर्तियों में केश-विन्यास की विभिन्न शैलियाँ दृष्टिगत होती हैं। विभिन्न प्रकार के रंगों यथा-लाल, गुलाबी, पीला, सफेद आदि रंगों से रंगी हुई (Painted) मृण्मूर्तियाँ कौशाम्बी, भीटा आदि स्थलों से मिली हैं। गुप्तकाल में लघु मृण्मूर्तियों के अतिरिक्ति मिट्टी के विशाल फलकों का भी निर्माण किया गया, जिन्हें मन्दिरों अथवा गृहों में लगाया जाता था। इन फलकों पर धार्मिक तथा सामाजिक दृश्य ढाले जाते थे। प्रस्तर शिल्प की भाँति मिट्टी के इन बड़े फलकों तथा मूर्तियों की पंक्तियों से मन्दिरों को नीचे से ऊपर तक सजाया जाता था। इनमें कानपुर के भीतरगाँव का मन्दिर उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस विवरणोपरांत यहाँ पर यह कहा जा सकता है कि गंगा-यमुना के निचले दोआब के उत्खनित पुरास्थलों से बौद्ध, जैन तथा ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित देवी-देवताओं की प्रतिमाओं की प्राप्ति यह इंगित करती है कि प्राचीन काल से (छठी शताब्दी ई0पू0) ही इन क्षेत्रों में ये सम्प्रदाय प्रचलित और लोकप्रिय थे, जो गुप्तों के समय में उन्नत स्थिति में पहुँच गए थे। भीटा की खुदाइयों से एक बड़ी संख्या में मिट्टी की मुहरें तथा ठप्पे प्रकाश में आये हैं जिससे स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में वैष्णव धर्म की लोकप्रियता गुप्तों के शासनकाल में सबसे अधिक रही। कौशाम्बी तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में वर्तमान समय में भी जैन धर्म की लोकप्रियता देखी जा सकती है। प्रभासगिरि (पभोसा) में प्रति वर्ष जैन श्रृद्धालु कार्तिक सुदी तेरस और चैत पूर्णिमा को इस पवित्र शिखर पर भगवान पद्मप्रभ (जैन धर्म के छठें तीर्थकर) के दर्शन पूजन के लिये इक्ट्ठे होते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ

1 **अपराजितपृच्छा** : (भुवनदेवकृत) (सं0) पोपटभाई अम्बाशंकर मनकड़, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1950 ई0

2 **अमरकोश** : (अमरसिंहकृत) पं0 रामस्वरूपकृत भाषा टीका सहित, श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संवत् 1962

3 **अर्थशास्त्र** : (आचार्य विष्णुगुप्त कौटिल्य कृत)
(अनु0) श्री भारतीय योगी,
संस्कृति संस्थान, बरेली (उ0प्र0)
प्रथम संस्करण 1973 ई0

4 **अर्थशास्त्र** : (कौटिल्यकृत) (अनु0) उदयवीर शास्त्री,
संस्कृत पुस्तकालय, लाहौर, 1925 ई0

5 **अर्थशास्त्र** : (कौटिल्यकृत) (अनु0) आर0पी0 कांगले,
यूनिवर्सिटी ऑफ बम्बई, बम्बई,
प्रथम भाग - 1960 ई0
द्वितीय भाग - 1963 ई0
तृतीय भाग - 1965 ई0

6 **अग्निपुराण** . पूर्वभाग, (अनु0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1985 ई0

7 **अग्निपुराण** : आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज, पूना, 1900 तथा अंग्रेजी अनुवाद-एम0एन0 दत्ता, कलकत्ता, 1901 ई0

8 **अग्निमहापुराणम्** : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा सम्पादित, प्रकाशित-श्री वेंकटेश्वरस्टीम मुद्रणालय,
नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985 ई0

9 गरुडमहापुराणम् : क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा सम्पादित, प्रकाशित–श्री वेंकटेश्वरस्टीम मुद्रणालय,
नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1984 ई0

10 पद्मपुराण : श्री मन्महर्षि कृष्णद्वैपायनव्यास विरचितम्, गुरुमण्डल ग्रन्थमाला, कलकत्ता,
भाग–1, 2 – 1957 ई0
भाग–3 – 1958 ई0
भाग–4, 5 – 1959 ई0

11 बृहत्संहिता : (वराहमिहिरकृत) (अनु0) बलदेव प्रसाद जी मिश्र, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, संवत् 1997

12 भविष्यमहापुराणम् : (अनु0) पण्डित बाबूराम उपाध्याय,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,
(प्रथम खण्ड) ब्राह्म पर्व – 1995 ई0
(द्वितीय–खण्ड) मध्यम एवं प्रतिसर्ग पर्व–1997 ई0

13 मानसार : (अनु0) प्रसन्नकुमार आचार्य,
ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1946 ई0

14 मत्स्यपुराण : (अनु0) राम प्रताप त्रिपाठी शास्त्री, (सं0) तारिणीश झा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग,
पूर्व भाग (द्वितीय संस्करण)–1989 ई0
उत्तर भाग (द्वितीय संस्करण)–1988 ई0

15 मत्स्यपुराण : गुरुमण्डल सीरीज, कलकत्ता, 1954 ई0

16 महाभारत : (श्री मन्महर्षि वेदव्यास प्रणीत), (अनु0) पण्डित राम नारायण दत्त शास्त्री पाण्डेय "राम", गीताप्रेस, गोरखपुर, तृतीय संस्करण,
संवत् 2025

17 महाभारत खण्ड १ से ६ : चित्रशाला प्रेस, पूना, 1929–1933 ई0

18 रामायण : (बाल्मीकिकृत), प्रथम भाग,
गीताप्रेस, गोरखपुर,
तृतीय संस्करण, संवत् 2033

19 ऋग्वेद संहिता : वैदिक संशोधन मंडल-वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना 1946, तथा सम्पादित श्रीपाद दामोदर सातवलेकर-स्वाध्याय मंडल पारडी, बलसाड, सूरत, 1975 ई0

20 विष्णु पुराण : (अनु0) श्री मुनिलाल गुप्त,
गीता प्रेस, गोरखपुर,
अष्टम संस्करण, संवत् 2033

21 वायुपुराण : क्षेमराज श्रीकृष्णदास, श्री वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, बम्बई, वि0सं0 1990

22 विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् : क्षेमराज श्रीकृष्णदास सम्पादित, (तीनों खण्ड), श्री वेंकटेश्वर स्टीम मुद्रणालयन,
नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1985 ई0

23 विष्णुधर्मोत्तर पुराण (ए टेक्स्ट ऑन एन्श्यन्ट इण्डियन आर्ट) : डा0 प्रियबाला शाह, दि न्यू आर्डर बुक कार्पोरेशन, अहमदाबाद, 1990 ई0

24 समरांगण सूत्रधार : (महाराजाधिराज भोजकृत)
(दि परमार रूलर ऑव धारा), (मौलिक समा0) टी0 गणपति शास्त्री, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, 1966 ई0

25. हरिवंश पुराण : श्री मज्जिनसेनाचार्य प्रणीत,
सम्पादक- अनुवादक डा0 पन्नालाल जैन,
भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली,
द्वितीय संस्करण 1978 ई0

सहायक ग्रंथ

1 अग्रवाल, वासुदेवशरण — **भारतीय कला**, (प्रारम्भिक युग से तीसरी शती ईसवी तक)
पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1966 ई0, पुनर्मुद्रण 1987 ई0

2 अग्रवाल, वासुदेवशरण : **गुप्त आर्ट**, (ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन आर्ट इन दि गुप्त पीरियड 300-600ई0)
पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1977 ई0

3 अग्रवाल, पृथिवी कुमार · **गुप्तकालीन कला एवं वास्तु**,
बुक्स एशिया, नगवा, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1994 ई0

4 अग्रवाल, पृथिवी कुमार · **गुप्त टैम्पल आर्किट्रेक्चर**,
पृथिवी प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1968 ई0

5 अवस्थी, अवधबिहारीलाल — **प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप**, (एष देशः देशोऽयमस्ति परमं पवित्र.)
कैलाश प्रकाशन, लखनऊ,
प्रथम संस्करण, 1964 ई0

6. उपाध्याय, वासुदेव — **प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान**,
चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी,
प्रथम संस्करण, वि0सं0 2026

7. उपाध्याय, वासुदेव : **प्राचीन भारतीय स्तूप, गुहा एवं मन्दिर**,
बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना,
प्रथम संस्करण, 1972 ई0

8 उपाध्याय, वासुदेव : **प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन**,
मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1961 ई0

9. उपाध्याय, बलदेव : **भागवत सम्प्रदाय,**
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
प्रथम संस्करण, वि0सं0 2010

10. उपाध्याय, भगवत शरण : **गुप्तकाल का सांस्कृतिक इतिहास,**
हिन्दी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ,
प्रथम संस्करण 1969 ई0

11. काला, सतीश चन्द्र : **भारतीय मृत्तिका कला,**
प्रतीक प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1972 ई0

12. काला, एस0सी0 : **टेराकोटा इन दि इलाहाबाद म्यूजियम,**
अभिवन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1980 ई0

13. कुमारस्वामी, ए0के0 : **हिस्ट्री ऑव इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट,**
डोवर पब्लिकेशनस, न्यूयार्क, 1965 ई0

14. कुमारस्वामी, ए0के0 : **यक्षाज** (दो भागों में)
मुंशीराम मनोहर लाल, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण अगस्त 1971 ई0

15. कुमारस्वामी, ए0के0 : **एलीमेन्ट्स ऑव बुद्धिस्ट्स आइकोनोग्राफी,**
मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, 1972 ई0

16. कुमारस्वामी, ए0के0 : **अर्ली इण्डियन आर्किट्रेक्चर:सिटीज एण्ड सिटी गेट्स,**
मुंशीराम मनोहरलाल, दिल्ली,1991 ई0

17. कनिंघम, अलेक्जेण्डर : **आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया,** वाल्यूम X,
(1874-75 एण्ड 1876-77 ई0)
इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1966 ई0

18. कनिंघम, अलेक्जेण्डर : **आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया,** वाल्यूम XI,
(1875-76 एण्ड 1877-78 ई0)
इंडोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी,1968 ई0

19 गुप्त, परमेश्वरी लाल : **भारतीय वास्तुकला,**
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1977 ई0

20 गुप्त, परमेश्वरी लाल **प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख,** (खण्ड 1) (मौर्यकाल से गुप्त-पूर्व काल तक)
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
द्वितीय संस्करण 1988 ई0

21. गुप्त, परमेश्वरी लाल : **भारत के पूर्व-कालिक सिक्के,**
विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1996 ई0

22 गुप्ता, सुमन्त **गुप्तवंशीय अभिलेखों का धार्मिक अध्ययन,**
अजय बुक सर्विस, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1981 ई0

23 गोयल, श्रीराम : **गुप्तकालीन अभिलेख,**
कुसुमांजलि प्रकाशन, मेरठ,
प्रथम संस्करण, सितम्बर, 1984 ई0

24 गोयल, एस0आर0
गोयल, शंकर : **(समा०) इण्डियन आर्ट ऑव दि गुप्त ऐज,** (फॉर प्री क्लासिकल रूट्स टू दि इमरजेन्स ऑव मिडिवल ट्रेन्डस),
कुसुमांजलि बुक वर्ल्ड, जोधपुर,
प्रथम संस्करण 2000 ई0

25 गुप्ते, आर0एस0 : **आइकोनोग्राफी ऑव हिन्दूज, बुद्धिस्ट्स एण्ड जैन्स,**
डी0बी0 तारापोरिवाला सन्स एण्ड कार्पोरेशन प्रा0 लि0, बम्बई,
प्रथम संस्करण 1972 ई0

26 घोष, नगेन्द्र नाथ : **अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी,**
इलाहाबाद आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी,
इलाहाबाद, 1935 ई0

27 घोष, अमलानन्द : **(सं०) जैन कला एवं स्थापत्य** (3 खण्ड),
नई दिल्ली, 1975 ई0

28 चन्द्र, प्रमोद : **स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, (ए डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग)**
अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज (AIIS) पब्लिकेशन नं0 2,
दक्कन कालेज, पूना, 1970 ई0

29 चन्द्र, प्रमोद : **(सं०) स्टडीज इन इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर** (पेपर्स प्रेजेन्टेड ऍट ए सेमीनार हेल्ड इन वाराणसी,1967ई0)
अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज(AIIS)
नई दिल्ली, 1975 ई0

30 चटर्जी, असीम कुमार : **पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑव प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया,**
इण्डियन पब्लिसिटी सोसाइटी, कलकत्ता,
प्रथम संस्करण 1980 ई0

31. जैन, बलभद्र : **भारत के दिगम्बर जैन तीर्थ,** (प्रथम भाग)
उत्तर प्रदेश और दिल्ली राज्य,
भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी, बम्बई,
प्रथम संस्करण 1974 ई0

32 जायसवाल, सुवीरा : **वैष्णव धर्म का उद्भव और विकास,**
ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा0लि0,
नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1996 ई0

33 जायसवाल, के0पी0 : **हिस्ट्री ऑव इण्डिया,** (150 ई0 से 350 ई0),
लाहौर, 1933 ई0

34 जोशी, ईशा बसन्ती : **उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियरस,** इलाहाबाद,
गर्वनमेन्ट ऑव उत्तर प्रदेश
(डिपार्टमेन्ट ऑव डिस्ट्रिक्ट गजेटियर,
उत्तर प्रदेश),लखनऊ, 1968 ई0

35 जोशी, महेश चन्द्र : **युगयुगीन भारतीय कला,**
राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर (राजस्थान),
प्रथम संस्करण, जनवरी, 1995 ई0

36 जोशी, एन0पी0 · **मथुरा स्कल्पचर्स,**
मथुरा, 1966 ई0

37. जोशी, एन0पी0 : **कैटलॉग ऑव दि [illegible] स्कल्पचर्स इन स्टेट म्यूजियम,** लखनऊ, (पार्ट-वन),
स्टेट म्यूजियम कैटलॉग सीरीज,
लखनऊ, 1972 ई0

38. जहीर, मोहम्मद : **दि टैम्पल ऑव भीतरगॉव,**
अगम कला प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1981 ई0

39 तिवारी, मारूतिनन्दन प्रसाद : **जैन प्रतिमा विज्ञान,**
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
वाराणसी, 1981 ई0

40. तिवारी, रामचन्द्र : **सेट्लमेन्ट सिस्टम इन रूरल इण्डिया,**
(ए केस स्टडी ऑव दि लोअर गंगा-यमुना दोआब)
दि इलाहाबाद ज्योग्राफिकल सोसाइटी, डिपार्टमेन्ट ऑफ ज्योग्राफी, यूनिवर्सिटी ऑव इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1984 ई0

41 थपलियाल,किरन कुमार **स्टडीज इन एन्श्यन्ट इण्डियन सील्स,**
अखिल भारतीय संस्कृत परिषद,
लखनऊ, 1972 ई0

42 दूबे, लालमणि : **अपराजितपृच्छा (ए क्रिटिकल स्टडी),**
लक्ष्मी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1987 ई0

43. दूबे, डी0पी0 · **प्रयाग, दि साइट ऑव कुम्भ मेला,**
आर्यन बुक्स इन्टरनेशनल, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 2001 ई0

44 देव, कृष्ण एवं त्रिवेदी, एस0डी0 : **स्टोन स्कल्पचर्स इन दि इलाहाबाद म्यूजियम,**
वाल्यूम II,
मनोहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स,
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1996 ई0

45 देसाई, कल्पना : **आ कोनोग्राफी ऑव विष्णु,**
नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1973 ई0

46 धवलिकर, एम0के0 : **मास्टर पीसेस ऑव इण्डियन टेराकोटाज,**
डी0बी0 तारापोरिवाला सॅन्स एण्ड कार्पोरेशन प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई,
प्रथम संस्करण 1977 ई0

47 नेगी, जे0एस0 : **सम इण्डोलॉजिकल स्टडीज,** वाल्यूम I,
पंचानन्द पब्लिकेशनस, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1966 ई0

48 पाण्डेय, सुशील कुमार : **प्राचीन मृण्मयी मूर्तिकला,**
संजय बुक सेन्टर, वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1997 ई0

49 पाण्डेय, सुरेन्द्र कुमार : **वास्तु शब्दार्णव,**
साहित्य भण्डार, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 2002 ई0

50 पाण्डेय, विमल चन्द्र **प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास** (पूर्व-ऐतिहासिक काल से 320 ईसवी तक),
सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1958ई0,
तेरहवाँ संस्करण 1978 ई0

51 पाण्डेय, संगम लाल : **श्रृंग्वेरपुरगौरवम्,** (एक प्राचीन आश्रम का रिक्थ),
दर्शन पीठ, 117 टैगोर टाउन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1994 ई0

52 पाण्डेय, राम निहोर : **प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास**, (600 ई0पू0 319 ई0 तक),
प्रमानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1983 ई0
द्वितीय संस्करण 1989 ई0

53 पाण्डेय, जयनारायण : **भारतीय कला एवं पुरातत्त्व**,
प्रामानिक पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, 1989 ई0

54. फ्लीट, जॉनफेथफुल · **कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम**,
(इन्सक्रप्शनस ऑव दि अर्ली गुप्त किंग्स एण्ड देअर सक्सेर्स) वाल्यूम III,
इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1970 ई0

55. ब्राउन, पर्सी : **इण्डियन आर्किट्रेक्चर**, (बुद्धिस्ट एण्ड हिन्दू)
डी0बी0 तारापोरिवाला सन्स एण्ड कार्परेशन, बम्बई,
द्वितीय संस्करण 1942 ई0

56 बाजपेयी, के0डी0 · **भारतीय वास्तुकला का इतिहास**,
लखनऊ, 1972 ई0

57 बाजपेयी, के0डी0 : **कल्चरर हिस्ट्री ऑव इण्डिया**, (वाल्यूम I),
मध्य प्रदेश, प्रजन्य प्रकाशन, कानपुर, 1985 ई0

58. बाजपेयी, कृष्णदत्त
लाल, कन्हैया
बाजपेयी, संतोष : **ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख**,
पब्लिकेशन स्कीम, जयपुर, 1992 ई0

59 बाजपेयी, संतोष कुमार : **गुप्तकालीन मूर्तिकला का सौन्दर्यात्मक अध्ययन**,
ईस्टर्न बुक लिकर्स, दिल्ली,
प्रथमसंस्करण 1992 ई0

60 बनर्जी, जे0एन0 : **द डेवलपमेन्ट ऑव हिन्दू [illegible]**,
नई दिल्ली,
तृतीय संस्करण 1974 ई0

61 भट्टाचार्या, बिनयतोश : **दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी,**
फर्म के0एल0 मुकोपाध्याय, कलकत्ता,
द्वितीय संस्करण 1958 ई0

62 भट्टाचार्या, बी0सी0 : **दि जैन आइकोनोग्राफी,**
मोती लाल बनारसी दास, दिल्ली,
प्रथम संस्करण लाहौर 1939 ई0,
द्वितीय पुनर्मुद्रण दिल्ली 1974 ई0

63 भट्ट, जनार्दन : **अशोक के धर्मलेख,** (अशोक के शिलालेखों, स्तम्भ लेखों और गुफा लेखों का संग्रह),
पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, दिल्ली, 1957 ई0

64 मिस्टर, माइकल डब्लू : **एनसाइक्लोपीडिया ऑव इण्डियन टैम्पल आर्किट्रेक्चर,**
ढाकी, एम0ए0
देव, कृष्ण
नार्थ इण्डिया, फाउन्डेशन ऑव नॉर्थ इण्डियन स्टाइल (250 ई0पू0-ई0 1100), वाल्यूम II, पार्ट I, टेक्स्ट,
अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज,
नई दिल्ली, 1988 ई0

65. मार्शल, सर जॉन · **एक्सकेवेशन ऍट भीटा,**
(आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया) एनुॅअल रिपोर्ट, 1911-12 ई0,
सुपरीटेन्डेन्ट गर्वमेन्ट प्रिनिटिंग, इण्डिया,
कलकत्ता, 1915 ई0

66 मिश्र, इन्दुमती · **प्रतिमा-विज्ञान,**
मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी,
भोपाल, प्रथम संस्करण 1972 ई0

67. मिश्र, रमानाथ : **भारतीय मूर्तिकला,**
दिल्ली 1978 ई0

68. मिश्र, जनार्दन : **भारतीय प्रतीक विद्या,**
बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1959 ई0

69 मालवीय, बद्रीनाथ : **श्री विष्णुधर्मोत्तर में मूर्तिकला,**
इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, वि0सं0 2017

70 माथुर, विजयकुमार : **आर्ट एण्ड कल्चर अण्डर दि शुगांज,**
भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1996 ई0

71 मामोरिया, चतुर्भुज : **भारत का बृहत्त भूगोल,**
साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा,
ग्यारहवाँ संस्करण 2002 ई0

72 मजूमदार, आर0सी0 : **एन्श्यन्ट इण्डिया,**
बनारस, 1952 ई0

73 मुखर्जी, राधाकुमुद : **हिन्दू सभ्यता,**
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,
सातवाँ संशोधित संस्करण 1990,
तीसरी आवृत्ति 2000

74 मोतीचन्द्र : **प्राचीन भारतीय वेशभूषा,**
प्रयाग,
प्रथम संस्करण सं0 2007 वि0

75 राय, उदय नारायण · प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन,
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
संस्करण 1998 ई0

76 राय, उदय नारायण **गुप्त सम्राट और उनका काल,**
लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद,
आठवाँ संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण 2001 ई0

77 राय, एस0एन0 · **भारतीय पुरालिपि एवं अभिलेख,**
शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद,
द्वितीय संस्करण 1997 ई0

78 राय, नीहाररंजन · **मौर्य तथा मौर्योत्तर कला,**
(अनु0) गोरख प्रसाद पाण्डेय
दि मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड,
दिल्ली, प्रथम संस्करण 1979

79 राव, बी0पी0 : **भारत एक भौगोलिक समीक्षा,**
वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर,
प्रथम संस्करण 1988 ई0,
पुनर्मुद्रण 1998 ई0

80 राव, टी0ए0 गोपीनाथ : **एलीमेन्ट्स ऑव हिन्दू आ कोनोग्राफी,**
(दो खण्डों में)
मोतीलाल बनारसी दास,
मद्रास संस्करण 1914 ई0,
द्वितीय पुनर्मुद्रण, दिल्ली 1985 ई0

81 राणा, एस0एस0 **भारतीय अभिलेख,**
भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली-वाराणसी,
प्रथम संस्करण 1978 ई0

82 लाल, बी0बी0 : **एक्सकेवेशन ऍट श्रृंग्वेरपुर,**
(मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 88), वाल्यूम I, (1977-86),
दि डॉयरेक्टर जनरल, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नई दिल्ली 1993 ई0

83 वर्मा, महेन्द्र : **प्राचीन भारत की वास्तुकला,**
आर्य बुक डिपो, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1996 ई0

84 शुक्ल, विमल चन्द्र : **भारतीय कला के विविध आयाम,**
हिमांशु प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1997 ई0

85 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ : **भारतीय वास्तु-शास्त्र,**
(धाराधिप महाराज भोजदेव-विरचित समराङ्गण- सूत्रधार के आधार पर)
वास्तुविद्या तथा पुर-निवेश,
वास्तु-वाङ्मय प्रकाशन शाला, लखनऊ 1955 ई0

86 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ : **भारतीय स्थापत्य,**
(शास्त्रीय एवं कलात्मक अध्ययन)
हिन्दी समिति, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश,
लखनऊ, प्रथम संस्करण 1968 ई0

87 शुक्ल, द्विजेन्द्र नाथ : **समरांगण-सूत्रधार-वास्तुशास्त्रीय भवन निवेश,**
वास्तु वाङ्मय प्रकाशन शाला,
लखनऊ, 1964 ई0

88 शर्मा, आर0एस0 : **अरबन डिके इन इण्डिया,**
मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1987 ई0

89 शर्मा, जी0आर0 : **एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी,**
मेमॉयर्स ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, नं0 74, (1949-50),
दिल्ली, 1969 ई0

90 शर्मा, जी0 आर0 : **दि एक्सकेवेशन ऍट कौशाम्बी,** (1957-1959
डिपार्टमेन्ट ऑव एन्श्यन्ट हिस्ट्री, कल्चर एण्ड आर्कियोलॉजी, यूनिवर्सिटी ऑव इलाहाबाद,
प्रकाशन वर्ष 1960 ई0

91 शर्मा, जी0 आर0 : **हिस्ट्री टू प्रीहिस्ट्री,**
(आर्कियोलॉजी ऑव दि गंगा वैली एण्ड दि विन्ध्याज),
इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, 1980 ई0

92 शर्मा, जी0 आर0 : **रेह इन्सक्रप्शन ऑव मिनेण्डर एण्ड दि इण्डो-ग्रीक इनवेजन ऑव दि गंगा वैली,**
यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, 1980 ई0

93. शर्मा, जी0 आर0 : **कुषाण स्टडीज,**
प्रेजेन्टेड टु दि दुशाम्बे (तजाकिस्तान) कॉन्फ्रेन्स (सितम्बर 25–अक्टूबर 4, 1968),
कन्टेनिंग थ्री पेपर्सः–''कुषाण आर्किट्रेक्चर विद स्पेशल रिफरेन्स टु कौशाम्बी'', द्वारा जी0आर0 शर्मा, ''दि शक–कुषाण इन दि सेन्ट्रल गंगा वैली'', द्वारा जी0आर0 शर्मा एवं जे0एस0 नेगी तथा ''सम एस्पेक्ट्स आव दि चेन्जिंग आर्डर इन इण्डिया ड्यूरिंग दि शक–कुषाण एज'', द्वारा बी0एन0एस0 यादव
यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद,
प्रथम प्रकाशन 1968 ई0, पुनर्मुद्रण 1998 ई0

94 श्रीवास्तव, ए0एल0 : **भारतीय कला,**
किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1988 ई0
पुनर्मुद्रण 1997 ई0

95 श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र : **भारत की संस्कृति तथा कला,**
यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1988 ई0

96 श्रीवास्तव, बृजभूषण : **प्राचीन भारतीय प्रतिमा-विज्ञान एवं मूर्तिकला,**
विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी,
द्वितीय संस्करण 1990 ई0

97 श्रीवास्तव बलराम : **रूपमण्डन (श्री सूत्रधारमण्डन विरचित रूपमण्डनम्).**
मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी, सं0 2021.

98 श्रीवास्तव, एम0पी0 : **प्राचीन अद्भुत भारत की सांस्कृतिक झलक,**
सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1988 ई0

99 श्रीवास्तव, शालिग्राम : **प्रयाग प्रदीप,**
हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1937 ई0

100 सिन्हा, बी0सी0 **ग्लोरियस आर्ट ऑव दि शुंग एज,**
दिल्ली,
प्रथम संस्करण, 1985 ई0

101 सिन्हा, ऊषा **बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी इन उत्तर प्रदेश,**
(ई0 300-1200 तक)
संजय बुक सेन्टर, वाराणसी, 1995 ई0

102 सरकार, डी0सी0 : **सेलेक्ट इन्सक्रप्शनस,**
बियरिंग ऑन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड सिविलाइजेशन्स,
वाल्यूम I,
वी0के0 पब्लिशिंग हाउस, करोल बाग,
नई दिल्ली, 1991 ई0

103 सोमपुरा,प्रभाशंकर ओ0 . **भारतीय शिल्पसंहिता,**
सौम्या पब्लिकेशन्स प्रा0लि0, बम्बई, 1975 ई0

104 सरस्वती, एस0के0 : **ए सर्वे ऑव इण्डियन स्कल्पचर,**
मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0,
नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1975 ई0

105 सिंह, आर0एल0 : **इण्डिया, ए रीजनल ज्योग्राफी,**
सिल्वर जुबली पब्लिकेशन्स,
नेशनल ज्योग्राफिकल सोसाइटी ऑव इण्डिया,
वाराणसी 1971 ई0

106 सिंह, भगवान : **गुप्तकालीन हिन्दू देव-प्रतिमाएं,** (प्रथम खण्ड) रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1982 ई0

107 सहाय, भगवंत : **आइकोनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दू एण्ड बुद्धिस्ट डिटिज,**
अभिनव पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,
प्रथम संस्करण 1975 ई0

108 सहाय, सच्चिदानन्द : **मन्दिर स्थापत्य का इतिहास,**
बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना,
प्रथम संस्करण, फरवरी 1981 ई0
द्वितीय संस्करण, दिसम्बर 1989 ई0

109 हालदार, असित कुमार : **रूपदर्शिका,**
चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1965 ई0

110 हालदार, असित कुमार : **ललित कला की धारा,**
चन्द्रलोक प्रकाशन, इलाहाबाद,
प्रथम संस्करण 1960 ई0

111 हुल्त्स, ई0 : **कार्पस इन्सक्रप्शनम इण्डीकेरम,**
(इन्सक्रप्शनस ऑव अशोक) वाल्यूम I, इण्डोलॉजिकल बुक हाउस, वाराणसी, 1969 ई0

112 त्रिपाठी, ऋषिराज : **मास्टर पीसेस इन दि इलाहाबाद म्यूजियम,**
इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1984 ई0

विदेशी यात्रियों के विवरण

गाइल्स, एच०ए० : दि ट्रेवेल्स ऑव फाह्यान, (399-414 ई0), ऑर रिकार्ड्स ऑव दि बुद्धिस्टिक किंग्डम्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1923 ई0

लेग्गे, जे० : (अनु0) फाह्यान, ए रिकार्ड ऑव बुद्धिस्टिक किंग्डम्स, ऑक्सफोर्ड, 1886 ई0

वाटर्स, टी० : ऑन श्वान्-च्यांग ट्रेवेल्स इन इण्डिया, (ई0 629-645) (सं0) टी0डब्ल्यू0 रिज डेविड्स एवं एस0डब्लू0 बुशेल, प्रथम मौलिक प्रकाशन, रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन 1904-05 ई0, द्वितीय भारतीय संस्करण, मुंशीराम मनोहर लाल पब्लिशर्स प्रा0 लि0, नई दिल्ली 1973 ई0

पत्र-पत्रिकायें

आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुॅअल रिपोर्ट, 1908-09, 1911-12.

इण्डियन आर्कियोलॉजी, ए रिव्यू, 1954-55, 1955-56, 1956-57, 1977-78, 1978-79, 1979-80, 1980-81, 1981-82, 1982-83, 1983-84, 1984-85,

इण्डियन एन्टीक्वेरी, बम्बई वाल्यूम XVIII,

एपिग्राफिया इण्डिया, वाल्यूम XVI

जर्नल ऑव दि बॉम्बे ब्रान्च ऑव दि रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, XXIII

जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना,

पुरातत्व, बुलेटिन ऑव दि इण्डियन आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी, अंक 3, दि इण्डियन आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी

प्राग्धारा, उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व विभाग की शोध पत्रिका, लखनऊ, अंक-6 (1995-96), अंक-9 (1998-99) एवं अंक-10 (1999-2000)

मार्ग, बम्बई, अंक 22.

ARCHITECTURE

A view of the Inlet Channel and the northern part of Tank A with its retaining walls. Looking north west.

चित्रफलक 1 (A)
जलाशय A की रिटेनिंग दीवारों
के साथ, उत्तरी हिस्से और इनलेट चैनल का एक अवलोकन
श्रृंग्वेरपुर (इलाहाबाद)
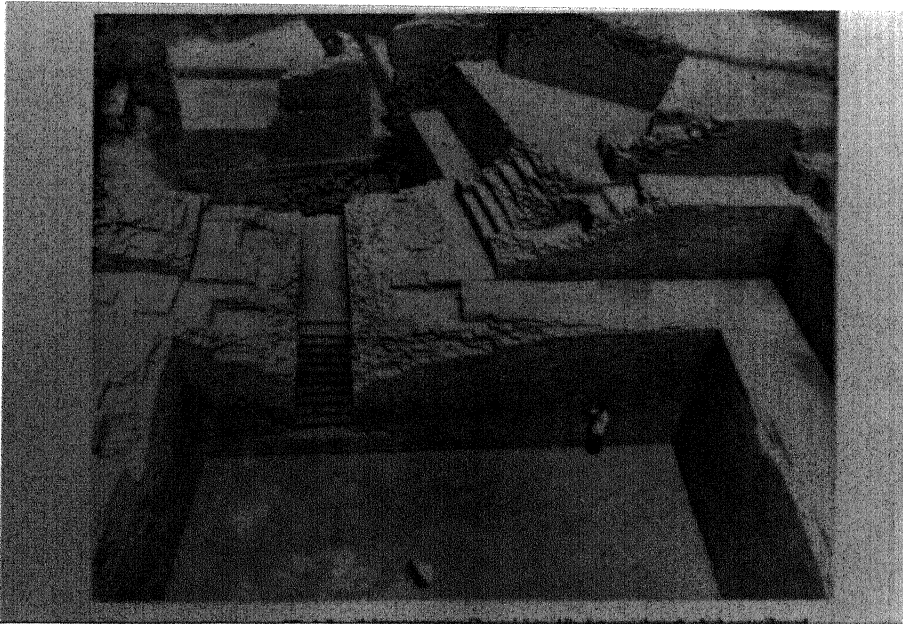
चित्रफलक 1 (B)
जलाशय B के उत्तरी हिस्सें का एक अवलोकन

चित्रफलक 2 (A)
जलाशय C का बाह्य अवलोकन, बाई
ओर उत्तरकालीन कुषाणरचना,
श्रृंगवेरपुर (इलाहाबाद)
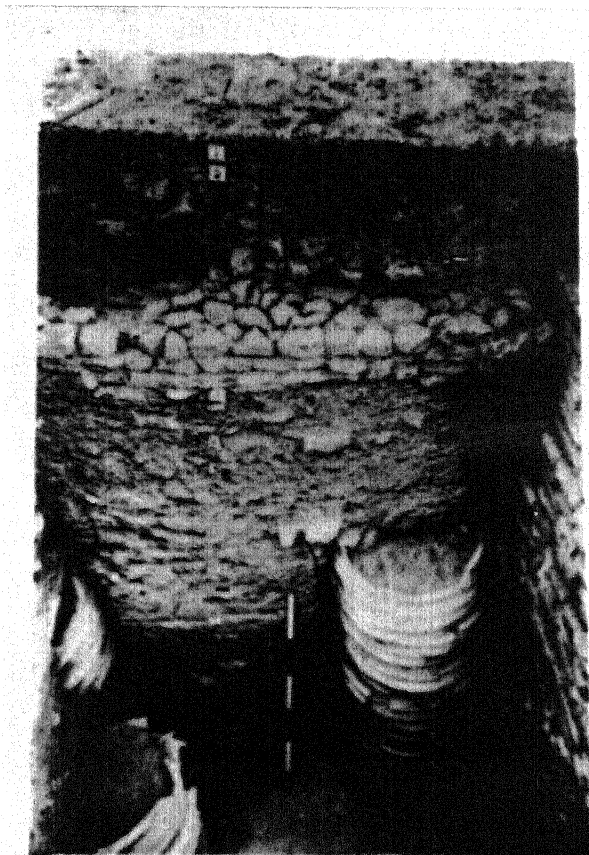
चित्रफलक 2 (B)
मृत्तिका वलयकूप
कौशाम्बी

चित्रफलक 3 (A)
कौशाम्बी स्तम्भ

चित्रफलक 3 (B)
इलाहाबाद किले में संस्थापित
अशोक स्तम्भ
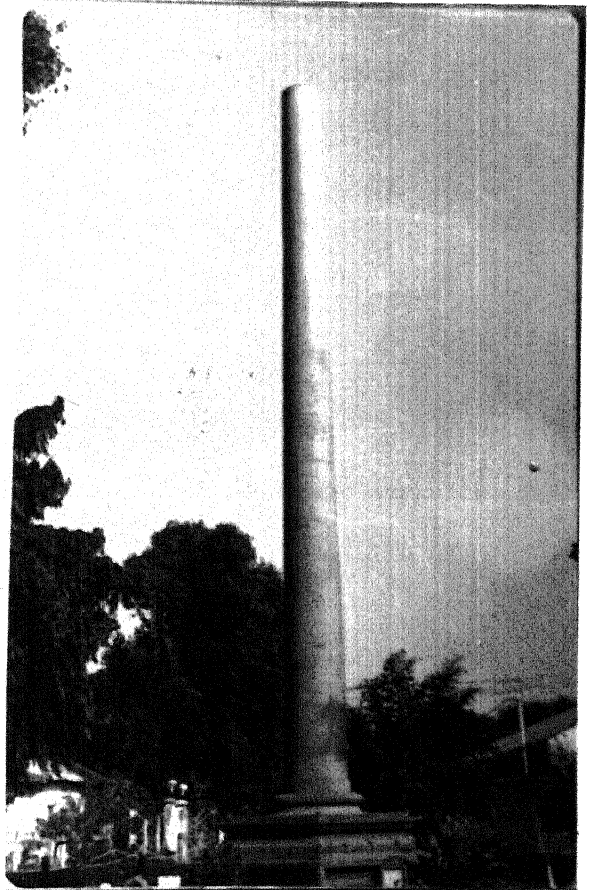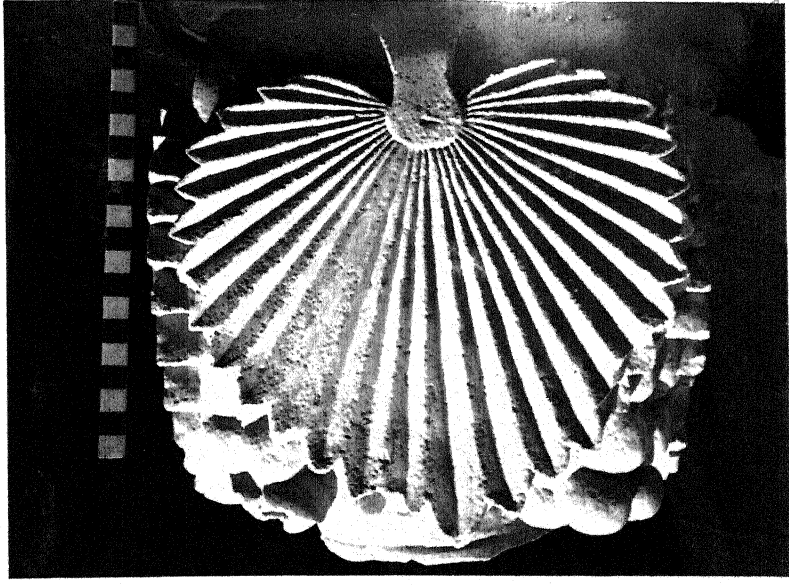
चित्रफलक 4 (A)

ताड़ की पत्ती के आकार

और रूप का वर्गाकार शीर्ष, मेनहाई (कौशाम्बी), जी0आर0 शर्मा मेमोरियल, संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत

चित्रफलक 4 (B)

फलक सहित घंटा और उस पर उत्कीर्ण पशु आकृतियों में बैठा हुआ दो कुबड़वाला ऊँट, मेनहाई (कौशाम्बी), जी0आर0 शर्मा मेमोरियल, संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत
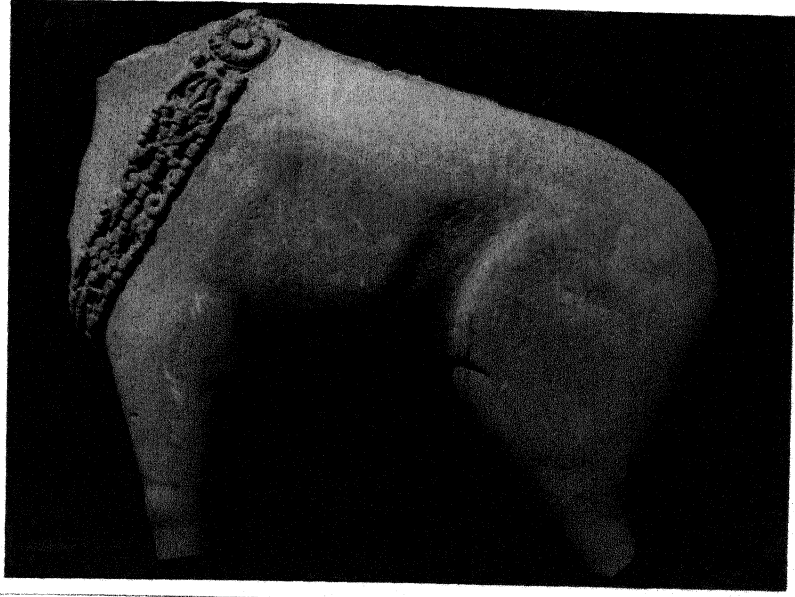
चित्रफलक 5 (A)
दार्नेदार तीन लड़ियों वाला हार पहनें हुए खड़े घोड़े की आकृति, मेनहाई (कौशाम्बी), जी0आर0 शर्मा मेमोरियल, संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत
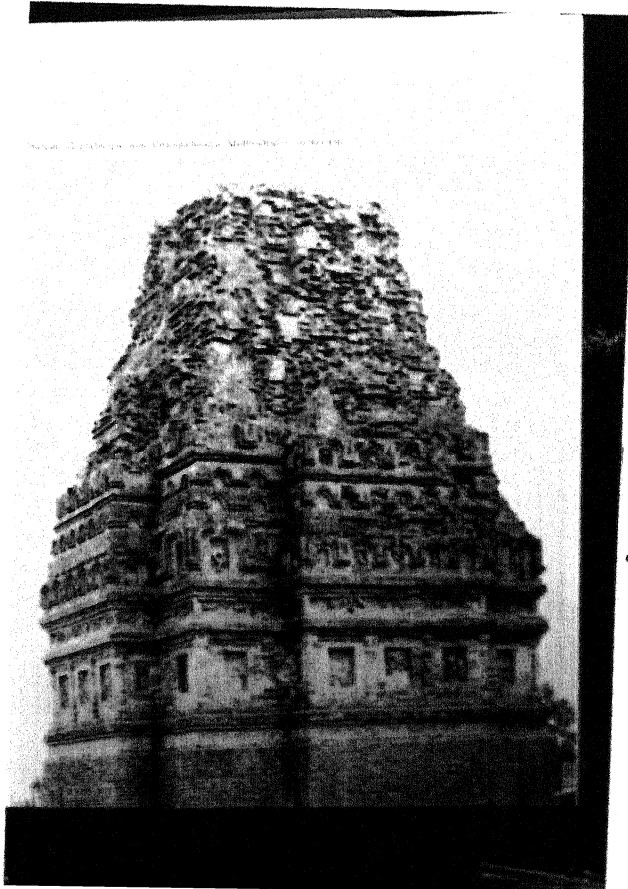
चित्रफलक 5 (B)
भीतरगाँव मन्दिर, भीतरगाँव (कानपुर)
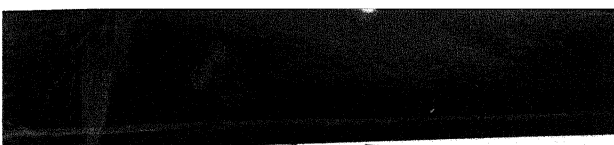
चित्रफलक 6 (A)
भीतरगाँव मन्दिर, शिखर, दक्षिण मुख
भीतरगाँव (कानपुर)

चित्रफलक 6 (B)
भीतरगाँव मन्दिर, उत्तरमुख, शिखर पर
बनें हुए आले, भीतरगाँव (कानपुर)
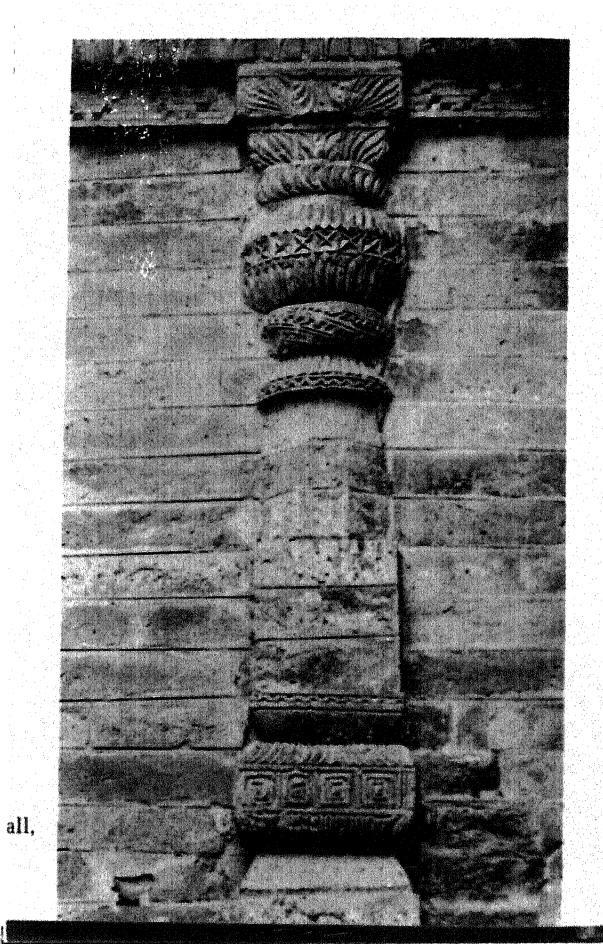
all,

चित्रफलक 7

भीतरगाँव मन्दिर, दक्षिण दीवार,

छोटा खम्भा, भीतरगाँव (कानपुर)

चित्रफलक 8 (A)
स्थानक बुद्ध प्रतिमा, शकसंवत् 2 में संस्थापित, कौशाम्बी,
इलाहाबाद संग्रहालय संख्या-69

चित्रफलक 8 (B)
आसनस्थ बुद्ध प्रतिमा, गुप्तसंवत् 129 अर्थात् 448ई0, मानकुँवार (इलाहाबाद),
राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या-0.70
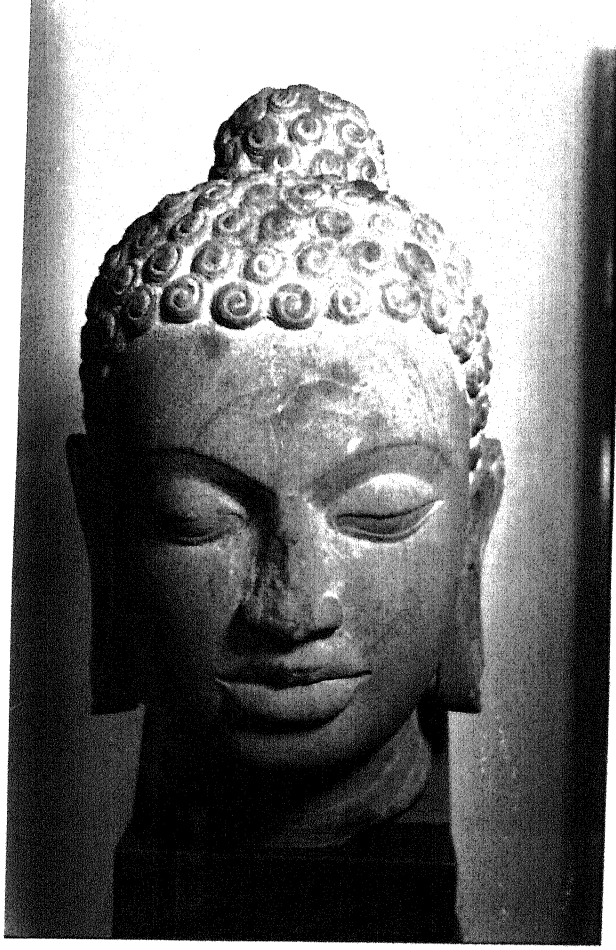
चित्रफलक 9
बुद्धमस्तक, भीटा (इलााहाबाद)
इलाहाबाद संग्रहालय संख्या-229
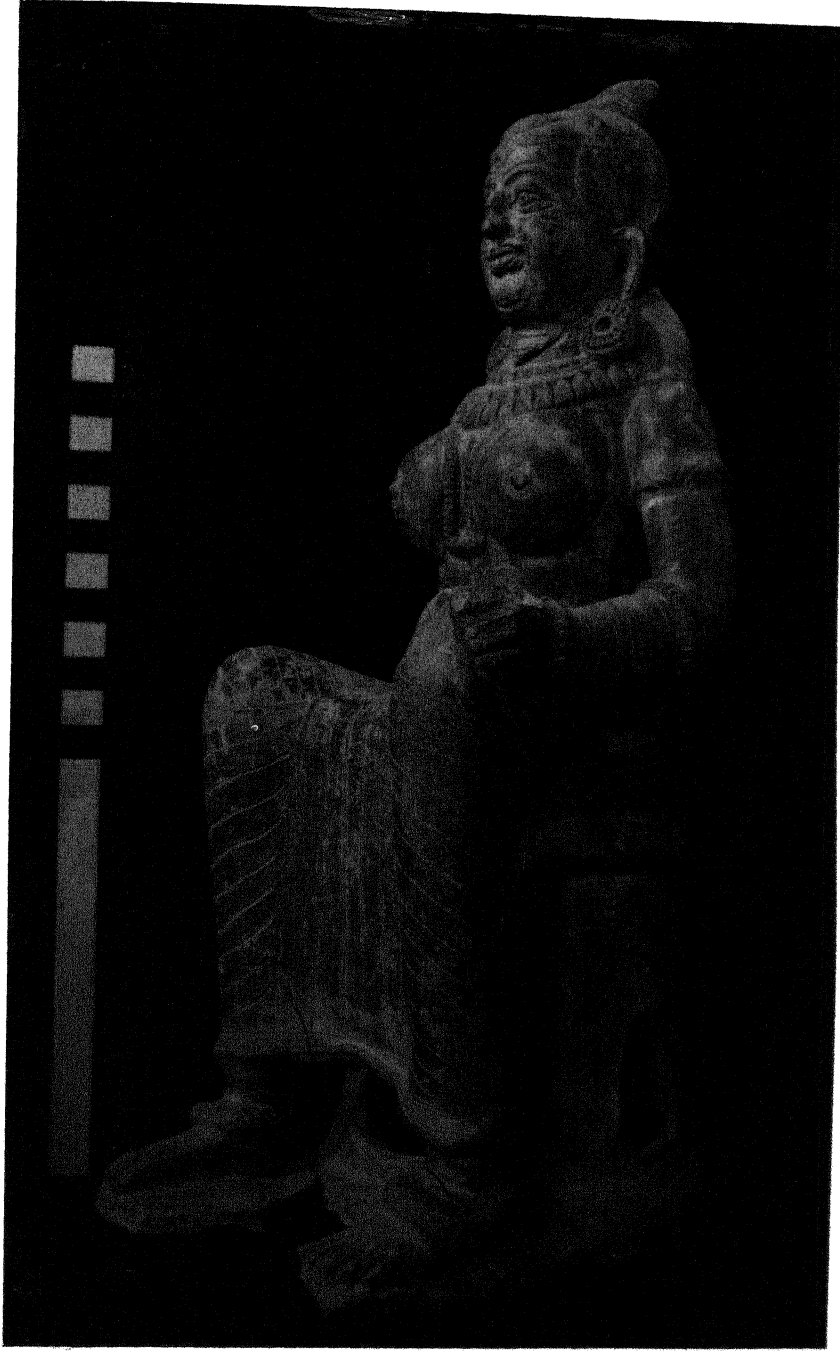
चित्रफलक 10

हारीति की मृण्मयी प्रतिमा, कौशाम्बी

मेमोरियल, संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत

चित्रफलक 11 (A)
हारीति की प्रस्तर प्रतिमा, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-79.16

चित्रफलक 11 (B)
अष्टभुजी विष्णु प्रतिमा, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ, संख्या-49.247

चित्रफलक 12(A)
स्थानक चतुर्भज विष्णु प्रतिमा,
झूँसी (इलाहाबाद)
इलाहाबाद संग्रहालय संख्या-952

चित्रफलक 12 (B)
षड्भुजी विश्वरूप विष्णु प्रतिमा, गढ़वा
(कौशाम्बी), राज्य संग्रहालय, लखनऊ,
संख्या-बी 223 सी

चित्रफलक 13 (A)
द्वार-खण्ड पर भीम जरासंध युद्ध का दृश्य, गढ़वा (कौशाम्बी)
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच088

चित्रफलक 13 (B)
भीम जरासंध युद्ध का दृश्य,
गढ़वा (कौशाम्बी)

चित्रफलक 14
अभिलेख युक्त पंचमुखी शिवलिंग,
भीटा (इलाहाबाद)
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-4

चित्रफलक 15 (A)
पंचमुखी शिवलिंग, सामने की तरफ से दाहिना मुख, भीटा (इलाहाबाद) राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-4

चित्रफलक 15 (B)
पंचमुखी शिवलिंग, सामने की तरफ से बाँया मुख, भीटा (इलाहाबाद) राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-4

चित्रफलक 16 (A)
पंचमुखी शिवलिंग, पीछे की तरफ से
दाहिना मुख, भीटा (इलाहाबाद)
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-4

चित्रफलक 16 (B)
पंचमुखी शिवलिंग, पीछे की तरफ से
बाँया मुख, भीटा (इलाहाबाद)
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-4

चित्रफलक 17 (A)
चतुर्मुखी शिवलिंग,
दक्षिणी मुख, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-3

चित्रफलक 17 (B)
चतुर्मुखी शिवलिंग, उत्तरी मुख,
स्त्री का, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-3

चित्रफलक 18 (A)
चतुर्मुखी शिवलिंग,
पश्चिमी मुख, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-3
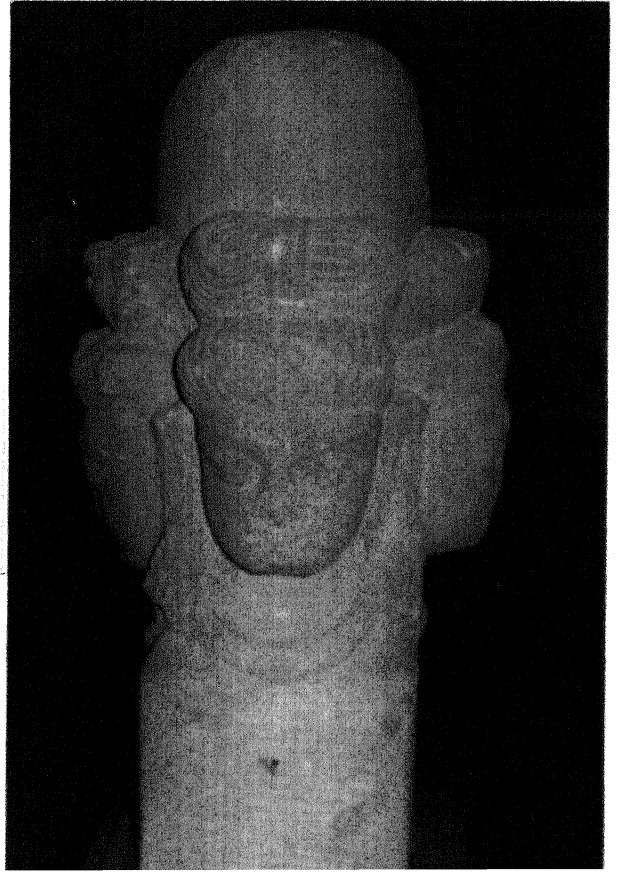
चित्रफलक 18 (B)
चतुर्मुखी शिवलिंग,
पूर्वी मुख, कौशाम्बी
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-एच0-3

चित्रफलक 19 (A)

पाषाणखण्ड पर उत्कीर्ण सूर्य प्रतिमा, गढ़वा (कौशाम्बी)

राज्य संग्रहालय, लखनऊ

संख्या-बी 223 ए

चित्रफलक 19 (B)

चित्रफलक 20 (A)
गजलक्ष्मी की मृण्मयी प्रतिमा, कौशाम्बी
जी0आर0 शर्मा मेमोरियल, संग्रहालय, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में संग्रहीत

चित्रफलक 20 (B)
चैत्य झरोखे से झांकती हुई युवा स्त्री का मृण्मय फलक,
भीतरगाँव मंदिर (कानपुर)
राज्य संग्रहालय, लखनऊ संख्या-67.595